Publisher—
Shri Ratna Prabhakar-
Gyan Pushpamala,
PHALODHI (Marwar)





Printer—
Shambhoo Singh Bhati.
Adarsh Printing Press,
Kaisergunj, AJ ER.

विश्व वन्द्य

भगवान् हावीर भु



कृतापराधेऽपिजने, कृपामन्थर तारयोः ।

ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्री वीर जिन नेत्रयोः

'श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्प माला' पुष्प नं० १६७

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादकमलेभ्यो न :

श्रीम.न् लौंक शा ह

के

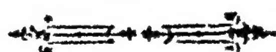
ज वन पर ऐ तिहासिक प्रकाश

ले —

जैनजाति महोदय, धर्मवीर मरसिं , जैनजाति निर्णय,
ि प्रतिमा मुक्तावलि, ग रवि । , शीघ्रबोध ौर
मूर्त्तिपूजा का प्राचीन इतिहा ादि १७१ ग्रन्थों
म्पादक एवं ले

श्री उपकेशगच्छीय

मुनि श्री सुन्दरजी ारा



ओ ंवत् २३९२

वीर ०२४६२ ई० न १९३६ वि० ०१९९३

प्रथमावृत्ति १०००

दोनों	" मूर्त्ति पूजा का प्राचीन स "	मूल्य
स्तकों	व " श्रीम लौंका ह " का	५) रु०

प्रकाशक—
श्रीर र ान पुष्पमा ा
ोदी (मारवाड़)

ं वं हक्क रक्षि

मुद्रक—
शम्भूसिंह भाटी
आदर्श प्रेस, कैसरगंज
अजमेर

ि चार परि त

मूर्त्तिपूजा । प्राचीन इतिह और श्रीमान् ों ।
जीवन पर ऐति ।ि प्र । , ये दोनों स्त ँ ए ही जिल्द में बन्धाने का विचार था कि जिससे ने वालों को अच्छा विधा रहे और उस मय उन दोनों स्तकों । मेटर २५ ३० र्म होने का अनुमान लगाया गया था तदनु र इनकी की भी उसी प्रमाण ` जाहिर की गई ` पर यथावश्यकता इन ेवर इत बढ़ गया कि आज ी न् ५७ । ँ और ४५ चि पहुँच ग है। इस हालत में इन दोनों ों ो अलग लग बंधा की ेजना की गई है। यद्यपि इसमें बाइडिंग (ल्द बन्धी) का रचा घि उ । पड़ेगा त पि पुस्त । रक्षण और पढ़ने वालों ी विधा ` लिये पूर्व विचारों ँ परिवर्तन रना ठी समझा है। फिर ी पाठक इ त को ध्य में र ँ ि दोनों कों । मूल्य ।ि ही र । है ौर मंगाने पर दोनों किताबें साथ ही में भेजी यगी। ए ए पुस्त मंगाने कोई भी ज्जन ष्ट न उठावें और दोनों स्तकों । म्बन्ध अन्यान्य मि ता होने ` प्रत्ये कों को साथ ही मंगानी और क्रमशः साथ ही पढ़ना जरूरी भी है।

❀ इति भम् ❀

भूमिका

"श्रीमान् लौंका ाह के जीवन पर ऐतिहासिक प्रकाश" मक क की लम्बी चौड़ी प्रस्तावना लि ने की आवश्यकता इस कारण ीत नहीं होती है कि इस पुस्तक के आदि के चार प्र र प्रस्तावना रूप में ही लिखे हुए हैं, तथापि यहाँ पर इतना ब ा देना अत्यावश्यक है कि इस पुस्तक को इस प्रकार ि लिखने की आवश्यकता क्यों हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में हमारे ाम बन्धु श्रीमान् सन्तबालजी (लघुश ऽवधानी मुनि श्री शौभाग्यचंद्रजी) का नामोल्लेख ही पर्याप्त है ोंकि आप श्री ने ही इस संगठन युग में अकारण जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियों अपमान, और परमोपकारी पूर्वाचार्यों की निन्दा करने ो "धर्म प्राण लौंकाशाह" नामक ले माला लि "जैन ाश" ता० १२-५-३५ से ता० १९-१-३६ तक के ों में प्रकाशित करवा अपने दूषित मनोविकारों को प्रदर्शित किया है। उपर्युक्त के इस विषय के तमाम अङ्क मेरे पास ज्यों के त्यों ाज भी सुरक्षित हैं।

यदि कोई व्यक्ति अपने मान्य पुरुषों की प्रशंसा में मा ों के पहाड़ ड़े करदें अथवा अतिशय उि के साहित्य समुद्र को भी सुखा दें तो हमें कुछ नहीं कहना है कि वह अनधि र चे कर अपने पूज्य पुरुषों की जीवनी लि ने की ोट में विश्वोपकारी महात्माओं का अपमान कर पने लाखों स्वधर्मी

मूर्त्तिपू । का चीन इतिहास

साहित्य प्रेमी

१६८ ग्रन्थों के ले व ंपाद



मुनिश्री ज्ञान न्दरजी महाराज

। ों का दिल दुखावे यह बर्दाश्त कैसे हो दा है ? जैसे ि आप श्रीमान् एक जगह लिखते हैं कि:—

"जैन शा न मां अे विकार ठेठ जम्बूस मी थी मांडी ने श्रीमान् लोंकाशाह ना काल धी ।ं थेंण के ॆ, केट । प्रमाण ां, अने केवी रीते वध्योज गयो छे"

जैन प्रकाश ता० १६–६–३५ ३६६

जगत्प्रसिद्ध महान् प्रभाविक प्रकाण्ड विद्वान् जैनाचार्य श्री रिभद्रसूरि के विषय में लि दिया है कि:—

"ॆमना साहित्य नो ज्योति मां क्रान्ति नी चमत्कारिता जरे ड़े रन्तु तेम छतां कोण जांणे । थी ते ो एक हान् शक्तिशा ॊ होवा छतां पोता ना दीर्घ जीवन मां क्रान्ति ने व्या क बनावी शक्या नथी ने ॆ घोषणा नी ज्योति मात्र तेना साहित्य क्षेत्र ं टी अने बुझाइ गई छे । । उणा तेम ना जेवा स र्थ ात्मा ने माटे सह्य अने क्षम्य जेवी छे ते आप ने उदाहरण ॊ वि ारतां स्व ं जणाइ आवे छे ।"

जैन प्रकाश ता० १९–५–३६ पृष्ट २२१

× × ×

" ॆना ानस मां अेक फ गो के जेह ने प्र तुत चरित्रना क श्री ान् लौंका ाह विक ावी व ा-विस्तारी शक्या अने भगवान् हा ीर पछी धार्मिक न्तिना चाराऽधि ारी री के ग मां सिद्ध थवा

अव्यक्त पे उगी हता ते ` स्थले
वा जेवो थी"

जैन प्रकाश ता० २६-५-३५ ३२८

× × ×

— । थे देखी ' वंट र । तेमनी सूरि
ाट् ी पदवी । ी ातो हो ो चैत्य- ाद
। ाजु वा । ावर ' व्यापी रहेली वहेमी
ठियों ी द ये जै ऽ ि गों ी ढि शिथि-
दूर करवा माटे ी ए ी शि सि हो "

जैन प्रकाश ता० ९-६-३५ पृष्ट २५१

× × ×

कलि वंज्ञ एवं गुर्जरे परमार्हन् कुमारप प्रतिबोध
आचार्य हेमचन्द्र ूरि के वि ` ति खते है कि:—

·······ज ि । ' तेमणे जे जे ' किधा ते विषे
अहीं ँ हवानुं थी र राज्या त्ते तेमणे १४ ०
देवा य बंधाव्या ते रे खर चैत्यवादनी वि ति । वेग
ने हटाड़ । ने वदले वधारवानु कर्यु छे अने ते कार्य
खटके तेह छे ।

जैन प्रकाश ६-१-३५ पृ० ३५२

क आपके उप ' उद्धरण एक विशाल जनसमुदाय `
दिल दुखानेवाले नहीं हैं ? शायद्, आपकी मान्यता यह रही हो!
कि मूर्त्तिपूजा रूप सड़ों चरमकेवली `जम्बू मी के समय
प्रारम्भ होगा ौर श्रीमान् लोंकाश ने इस सड़े (वि त

भाग) ी टोपलियाँ शिर पर उठा-उठा र दूर ेंकने
प्रय किया होगा। चार्य रिभद्र और हेमचन्द्रसूरि ये कोई
साधारण क्तिएँ होंगे कि की न्ति के साहित्य में ही र
गई। गैर लौं ाशाह एक महान् पुरुष होगा कि उनकी क्रांति ने
त् का उद्धार कर ला—पर यह तो विचारिये कि इस स्व
संसार की त्ता कितनी है वहाँ तक ही तो न हो कि जहाँ तक आँ
खुले ? क्योंकि आँख खुलने पर तो यं आप भी दे स े हो कि
ापके समुदाय में जो ३२ सूत्र म ा रहे हैं उनमें से एका-
दश ङ्गों े अतिरि मग्र ूत्र जम्बूस्वामी के बाद बनाये गये
हैं तथा वे ३२ ूत्र जम्बूस्वामी के बाद दशवीं श ब्दी में लि े
गये हैं जो कि आपकी स्वप्न दृष्टि का मध्यम काल था। जि
सू ें को आप ास तीर्थङ्करों की वाणी मझते हैं अब उनके
मानने के विषय में आपके लिए दो प्रश्न पैदा होते हैं—प्रथम तो
य कि यदि इन सूत्रों के रचनाकाल या लेखन समय को सुवि-
हित समय मानते हों तो जम्बूस्वामी से सड़ा प्रवेश होने की
आपकी मान्यता सिद्ध नहीं होगी वरन् आपके माने ए बत्ती सू
विश्वास करने यो नहीं रहेंगे। कारण जब वे ड़े के समय
ही रचे गये या लिखे गये हैं े उनमें भी सड़े े होने की
र ा करनी पड़ेगी। जै े वि आपने मूर्त्ति े विषय की है।

दूसरा प्रश्न यह है कि जम्बूस्वामी चरमके ी ौर भद्र-
बाहु ामी तक जो चतुर्दश पूर्वधर विद्यमान थे और जिन्हें
वं न सम ते हैं उनमें से तो कि ी एक ने भी यह हीं
नहीं क ा कि उस समय जैन शासन में सड़ा (वि र) प्रवेश
ा था—ि म में नहीं । है वि केवल ापने ही यह शब्द

कहाँ से ढूँढ़ निकाला? ।आपके द्वारा किया हु ।यह केवली और चतुर्दश पूर्वधरों का अपमान नहीं है?

खैर आगे ।पने आचार्य हरिभद्र सूरि और हेमचन्द्रसूरि के रे में जो ब्द लि हैं उन्हें लि ने के पहि जरा उक्त आचार्यों और लौंका ाह की मिथः तुल करके तो दे नाथा ि कहाँ तो शासन के सुदृढ़ स्तंभ रूप उ आचार्य प्रवर और कहाँ शासन भंजक लौंकाशाह। क्योंकि उक्त आचार्यों ने तो उपदेश देकर अनेको बड़े २ राजा महाराजाओं एवं ला ों करोड़ों नये जैन बनाकर "अहिंसा परमोधर्म" की विजय पता का भारत चारों ओर फहराई थी। तथा जिसके लिए क्या पौर्वात्य ौर पश्चिमात्य पण्डित ाज भी मुक्त कण्ठ से भूरि २ प्रशंसा कर रहे है अथवा इधर तो उन सूरीश्वरों ने ऐसे-ऐसे अत्युत्तम जनोपयोगी साहित्य का ृजन कर संसार में जैनशासन को उज्वलमुखी बनाया था औ उधर लौंकाशाह ने बने बनाये घर में ही फूट डाल कर शासन को रसातल मे प चाया अर्थात् जैन शासन को पतन के गहरे गढ्डे में ढकेला, जिस । प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि आचार्य हेमचन्द्र सूरि के पूर्व दश करोड़ जैन थे उन्हें आचार्यश्री ने तो १२ करोड़ तक पहुँचाया और लौंकाशाह के समय जो सात करोड़ जैन अवशिष्ट रहे थे उनमें फूट कुसम्प और अशान्ति पैदा कर तथा हिंसा और दया के वार

रूप को न समझने के कारण भद्रिको के हृदय को संकीर्ण बनाकर और मलीन ि या की प्रवृत्ति चलाकर जैनोंका पतन प्रारंभ किया और आज उनकी संख्या नाम मात्र तेरह लाख तक पहुँचा दी है और न जाने भविष्य में इसका ।भयंकर नतीजा

नि लेगा। इस े अब आप स्वयं मझ सकते हैं। कि लौंकाशाह की क्रान्ति (?) े जैनधर्म एवं समाज को नफा हुआ या कसान ?। ागे चलकर आपने अपने लेख में अनेक स्थलों पर इतिहा शब्द का भी प्रयोग किया है संभव है ऐसा इसलिए किया हो कि जनता यह जान लें कि आप (संतबालजी) इतिहास े भी सर्र हैं परन्तु इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ न लि कर ापके ही एक दो वाक्यों को यहाँ उद्धृत र पाठकों को तला देते हैं कि श्रीमान् ने इतिहास का कहाँ तक अभ्य ि या है। ाप एक जगह लि ते हैं :—

"र प्रभसूरि े ा अ े घ ा त्रि यों ने ो ा गाम ं जैन-धर्म ना श्रा कों नाव्या छे"

तथा इस लाईन के फुट नोट में आप पूर्वो क्षत्रियों की ातियों के नाम इस प्रकार बताते हैं:—

"भट्टी, चहुँ ाण, घेलोट, गोड़, गोहिल, ाड़ा, ादव, ाणा, परमार, राठो ., अने रा . रज-पूतों हता"

जैन प्रकाश ता० १६-६ ३५ पृष्ठ २३६

आपश्रीमान, र प्रभसूरि का मय ई० सं० १६६ अर्थात् वि० सं० २२२ का बतलाते हैं और उस समय उपर्युक्त क्षत्रियों ी जातियों का होना आप स्वीकार करते हैं। आपकी इस ऐतिहासिक विद्वत्ता को साधु (।) वाद[१] है। आपकी लि ी उक्त जातिएँ उस समय ायद भविष्यवेत्ताओं को भी ख ात होंगी पर आपने

१—यह समय वीरनिर्वाण सं० ७० का था।

तो ट से ति रा वि इन ातियों को र भसूरि ने जै बना दिया । पर विच ने ी बात तो यह है ि उ मय जातियों का स्तित्व तो । पर उस व के बाद अनेक ि्यों तक भी इनका स्तित्व नहीं था। ऐसी हालत में रत्नप्रभसूरि के समय उ जातियों के अस्तित्व का लि मारना कहाँ की ि ता समझी जा कती है। यदि यह कह जाय कि ये बातें किसी न्य ग्रन्थ में े दे के ही लि ी हैं तो इस ले माला ी फिर कितनी कीमत मझी जा कती है ?। आप की ले माला की प्रासागि कता ौर ाप े दय की दूि भा । यह ए छोटा किन्तु ारवान नमूना है। विशेष सुज्ञ पाठक स्वयं आपके प्रमाणों को दे कर निर्णय करें२। । ीइ े माला । प्रतिवाद हमने उन्हीं दिनों में लि कर तैयार कर दिया था, परन्तु हमारे वि द्वर्य मुनिश्री न्यायवि जी महाराज उस गुज ी ले माला का प्रत्युत्तर जराती भाषा में ही उसी म ै ज्योति अ बार रा दे रहे थे। इस कारण हमने मारे प्रति द को पाने े रोक दि तथा एक कारण य भी था ि इ संगठन युग में ऐसी खण्डन मण्डनात्मक विरोधवर्द्धिनी प्रवृति को प्रोत्साहन देना भी हम बुरा म ते हैं। किन जब हमारे भाई मिथ्या ले लि अकारण भद्रिक जनता में गलत फहमी फैला का प्रयत्न करने लगते हैं तब इच्छा के न होते ए भी सत्य घटना को जन के सामने रखने के लिए ले नी हाथ में लेनी पड़ती है।

२—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने जिन क्षत्रियों को जैन बनाये वे प्रायः सूर्यवंशी चन्द्रवंशी आदि और इनकी शाखा प्रति शाखा के ही थे। देखो मेरी लिखी 'ओसवालोत्पत्ति विषय शंका समाधान' नामक पुस्तक।

इस म ~" ग्रन्थ पुष्प चौ "- ९-

रिरि ति अने अर्हि ।, नामकी एक क हमारे

ात्मीय बन्धु ो भेजी ई मिली है जि ले क हैं प्रसि द्ध

विवर्य मुनि महाराज ी नानचंदजी । यह पुस्त मुनिश्री

बा जी ौर मुनिश्री न्यायवि जी महारा ो ले

माला बन्द होने के पश्चात् प्रकाशित ई है। इस किताब टाई-

टिल न्ति पेज पर लि । है कि :—

छप र । है

क्रान्ति नो युग (तिकार नुं ज्वलन्त चित्र)।

ालूम होता है श्रीमान् तबालजी की लि ी हुई " धर्म

ौंका ाह " नाम की ले माला में जो छ लि ष र

। था उन । ब पुस्तकाकार में नः मु करवाने की ाव-

ता प्रतीत ई है थवा स्थानकवासी । श्री ानजीस्वामी

जो भी छ दिन ए मुँहपत्ती का डोरा तोड़ कर जैनमन्दिर

मूर्ति को मानने लगे हैं उन के लिए श्रीमान् न्तबालजी ने

" धर्म ण लौं शाह" नामकी लेखमाला लि अपने परितप्त

समाज आश सन दिया था किन उस ले माला का फ

उल्टा ही हुआ और तदनुरुप स्वामी कल्या चन्दजी एवं गुलाब-

चन्दजी जैसे प्रतिि त विद्वान् साधु हाल ी में मुंहपती

का डोरा तोड़ मन्दिर मूर्ति के उपासक बन गए हैं। अतएवं

हुत ज री है ि स परिताप के लिए भी स्थानकवासी माज

ो न ान्त्वना तो मिलनी ही हिये अतः भव

है। "क्रान्ति ो युगस्रष्टा" इसी सान्त्वना का द्वितीय ं र होगा। पर दुः है कि इस द्वितिय संस्करण े होने पर भी यदि दैववश २-४ साधु ौर इस स्थानकवासी स ाज ेे निक गए तो न जाने आपको फिर ौनसे उपाय । वलम्ब कर पड़ेगा ? यह अभी भविष्य के गर्भ में ही अन्तर्निहित है।

जब हमारे भाइयों को " ेप्राण ौं । " की लेख-माला से सन्तोष नहीं आ है ौर वे अब ान्ति नो नामक पु क छपाने को उतारू हुए हैं और वि ही प्रमाण कपोल कल्पित बातें लि श्रीमान् लौंकाशाह ी हँसी एवं किल्लयें उड़ा का मिथ्या प्रय करे इस हालत में हम । ी र्तव्य है वि हम लौंकाशाह के जी पर ऐतिहासिक साधनों रा प्रका े ोंकि आखिर लौंकाशाह भी तो हमारे आ र्यों ारा ाए हुए श्रावकों की न्तान ही हैं। व्यर्थ हीं में मृत ात्मा की हँसी उड़ानी वि सके हृदय में नहीं टकेगी ? अतएव इस विषयका गहरा भ्यास र श्रीमान् लौंकाशाह के जी की भिन्न भि विषय को लक्ष में र पचवी प्र र लि - कर वा में लौंकाशाह कौन थे ौर ापने वि या था यह सब प्रमाणिक प्रमाणों रा स्पष्ट बतला दिया है ेद है ि इसके पढ़ने से उ समाज को संतोष होगा और विष्य में इस विषय के लिये उभय समाज की शि समय ौर द्रव्य का व्यर्थ ही बलीदान न होगा। इस प्र र दि भभावना े प्रेरित हो ेे यह प्रयत्न किया है, न कि कि ी के दिल ो : ाने ो या किसी को इससे हलका दिखाने को ौर य बात ि ाब के पढ़ने मात्र से प ठकगण स्वयं सकेगा।

अन्तमें मै यह कह कर इस व ञ्य को समाप्त कर दूंगा कि पाठक एकबार इस पुस्त को आद्योपान्त पढ़ कर त्यासत्य निर्णय कर असत्य का त्याग और त्य को स्वीकार र स्व पर का कल्याण करे। पुनः इस मन्तव्य को लिखने में दृि दोष या प्रूफ संशोधन की असावधानी के कारण कोई त्रुटि रह गई हो तो ज्जन महानुभाव ीघ्रही सूचित करावे कि भविष्य अन्यावृतियों में सुधार ि या जाय। सर्वत्र सु ी भव लोकाः।

"लेखक"

चित्र-सूची



प्राक्क थन



सामान्य मनुष्य चरित्र को प्रका लाने के लिये
ी ३०० ों ी इतनी बड़ी भारी स्व दे र पाठकों
को बड़ा भारी र्य होगा कि च च ही विद्वान ाहित्यप्रेमी
ोवृद्ध दीर्घ नुभवी निरा श्री ानसुंदर ी म ाराज
क्र ोे लि र ाल किया है ोंकि ोंकाशा ो
साधारण तो क्या परन् उनके नु ीव
ौर र मार्गी भी नहीं जा ते थे। इसलिये जैन समाज को उस
मार्गी मा को तो मुनिराजश्री का ा भारी ाभ
हिये। ोंकि की म्प्रदाय माने हुए स्थाष
व चरि के लिये निश्री प्राचीन ए सर्व मा
प्रमाणों की व त अच्छी खोज ी है। नकि स्थान मार्गियों ो
सि करन ही की है इस स्थान पर यह ह दे भी
हि य युक्ति न होगा कि ले जैनधर्म के भूत लि
इवि । । अच्छा दिग्द राया है।

महोदय इ स्तक का न 'श्रीम ोंकाशा'
ी० इ० रक्खा है। रि स उन्होंने यह बतला है कि
ों शाह ए जैन श्राव ौर त्रिकाल प्र पू । करने वाला
। परन्त मति ता के ार उस पर नार्य इ ाम में
या पड़ी। यही ारण है कि श्री न् ों । । नाग,

जैनश्रम , मायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान और देवपूजा आदि धार्मिक विधान मानने ` इन्कार कर के नी ं त स्था में 'पूजा करवाने ी गरज से स्थापन कि परन्तु उ की नींव इतनी कमजोर ौर गति-मंद थी कि पके द करीब १०० वर्षों में हो ।पके अनुयायी, ीपू यतियों और श्रावकों ने लौंका ाह के रा निषेध की ई सब ि ों को: पने मत में फिर ` स्थान दिया इ ।पसी मत भेद मिट लौंका ह । नाम ो र वि के रूप केवल लौं न्छ नाम ही रह गया।

नः ारहवीं ताब्दी में लोकागच्छ ीय यति ीमान धर्मसिं जी और वजी ने उ शान्त ि को प्रज्वलित करने ` एक न उत्पात खड़ा कि । जो पहिले मूर्तिपूजा निषेध सि ान्त तो लौंकाशाह का था ही पर स्वामी लवजी ने उ को बढ़ा र वि `षतः ंहपत्ती में डोरोडा मुंहपर बांधने ी प्रवृत्ति चलाई। और धर्मसिंहजी ने श्रा के सामानि ाठ कोटि ` होने का मिथ्या ाग्रह किया उस समय इस प्रवृति का लौं । के यियों द्वारा पूरा २ विरोध हुआ फिर ी उन्होंने किसी की परवाह न करके भद्रिक बोध जनता को पने मत में ंसा ी लिया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि भद्रिक पि नता में एक समय वाममार्गी जैसे हिं और व्यभि चार प्रधान धर्म का भी प्रचार होगया तो ामि लवजी ने तो रि ` मुंह मुंहपत्ति बांध उपर से द दया की ही कार ी ी। त श्र ध लोगों में ापका मत चल पड़ना कोई र्य की त नहीं थी। इस ` ाफ जाहिर होता है कि स्थानकमार्गी जा

मि ल ी ी अनुयायी है कि लौंकाशाह । क्योंकि लौंक ह के नुयायी तो मूर्त्तिपूज और र भी रों ी द मौजूद हैं।

प्रस्तुत ो सू दृ से लो न कर हो ि ते होदय इ के लिये परि ौर शो ो की है ोंकि कित ी ले ों ने श्रीम ौं शाह ि रित्र बहुत ओं रंग से रंग दिया प उसकी लिय । विकृत रूप ब गया है। मुख्य रके लौं के जीवनचरित्र लि स्थान गीं । के सत्वज्ञानी श्रीम ी मोतील ाह, श्री न् ौभाग्यचंदजी ल श धानी (लजी) स्था. पूज्य मोलखऋषिजी. और ० मणिलालजी ने ि है वह ब ए दूसरे से विरुद्ध बात को ले क महोदय ने इस पुस्तक में । ठी कि । जैसे कि श्रीमान् वा-मो-शा ौर जी लौंका ाह के लिये बतल । है कि उनका जन्म म बाद में हुआ तथा व बड़ा ारी साहूकार, विद्वान ौर म । ने गृहस्थावस्था में यतियों से ई सूत्र ल कर एक-एक प्रति यतियों ि ये ौर ए एक प्रति यं प लिये ति ी प मत ो चारों तर खूब फैलाया इत्यादि। इसी ी पूज्य स्था० मुनि मणि । जो उन वि प प ावलि लि ते हैं कि लौं ाह का जन्म र टवाड़ा । उनका ि । ौर एक पुत्र भी वहाँ ी पैदा हु ।। बाद व से लौंकाशाह अहमदाबाद में । र ए सलमान ि० ी नौ री की। मय प ात् वहां नौ री छो र

ति म विजय के पा वि. सं. १५०९ में यति दीक्षा ली द हमदाबाद मास किया और वहाँ का श्री संघ आप तिरस्कार र उपाश्रय निकाल दिया अर्थात् वे यं उपाश्र कल गये इट दि आगे स्था० पूज्य मोलखऋषिजी ने ना ज्ञग हो त बतलाया उन्होंने लिखा है कि १५२ दमियों के थ हपर मुं पत्ती बांधकर लौंकाशाह ने दीक्षा ली। पाठ र यं नि य रलें कि स्थानकमार्गियों के किस किस लेखकों के ले लौंकाशाह का चरित्र प्रमाणिक माना जाय।

प्र त पुस्तक के लेखक महोदय ने सभी ले गों की प्रमाण पूर्वक च्छी आलोचना करके सत्य वह ो प्रदर्शित ो है ह बात ठकों ो इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तर विदित हो जायगी। ही यह भी मालूम हो जायगा कि व न लोगों के पास लौंकाशाह का प्रमाणि चरित्र है ही नहीं जो छ लि । है वे सब अपनी र कल्पनाओं के आधार पर । ।

इस स्तक के साथ ही एक "ऐतिहासिक नोंध की ऐतिहासिकता" नामक पुस्तक भी दृष्टि गोचर हो रही है उसे पढ़ने से त होता कि मुनिश्री ने स्थानकमार्गी मत के ऊपर काफी । डाला है। इससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि वा० मो० ाह दुनिया की ंखो पर सत्य का पर्दा ना चाहा था परन्तु लेखक महोदय ने संसार के साम उसकी ाण पूर्वक आलोचना रते हुए सत्य वस्तु रख दी है। इससे भोली जनता जिन कि इतिहास का विशेष बोध नहीं है वे भी रलता तमाम बातों को अच्छी तरह म ायेंगे।

गे चल कर निश्री ए क " डु की प ली र" नाम जि र न क के ल है जो वि लौंकाशाह के थ बन्ध र ली है। बत है कि लौंकाशाह के में ही ए ी अप नाम पर नया मत नि ला था किंतु लौंका की ने व क्रिया ओं निषेध नहीं किया व मूर्तिपूजा, - यिक, प्रति म पोषध आदि बको मानता था रि साधु ों द्वेष के कारण उस । संस्था का स्वी र कि था।

ौंकाशाह ो तो जैन । न । षी व नध । ज ही । था। उसने अपने बहुत नियम बन ए नि म य भी था वि ों मत के यायीयों र न्नजल नहीं लेना। यह बात उ य के ग्रन्थ रहे हैं। कि उ मय लौंकाशा ो ोग व ी की देखते थे। ससे सा ि होता है कि हुत्राशा ी प ी का र भी लौंका ह ीवन पर ठी -ठी रहा है।

इ प्र र लौंका । के थ म्बन्ध र ने ी प्रस्तुत तीनों किताबों में क मुनिश्री ने ऐतिहासि । च्छे दिये हैं जि से पढ़ने लों की चि धि व ती रहेगी। इतना ही ों पर ले क महोदय ने तो श्रीमान् लौं ा- शा के साथ र तीन परिशि को भी द्रित करवा दिये । परिशि में नि वी । (वि० ० १५२७) पं० लव मय (वि. . १५१५ १५४३) । उपा० कमलसंयम (वि. . १५४४) इन तीनों के ग्रन्थ जो लौंका-

ाह के माथि थे उनके ौर दूसरे परिशिष्ट में ौंका गच्छीय यति भ चन्द्र (वि . १५७८) ौर ौं गच्छी ति कै जी (वि १६०० के स) इन दोनों के ग्रन्थ मुद्रि हैं। तथा तीसरे परिशि में लौं ामत के सै ों विद्व साधु त र मार्गी नेक साधु ों अ ामत को लिपव प्रम न्य म र उस ो ोड़ र र मूर्ति पूज ाधु बने हैं उनके चित्र मय प्र ण के दिये हैं।

ब अत यही लि इस प थन े मा कर दे वि वांचक महाशय इस को पढ़ कर खूब ाभ उठावें सत्यप की ोर प हों। यही भेच । पूर्व इ को पूरा कर ँ।

वि० सं० १९९२
कार्तिक ११
अजमेर

दर्शनविज

इस ग्रन्थ के हिले ` ह ` ों की

शुभ नामावली

१२५	श्रीमान्	नवलमलजी गणेशमलजी मूथा	जोधपुर।
२५	,,	बदनमलजी जोगावरमलजी वैद	लोदी।
३५	,,	गजराजजी सिंघवी,	सो त (मा ड़)।
९	,,	श्री शलचंद्रजी जैन लायब्रेरी, बीकानेर	(राजपूताना)
१	,,	रतिलालजी भो । भाई	बम्बई।
१	,,	ल्लूरामजी ं करिया	बड़ ।
१	,,	दुर्लभजी त्रिभुवन,	मोरवी (का०)।
१	,,	ज वंतमलजी भंडारी,	ब्यावर (रा०)।
१	,,	भूरामल ` गादिया	ब्यावर (रा०)।
१	,,	हंसराजजी पेथाजी चु ेलालजी कुंगा	बंबई।
१	,,	मोहन ालजी वैद	फलादी (मारवाड़)।
१	,,	नेमीचंदजी वैद	,, ,,
१	,,	छ्ग लालजी वैद	,, ,,
१	,,	माणकलालजी वैद	,, ,,
१	,,	लूणकर जी वैद	,, ,,
१	,,	श रणजी वैद	,, ,,
२	,,	पचंदजी ताराचंदजी	मरावती
१	,,	दीपाजी सहाजी	,,
१	,,	रुगनाथचंदजी कोचर	,,

१ श्रीमान् ंतमल ी को ी ी
१ ,, ब तावरम ी सेठि । ,,
१ ,, मानचन्दजी भं ारी
१ ,, ायबचन्दजी ीवराज ी िव रा ली
१ ,, धनराजजी चाँदमलजी ीव रा
१ ,, मि । जो मूलचंदजी रि या ली
१ ,, भीखमचन्दजी नागोरी ी
१ ,, ीचन्दजी ागोर ,,
१ ,, गराजजी राण पिपरि
१ ,, च दास ी । र जी पटवारी ालो
१ ,, नमचंदजी स्तूरचंदजी मू लोत
१ ,, के रीम जी पोकरणा पी (ज)
१ ,, जैनश्वेताम्बर लायब्रेरी पी न (जमेर)
२ ,, तम जी लोढ़ा की धर्म श्रीमती प्र ती
[ज र]
२ ,, सेठ हिम्मतम जी रि रोही
१ ,, कुन्दन जी ाजजी ोठारी वर
१ ,, जतनम जी जा मलजी ारी,
४ ,, हीराचन्दजी चेती १ श्रीमोती । जी री ०
१ ,, देवकर जी महता १ ,, शिवचन्द ी धाड़ीव ,,
१ ,, सोभागमलजी मह १ ,, प ालालजी हता ,,
२ ,, महेशराजजी भंडारी १ ,, हीरालालजी बोहरा ,,
१ ,, मानजी बांठिया १ ,, गरचन्द र वि
१ ,, गोड़ीदा जी ढड्ढा १ ,, सिरेमलजी ो ,,

विषयाऽनुक्रमणिका

विषय

नम्बर ि

शुद्धि पत्रक



०	०	अशुद्धि	
४	७	१९३६	१६३६
४५	६	र न	र ०
५	११	लो	नौं
५९	१२	प्र	प्र
४	१४	कर दिया	०
६७	२३	यज्ञ	
७२	१४	प	
७२	२१	। र्थी	०
७८	१०	दुष्क	दुष्काला
८२	२१	हरि	हीर
८३	१२	घोरे	घोर
८५	१६	पना	था
८	४	रते	`
९१	२४	पौषद	पौसह
९२	९	लिखे ह	लिखते हैं
९२	१२	लंको	ंको
९२	१७	सां	।
९३	१२	वं	व ।
९	१०	का	नि ाला

०	ला०	त्रि	
१०७		भाण	
१०८	५	पौस	पौ
११३	१२	मूति	मूर्ति
११६	२१	जि की	जिनकी
२१	१०	भो	यो
१२४	१७	वि सी	वि ी सु:
१२५	९	य ।	
१४२	११	।णा	। ।
१५८	९	नौंवी लाइन को द वी पढ़ो	
७०	१	मे	मैं
१४७	१०	द ।	दोषों
७८	१–	+	+
१७९	२५	हनन	हनन
१८६		।व	ता
१८९	२१	मद्दे	द्दे
९१	८	किर	फिर
९१	२१	ग्रा	हुआ
२०२	७	त	।ता
२१२	१९	विरूद्ध	विरोध
२२७	११	इ	।इ
	×	×	×
२४१		ति	वि
२ २	११		सत्या

०	०	अशुद्धि	शुद्ध
२६१	२४	उद्धत	घृति
२६२	९	पति	प्रति
२६	६	दिय	दिया
२७९	१९	आदि	।
२८३	६	उद्धर	उद्धृत
२८३	१०	पढ़वा	पाढ़वा
३०१	१२	कराके	रखके
३१५	१	नान	.
३१५	१२	स्वच्छ	स्वेच्छा



श्रीमान् लोंकाशाह के

जीवन पर ऐतिह सिक काश



श्री न् संतब जो का श्न।

जैन प्रकाश आर ता० १०-११-३५ पृ ३० पर आप रते हैं कि—

"धर्मभा लौंकाशाहे शु कार्युं ?"

फिर ता० १७-११-३५ पृष्ठ ४२ पर आप लिखते हैं कि—

" ाण लौंकाशाहे शु कार्युं ?"

पुनः ता० २४-११-३५ पृष्ट ५४ पर सवाल करते हैं कि

"धर्म लौंकाशाहे कार्युं ?"

और ता० ८-१२-३५ पृष्ट ७८ आप बयान करते हैं कि—

" ण लौंकाशाहे कार्युं ?"

फिर ० १५-१२-३५ पृष्ट ९० पर आप प्रश्न करते हैं कि—

"धर्मप्राण लौंकाशाहे शु कार्युं ?"

फि ० २२-१२-३५ पृष्ट १०१ पर पु ते हैं कि—

" र्म । लौंकाशाहे शु कार्युं ?"

फिर ता० ६-१-३६ पृष्ट १२४ पर प्रश्न करते हैं कि—

"धर्म लौंका ाहे । ?"

फिर ० १३-१-३६ पृष्ट १३८ पर प्रश्न रते हैं कि—

" र्म लौं । ाहे युं ?"

ए कि प्रश्न करे, उसका उत्तर कोई दूसरा व्यक्ति ही दे ा है न कि यं प्रश्न रना और यं ही उत्तर लि ना। एव दू कि सी को उत्तर देता न देख मैंने प श्री न् के उपरो नों के उत्तर में यह कि ाब लि ी है भम्।

प्रकरण पहिला

श्रीमान् लौंका ाह कौन थे ?

विक्रम को सोलहवीं शताब्दी ंसार भर के लिये और विशेष कर जैन समाज के लिये एक भीषण त समय था। इस ताब्दी में जि े उत्पात मचाने वाले व्यक्ति हुए, वे ब के सब असंयमि-गृहस्थ एवं अल्पज्ञ ही थे। उन्होंने बिना ारण एवं बिना प्रमाण धर्म के अन्दर भेदभाव एवं ंसार भर में फूट सम्पादि डाल र े के ऐसे बीज बो दिये कि जिनके महान् भयं र कटुक फल आज पर्यन्त हम लोग च रहे हैं। उस मय का छिन्न भिन्न ा • हजारों प्रयत्न करने पर भी ाज तक भी संगठित नहीं हो सका। यदि यह कह दिया जाय ि संसार के पतन ा मुख्य कारण वे क्लेशोत्पाद व्यक्ति ही हैं तो भी तिशयोक्ति नहीं है।

विघ्नोत्पाद ों में लौंकाशाह नाम व्यक्ति भी ए है। उन्होंने वि० ं० १५०८ में जैन श्वेताम्बर समुदाय के अन्दर ेभेद ल कर पने नाम एक नया मत निकाला परन्त मत की नींव शुरू से ही कमजोर थी ौर गति भी बहुत ंद थी क्योंकि लौं ाशाह के द छ समय व्यतीत होने पर जिस क्रि ा ा ेलौं ने विरोध किया था उसी क्रि ा को प के अनुयायियों ने ीकार र लिया फिर तो लौं शा की स्मृति केवल 'लौं ा त' ही गया।

लौंकाशाह न तो स्वयं विद्वान् था और न आपके समकालिन कोई आपके मत में ही विद्वान् हुआ। यही कारण है कि लौंकाशाह के समकालिन किसी लौंकाशाह के अनुयायी ने लौंकाशाह का जीवन नहीं लिखा इतना ही नहीं पर लौंकाशाह के अनुयायियों को यह भी पता नहीं था कि लौंकाशाह का जन्म किस ग्राम किस कुल में हुआ था, किस कारण से उन्होंने संघ में छेद भेद डाल नया मत खड़ा किया तथा लौंकाशाह के नूतन मत का क्या सिद्धान्त था इत्यादि।

यदि लौंकाशाह के अनुयायी लौंकाशाह के विषय में आज भी कुछ जानते हैं तो परम्परा से चली आई किंवदन्ति के आधार पर इतना जानते है कि:—

"लौंकाशाह एक साधारण स्थिति का जैन गृहस्थी था और वह पहले नाणवटी (कोडी टको की कोथली) का धंधा करता था। बाद जैन यतियो के उपाश्रय सूत्रों का उतारा (नकल) कर अपनी आजीविका चलाता था, शास्त्रों को लिखने से तथा यतियों के विशेष परिचय से लौंकाशाह को यही मालुम*

---

* जैन शास्त्र मूल अर्ध-मागधी, और टीका संस्कृत में है। इस भाषा से तो लौंकाशाह अज्ञात ही था और इस प्रकार का ज्ञान केवले लिखने मात्र से हो नहीं सकता है क्योंकि जिन लेखकों ने जैन शास्त्र लिखने में ही अपना जीवन पूरा किया है। उनसे पूछने पर इसका पता चल सकता है कि शास्त्राऽन्त निर्हित उपदेश और जैन सिद्धान्त का उन्हें कुछ भी बोध नहीं है। लेखकों का काम तो कापी टू कापी करना है, उनका मनन करना नहीं अतः सिवाय वे लिपि ज्ञान के क्या (अधिक) ज्ञान प्राप्त कर सकते है? यही हाल लौंकाशाह का था।

कि वर्तमान यतियों का आचार व्यवहार शास्त्रानुसार नहीं है अर्थात् यति लोग शिथलाचारी हैं बस इसी कारण से लौंकाशाह ने अपने नाम पर अलग मत निकाला और हम लोग उसी मत की परम्परा में लौंकाशाह के अनुयायी हैं।"

इस समय स्थानकमार्गी नामक समाज है वह भी पने को लौंकाशाह का अनुयायी होना बतलाता है पर वास्तव में वह लौंकाशाह के अनुयायी नहीं किन्तु लौंकाशाह की आज्ञा का भंग करने वाला यति लवजी का अनुयायी है। लौंकाशाह के अनुयायी और लवजी के अनुयायियों में बड़ी शत्रुता थी और वे आपस में एक दूसरों ो उत्सूत्र प्ररूपक, निन्हव और मिथ्यात्वी बतला रहे थे, इस हालत में स्थानकमार्गी समाज लौंकाशाह के अनुयायी कैसे हो सकते हैं ?

क्या लौंकाशाह के अनुयायी, और क्या लवजी के अनुयायी (स्थानकमार्गी) इन दोनों में ज्ञान का बोध बहुत कम था इसी कारण न तो इनमें कोई विद्वान् आ और न हुआ कोई अच्छा लेखक। साहित्य की सेवा और ग्रंथों का निर्माण तो दूर किनारे रहा पर जिस लौंकाशाह को अपने मत का आदि पुरुष माना जा रहा है उसका जीवन चरित्र के लिये भी किसी ने आज पर्यंत लेखनी हाथ में नहीं ली अतएव परम्परा से चली आई बात पर विश्वास कर लौंकाशाह को एक साधारण गृहस्थ एवं लहिया मान रक ा है।

वर्त्तमान युग, ान-युग है। इसका थोड़ा बहुत प्रभाव संसार पर हो चुका है। इस हालत में केवल स्थानकवासी समाज ही ज्ञान से वञ्चित क्यों रहे ? उस पर भी यत् किंचित्

न का प्रभाव पड़ा, और कई विद्वान् एवं लेख भी पैदा ए। उन्होंने साधारण व्यक्तियों का जीवन पढ़ा, तो उन में यह भावना पैदा होना स्वाभाविक है कि हमारे धर्म स्थाप गुरु श्री न् लौंकाशाह का जीवन आज पर्यन्त भी अन्धेरे में ों ? हमें भी इनका सुन्दर जीवन चरित्र बनाना चाहिए यह विचार कर लौंकाशाह का जीवन चरित्र लि ने तो बैठे। परन्तु कोई भी कार्य प्रारंभ करने के पहिले उसे सर्वांग सुन्दर बनाने के लिये तद्विषयक सामग्री की जरूरत रहती है, उनके (स्थानक मार्गी समाज के) पास इसका सर्वथा अभाव था। क्योंकि लौंकाशाह के जीवन चरित्र के विषय में जो कुछ धार प्रमाण मिलते हैं वे लौंकाशाह के समकालीन उनके प्रतिपक्षियों के लिखे ए ही मिलते हैं और ये प्रमाण चाहें वांश भी ों न हों परन्त स्थानकमार्गी समाज का उन पर इतना विश्वास नहीं कि वे इन प्रमाणों को सर्वांश सत्य समझें। हाँ ! लौंकाशाह के सम सामयिक पं० लावण्य समय. उ० मल य और बाद लौंकाशाह के करीब ३०-४० वर्षों में यति भानुचन्द्र ने कई चौपाइयां लि लौंकाशाह का अस्तित्व स्थायी अवश्य रक्खा है।

लौंकाशाह के पश्चात् प्राय: १०० वर्षों में लौंका मत के अनुयायी बहुत से श्रीपूज्य या यति ❀ लौंकाशाह के मत का

❀ वाड़ीलाल मोतीलाल शाह की ऐ० नो० के पृष्ठ ५९ के ले ऽनुसार लौंकागच्छ के पूज्य मेघजीस्वामी ने ५०० साधुओं के साथ चार्य वि हीर सूरिजी के पास जैन दीक्षा स्वीकार की थी। और उपाध्याय धर्मसागरजी के मताऽनुसार पूज्य मेघजी अलावा पूज्य

परि ाग र मूर्त्तिपूज   माज में दीक्षित ए, गौर मूर्त्तिपूजा के उपदेश बने, और शि साधुओं ने ी मूर्त्तिपूजा ो शास्त्र म्मत मान े अपने २ उपाश्रयों में मूर्त्तियों ी स्थापना की और द्रव्य भाव से उन ी पूजा अर्चा प्रारंभ ी, वह प्रवृत्ति आज कल भी लौंकागच्छ में ज्यों की त्यों वि मान है। भेद है तो इतना ही कि खास मूर्त्तिपूज समुदाय के आचार्य आदि जब नगर प्रवेश करते हैं, तब पहिले मन्दिर जाकर बाद में उपाश्रय जाते है। और लुङ्कागच्छ के श्रीपूज्य ादि आते हैं तो वे पहिले उपाश्रय जाकर फिर मन्दिर का दर्शन रते हैं। इ प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्य ता नहीं है। लौंकागच्छ के श्रीपूज्य, यति और हज़ारों घर इ सम विद्यमान हैं पर वे व मूर्त्तिपूजक हैं और मूर्त्ति पूजकों में ही उनकी गिनती की जाती है।

स्थान मार्गियों की उत्पत्ति वि म की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लुङ्का गच्छ के यति बजरंग जी के शिष्य यति लवजी और यति शिवजी के शिष्य धर्मसिंहजी से ई है। और लवजी के लिए लौंकागच्छ की पटावलियों में बहुत कुछ लि है कि "लवजी उत्सूत्र प्ररूपक गुरु निंदक, मुँह पर मुँहपत्ती बाँध तीर्थङ्करों की आज्ञा भङ्ग कर कुलिंग धारण किए हुए हैं।" तथा धर्मसिंहजी े लिए तो यहां तक लि ा है कि:—

श्रीपाल जी आदि बहुत साधुओं ने आचार्य हेम वि सूरि के पास भी जैन दीक्षा स्वीकार की। और पूज्य आनन्दजी स्वामि कई साधुओं साथ आचार्य आनंद विमल सूरि के पास पुनः दीक्षा ण की थी।

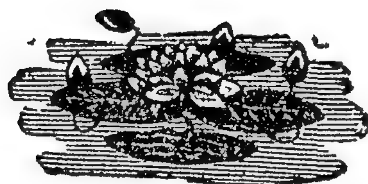
"संवत् सोल पचासिए, अमदावाद मझार ।
शिवजी गरू को छोड़ के, धर्मसिंह हुआ गच्छ बहार ॥
ऐ० नोंध, पृष्ट ११७

इस प्रकार लवजी और धर्मसिंहजी ने लौंकागच्छ से अलग पना एक मत निकाला । उसको ही लोग पहिले ढूंढिया और बाद में साधुमार्गी तथा आज स्थानकमार्गी मत कहते हैं । अतः निश्चित होगया कि लौंकागच्छ और स्थानकमार्गीयो की मान्यता एवं आचार व्यवहार में जमीन आकाश का अन्तर है, इसे हम आगे चल कर और भी विस्तार से बतावेंगे ।

जिस लौंकागच्छ की आज्ञा का भंगकर उनके अवगुण-वाद बोलने वाले यति लवजी और धर्मसिंहजी ने अपना मत पृथक् निकाला, उनके ही अनुयायी आज अपने मत का संस्थापक लौंकाशाह को याद करते हैं । कारण यह है कि पहिले तो लौंकागच्छ के श्रीपूज्यों और यतियों के साथ स्थानकमार्गियों की घोर द्वन्द्वता चल रही थी, इस हालत से स्थानकमार्गी लौंकाशाह को गोज क्यों करते, और क्यों उनके लिए कुछ लिखते भी, पर जब वि० सं० १८६५ में अहमदाबाद में संवेगपक्षीय महापण्डित नि श्री वीरविजयजी और स्था० साधु जेठमलजी के आपस में शास्त्रार्थ हुआ तो उस हालत में जेठमलजो को लौंकाशाह की शरण लेनी पड़ी, और उन्होंने अपने समकित सार नाम के ग्रंथ के पृष्ठ ७ में लौंकाशाह के विषय में कुछ लिखा भी है । बस स्थानकमार्गियों के पास लौंकाशाह के विषय में जो प्राचीन से प्राचीन प्रमाण कहा जाय तो यह जेठमलजी का लिखा आ समकित सार का ही प्रमाण है । पर आज के स्थान० समाज के नये

विद्वानों को इससे थोड़ा भी संतोष नहीं हुआ, कारण उन्होंने
मय अपने सरल किंतु सच्चे हृदय से यह लि दिया कि
लौंकाशाह एक साधारण गृहस्थ और लि ाई का धंधा करता
था, परन्तु आज के स्थानकमार्गी विद्वानों को तो अपने धर्म का
द्य स्थाप धर्मगुरू, "धुरन्धर विद्वान्, तिशय धनाढ्य,
साहुकार, राज मचारी, शास्त्र मर्मज्ञ, संयमी, मुनि, एवं आचार्य
तथा मुँह पर मुँहपत्ती बाधने वाला और मूर्त्ति का कट्टर विरोधी"
चाहिए। ऐसे सीधे सादे दीन गुरु से आज के आडम्बर प्रिय
शिष्यों को संतोष कहां ? अतः आज कल स्थानकमार्गी समाज में
जो नये ढँग के विद्वान् पैदा हुए हैं वे अपनी वाक् पटुता, मनोहर
लेखनशैली और अलौकिक अलङ्कृत शब्दावली से अच्छे से
अच्छा उपन्यास तैयार कर सक्ते हैं । इ हालत में लौंकाशाह
जीवन एक उपन्यास के ढंग पर तैयार कर अपनी तज्ञता का
परिचय दें इसमें ाश्चर्य की बात ही क्या हो सकती है ? पर
दुः है कि वे वतो भावेन ऐसा कर नहीं सकते। कारण
आपके पूर्वज लौंकाशाह ा ऐसा साधारण जो ले लि गए
हैं वही इनके कार्य में बाधा डालता है। फिर भी नई रोशनी के
मशील ले क एकान्त हतोत्साह नहीं हुए हैं, वे किसी न
किसी रूप में लौंकाशाह का महत्व भरा जीवन प्रकाशित कर ही
देते हैं, जनता उसे स । समझें या झूठा। इसकी इन्हें परवाह
नहीं। पर यह कार्य नैतिकता से जरूर विरुद्ध है। यदि स्थानक
मार्गी ाज को लौंकाशाह का सादा किंतु सच्चा जीवन पसन्द
हीं है तो उसको चाहिये कि अपने सर्वमान्य ले कों का सम्मे-
न रें और वहां र्व सम्मति से एक ही लक्ष्य बिन्दु को दृष्टि

में र कर वाद वि द के पश्चात् सच्चे जीवन चरित्र को लिखे तो वह विद्वर ाज में हँसी करानेवाला न होकर सर्व मान्य और विश्वसनीय समझा जा सकता है। आशा है लौंकाशाह के सच्चे जीवन के इच्छुक, स्थानक मार्गी माज के विद्वान् लेख व्यर्थ ही में आकाश पाताल एक न कर इस ार भरी सलाह पर ध्यान देंगे। जिस तरह स्थानकमार्गी समाज के वि न् आज तक भी लौंकाशाह के प्रमाणिक जीवन को प्रकाशित नहीं करा सके हैं उसी तरह तपागच वाले भी इस महत्व के विषय में मौनाऽवलम्बन धारण किये हुए हैं, गले प्रकरण में हम उसी का विस्तृत विवेचन करते हैं ।



प्रकरण-दूसरा

क्या तपागच्छीय यतिजी ने लौंकाशाह का जीवन लिखा है ?

स्था नकमार्गी साधु मणिलालजी ने हाल ही में "जैन धर्म नो संक्षिप्त प्राचीन इतिहास अने प्रभुवीर पटावली" नाम की एक पुस्तक मुद्रित कराई है। आप जब प्रस्तुत पुस्तक लिख रहे थे तब आपको डाक द्वारा किसी से प्रेषित "दो पन्ने" मिले, जैसे वाड़ीलाल मोतीलाल शाह को भी ऐतिहासिक नोंध लिखते समय डाक मिली थी। शायद उसका ही अनुकरण स्वामि मणिलालजी ने किया हो ?

उन दो पन्नों में श्रीमान् लौंकाशाह का जीवन वृत्तान्त था, वह भी वि० सं० १६३६ में तपागच्छीय यति श्रीनायक विजय के शिष्य श्रीकान्तिविजय ने पाटण में लिखा था। उन पन्नों को स्वामीजी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६१ में मुद्रित भी करवा दिया है। स्थानकमार्गियों के मताऽनुसार वे पन्ने ३५७ वर्ष के पुराने भी जरूर हैं। ये दोनों पन्ने तपागच्छ के यति कान्ति-विजय ने लिखे हैं या किसी दूसरे ने ? इस पर तो हम आगे चल कर विचार करेंगे, परन्तु पहिले यह देखना है कि इन पन्नों में लिखा क्या है ?

"अरहट वाड़ा, में हेमाभाई की भार्या गंगा की कुक्षि से वि० सं० १४८२ को एक पुत्र का जन्म हुआ, उसका नाम

लोकचंद्र रक्खा। वि० सं० १४९७ में लोकचंद्र का विवाह हुआ, जिसकी बरात अरहट वाड़ा से सिरोही गई। उसी लोकचन्द्र को लोग लौंकाशाह कहने लगे। वि० सं० १५०० में लौंकाशाह के एक पुत्र हुआ। बाद हेमाभाई ने अपनी दुकान का काम लौंकाशाह को सौंपा, और लौंकाशाह व्यापार कर अपने कुटुम्ब का निर्वाह करने लगा। बाद में लौंकाशाह अहमदाबाद को चला गया (शायद वहां अपना गुजारा नहीं होता था)। अहमदाबाद मे नाणावटी का व्यापार कई दिन तक किया। अनन्तर बादशाह मुहम्मद की भेंट हुई और बादशाह ने लौंकाशाह को पाटण के जाने का तिजोरीदार बनाया, फिर वहां से अहमदाबाद के खजाने का काम किया। जब बादशाह के पुत्र ने बादशाह को जहर देकर मार डाला तो लौंकाशाह को वैराग्य आया, और उसने पाटण जाकर वि० सं० १५०९ श्रावण सुदि ११ (चौमासा में) को यति सुमतिविजय के पास अकेले यति दीक्षा लेली और ज्ञानाऽभ्यास कर वि० सं० १५२१ में अहमदाबाद में चतुर्मास किया।"

लौंकाशाह के इस जीवन से आज के नयी रोशनी के स्थानकमार्गियों की जो अभिलाषा थी वह सब पूर्ण होगई। क्योंकि लौंकाशाह साधारण लहिया नहीं पर बादशाह का माननीय तिजोरीदार था, लौंकाशाह ने गृहस्थाऽवस्था में नहीं पर यति होकर अपना नया मत चलाया। यदि लौंकाशाह का यही जीवनवृत्त किसी लौंकाशाह के अनुयायी के नाम से तैयार किया जाता तो शायद इतना विश्वास पात्र नहीं समझा जाता। पर इसका लेखक तो ।स तपागच्छीय यति कान्तिविजय बताये जाते

हैं। इस कारण केवल लौंकों, तथा स्थान मार्गियों को ही नहीं किन्तु तपागच्छ तथा सब संसार को भी यह मान्य होना चाहिये। पर दुःख इस बात का है कि अभी तक तो तपागच्छ वालों ने उन दो पन्नों को देखातक भी नहीं है। और न किसी ने यह भी कहा है कि वास्तव में ये दो पन्ने तपागच्छीय यति के हैं या इनके नाम पर किसी ने कल्पित ढाँचा खड़ा किया है। इन पन्नों का वस्तुतः निर्णय न होने के पहिले ही स्थानकमार्गी साधु संतबालजी (लघुशताऽवधानी मुनि श्री शौभाग्यचंदजी) बीच में ही कूद पड़े हैं। अर्थात् इन्होंने बीच में ही इन दो पन्नों को मिथ्या सि करने को कमर कसी है। उन पन्नों के विरोध में आप लिखते हैं कि लौंकाशाह का जन्म अहमदाबाद में हुआ। (पन्नों में अरहट वाड़ा लिखा है) लौंकाशाह के लग्न की बरात अहमदाबाद से सिरोही गई (पन्नों में अरहटवाड़ा से सिरोही जाना लिखा है) लौंकाशाह ने यति दीक्षा नहीं ली किंतु उन्होंने गृहस्थाऽवस्था में ही शरीर छोड़ा।

संतबालजी ने केवल अपनी ओर से नहीं किन्तु श्रीमान् वाड़ी० मोती० शाह की "ऐतिहासिक नोंध" के आधार पर ही यह लिखा है। यही क्यों पर वि० सं० १८६५ में स्वामी जेठमल-जी भी लौंकाशाह को यति नहीं पर गृहस्थ ही लिख गए हैं, यह तो हुई स्थानकमार्गियों की आपस की विरुद्धता, अब उन दोनों पन्नों को इतिहास की कसोटी पर भी कस के देखें कि सत्य किस तह पर विद्यमान् हैं।

दोनों पन्नों में वि० सं० १४९७ में लौंकाशाह का सिरोही

में लग्न होना बतलाया है और इतिहास वि० सं० १४९७ में * बादशाह मुहम्मद का देहान्त बताता है इस समय लौंकाशाह अरहटवाड़ा जैसे गाँव में मात्र १५ वर्ष की उम्र का एक नादान लड़का था। बादशाह किस चिड़िया का नाम है यह भी उसे ज्ञात नहीं था। वि० सं० १५०० में लौंकाशाह के एक पुत्र हुआ और उसने कुछ असोंतक दुकानदारी भी की फिर अहमदाबाद गया वहाँ नाणावटी का धंधा किया और अनन्तर बादशाह की भेंट हुई। पर जब लौंकाशाह के व्याह के वक्त ही बादशाह मुहम्मद मर गया तो फिर लौंकाशाह को बादशाह की भेंट होना और अपना तिजोरीदार बनाना कैसे सिद्ध होता है? सुज्ञ पाठक स्वयं विचार करें।

हाँ! बादशाह मरने के बाद पीर हुआ हो और पीर होकर लौंकाशाह को पाटण और अहमदाबाद का तिजोरीदार बनाया हो तो स्वामिजी का काम निकल सकता है, क्योंकि लौंकाशाह के जीवन से यह भी पाया जाता है कि लौंकाशाह को पीर का इष्ट था, और उस अनार्य संस्कृति के प्रभाव से ही उसने आर्य होकर भी जैन धर्म में ऐसा अनार्योचित उत्पात मचाया था।

यदि उन दो पत्रो में वि० सं० १५०० में अरहटवाड़ा में लौंकाशाह के पुत्र होने का नही लिखते तो कम से कम लौंकाशाह

---

* १ रा० ब० पं० गौरीशंकरजी ओझा अपने राजपूताने के इतिहास पृष्ठ० ५२६ पर [illegible] ते हैं कि अहमदाबाद के बाद [illegible] मुहम्मद देहान्त वि० सं० १४९७ में हुआ था।

२ साक्षर डाह्या भाई प्रभुराम ने गुजरात के इतिहास में लिखा है कि अहमदाबाद का बादशाह मुहम्मद वि० सं० १४९७ में स्वर्गस्थ हुआ।

और बादशाह मिलाप की ब तो सत्य हो ाती अन्य ।
यह भी काल्पनि प्रतीत होती है ।

इस मिलाप के लिए स्वामी मणिलालजी ने ा "प्रभुवीर पटावली" पृष्ठ १६४ पर फुटनोट में लि । है कि अगर लौंकाशाह का जन्म वि० ं० १४८२ के स्थान में १४७२ का समझा जाय तो लौंकाशा को जाँचीपना नहीं तो बादशाह के साथ मिलाप का उल्ले तो ंभव हो सकता ।

स्वामीजी को क्या वह मालूम नहीं है कि दु नदार अपने चोपड़े मे एक पन्ना नि ाल देता है तो ब चोपड़े झूंठे ठहरते हैं। मान लो वि ाप लौं शा जन्म मय १४८२ के बदले वि० सं० १४७२ । लो तो ी फिर लग्न मय बदले बिना लौंकाश और बादशा का मि ाप ं हो नहीं सकता। यदि ग्न मय भी ं० १४९७ के बदले वि० ं० १४८७ का मान लेंगे तो भी आपकी इष्टसि नहीं होगा। ोकि लौंकाशाह के र टवाड़ा में वि० ं० १५०० में ए त्र ो के बाद अहमदाबाद जाने की बात ापके मार्ग में रोड़े डालेगी। यदि लौंकाशा के पुत्र । मय ं० १५०० के बदले १४९० का मान लोगे तो मारे नये वि ान् स्वामी ं बालजी ा कभी चौंक नहीं उठेंगे ? । ारण उन्होंने दावे के ाथ लिखा है कि लौंकाशा न्म वि० ं० १४८२ ार्त्ति सुदि १५ को हुआ। ज ब ाप ं १४८७ में लौंकाशा का वि ह कर ते हो तो संतबालजी के ऽनु र लौंकाशा का लग्न ५ वर्ष की वय में और त्र जन्म ८ वर्ष ी वय में मानना होगा। अतः पहिले कर घर संत लजी े तो पूछ लो वि ई में

लौंकाशाह के जन्म समय में १० वर्ष का अन्तर डालता हूँ जिससे कि कम से कम लौंकाशाह और बादशाह का पारस्परिक मिलन तो होजाय ? क्या आप इस बात को स्वीकार कर लेंगे कि लौंकाशाह का लग्न पाँच वर्ष और उसके पुत्र ८ वर्ष को वय में हुआ था ?

स्वामीजी ! आप लौंकाशाह को धनाढ्य, राजकर्मचारी और यति से दीक्षित सिद्ध करने को दो पन्ने मुद्रित करा कर उलटे चक्कर में फँस गये। लौंकाशाह की तमाम घटनाओं के समय को बारबार बदलने की कोशिश करने पर भी संतबालजी आप से सहमत नहीं हैं। अतः सब से बहेतर तो यह है कि इस काल्पनिक मूल ढाँचे को ही बदल दिया जाय। ऐसा रने से आपके सिर पर आई हुई सब आपदाएं टल जायेंगी।

जरा आंखें मूंदकर विचार करें कि वि० सं० १६३६ का समय तो तपागच्छ और लौंकामत के बीच भीषण प्रतिद्वन्द्विता का था। क्योंकि पूज्य मेघजी श्रीपालजी आनंदजी आदि सेकड़ों साधुओं ने इसी समय लौंकागच्छ का परित्याग कर जैन दीक्षा ली थी। उस समय ऐसा गया बीता तपागच्छ का यति कौन होगा कि लौंकाशाह की असम्बन्धित घटना अपने हाथ से लिख दे। शायद किसी पक्षान्ध व्यक्ति ने तपागच्छीय यति का नाम लिख इनकी रचना की हो तो भी यह कल्पनिक ही है। क्योंकि भाषा की दृष्टि से ये पत्र इतने प्राचीन सिद्ध नहीं होते हैं। पर हमारे स्थानकमार्गी भाईयों को भाषा का ज्ञान ही कहां है ? अतएव आज की सुधरी हुई भाषा में दो पन्ने लि उन्हें ३५७ वर्ष के प्राचीन सिद्ध करने का मिथ्या प्रयत्न करते हैं, पर भाषा मर्म स्वीकार करेंगे या नहीं ? इसकी आपको परवाह ही क्या है ?

वास्तव में ये दो प ` तपागच्छीय यति के तो क्या पर उ समय के लिखे हुए ही नहीं प्रतीत होते हैं बल्कि र्वाचीन मय में किसी ने कल्पित बनाए हैं। और इस ल्पित मत में यही कल्पना पहिली वार ही नहीं पर आगे भी कई बार ी गई हैं। उदाहरणार्थ लीजिए वि० सं० १८६५ में हमदाबाद में तपागच्छय और स्थानकमार्गी (ढूँढिये) ाधुओं में शा ार्थ आ, उ स्थानकमार्गी हार गऐ तो स्वामी जेठमलजी ने तीन पानों के अन्दर एक "विवाह चूलिया सूत्र" के नाम पर नया पाठ बना कर अपने पक्ष की पुष्टि में प्रमाण दिया। पर जब उसकी परीक्षा हुई तो सारी ा के मक्ष ही उन ३ पत्रों को जल देवता ी शरण करना पड़ा। इसी भाँति स्थानक मार्गी साधु नणमलजी ने भी अपनी पुस्तक में कई ए नये ल्पित पाठ* बना र छपाये हैं, जिन्हें कई स्थान मार्गी भी स्वयं कल्पित रार देते हैं।

---

* "किंभंते। शिलावटाणं जिणपर्ा ाणं अ ा पियारो हवइ × × × तिथ्थकरेणं अम्मापियारा वणइ वइ २ त्ता, अ मोदइ २ ता किंफल × × जिण सिद्धान्ताणं रोहणी (लिलाम) करइत्ता किंफल तिर्थकराणँ, × जिणमन्दिरेणं × × पखालेण × × किंभंते पंचम कालेणँ सावज्जा चारेणँ संस्कृतेणं चत्तारेणं अँग भाषेहता × × परतिष्टाणं × × यात्राण × किंभंते। केवलीणं नाटक करे इ सनमुखेण × × तिर्थंकरेणँ गोत्रेणव × × संवेगड़ाणभंते × × × इत्यादि ऐसे कई पाठ बनाके अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है परन्तु खास स्थानकवासी समाज ही इनका सख्त विरोध करता है और इन उत्सूत्रों को अनुमोदन करनेवालों को अनंत ारी समझता है।

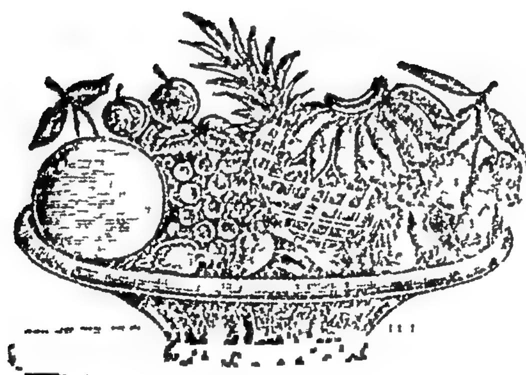
स्थानकमार्गी साधु मणिलालजी ने पूर्वोक्त दो पत्रों पर विश्वास कर लौंकाशाह का जीवन लिख "प्रभुवीर पटावली" मक पुस्तक में छपवा तो दिया पर आपके इस कल्पित लेख की नींव कितनी कमजोर है इस पर तनिक भी विचार नहीं किया। जीवन चरित्र के मूलाधार जब ये दोनों पत्र भी यं झूंठे सिद्ध होते हैं तो उनके आधार पर रचित यह जीवन वृत्त तो तः झूंठा वित होगया॥। दूर जाने की बात नहीं आपके इस हवाई किले को तो यं संतबालजी ने भी विध्वंस कर दिया। इतने पर भी आप को इन पत्रों की सत्यता पर विश्वास हो तो संतबालजी ी लिखी "धर्मप्राण लौंकाशाह" नाम की लेखमाला को सप्रमा असत्य सिद्ध करने का साहस करें।

॥स्थानकमार्गी साधु मणिलालजी का "जैन धर्म नो संक्षिप्त इतिहास" लिये अ ल भार र्षीय स्थानकवासी जैन श्वे० स्था० कान्फरेन्स ने तारीख १०-५-१९२६ रविवार की जनरल वार्षिक बैठक में—अहमदाबाद १० वां प्र व पास ि ा है कि—

ऑफिशियल इतिहास के अभाव से अपूर्ण अहेवाल छपे हों वे भविष्य में इतिहास बन जाते हैं। साक्षात् देखने वाले तो चले जाते हैं, और ल से तैयार किया हुवा हित्य सत्य माना जाता है। "अजमेर सम्मेलन यात्री" और "जैन धर्म का प्राचीन संक्षिप्त इतिहास" में अजमेर धु सम्मेलन का रिपोर्ट अपूर्ण है। इ ा नहीं कितनाक भाग उल्टे र ा पर लेजाने वाला है। ये पुस्तक अपने प्रस्ताव अनुसार ाणित भी नहीं। इस प्र से "जैन धर्म नो संक्षिप्त इतिहास" की ि नी णिकता है, सो स्पष्ट हो जाता है।

ता० १७-५-२६ जैन प्रकाश पृ० ३४२

अस्तु । इ विवेचन से पाठ भली भाँति म गये होंगे कि जो दो पन्ने तपागच्छीय यति ान्तिविजय के नाम ` द्रित करवाये हैं वे बिलकुल लिपत हैं आगे चल कर हम यह बतलाने की चेष्टा करेंगे वि लौंकामत और स्थान मार्गी पन्थ के विद्वानों के पास लौंकाशाह के जीवन लिखने में प्रमाणों का अभाव क्यों है ? और ऐसे लिपत पन्ने क्यों बनाये जाते हैं प ध्या दे कर पढ़े ।



करण तीसरा

स्थान मार्गियों के स लौंकाशाह के जीवन विषयक ममाणों । अभाव क्यों हैं ?

लौंकाशाह का इतिहास लौंकाशाह के अनुयायी श्रीपूज्य व यति वर्ग के पास से ही मिल सकता है, नवि स्थानकमार्गियों के पास से। क्योकि तौंकाशाह के अनुयायियों और स्थानकमार्गियों के आदि पुरुषों के आपस में बड़ी भयंकर शत्रुता चल रही थी। लौंकागच्छ के श्रीपूज्योंने यति धर्मसिंहजी एवं लवजी को अयोग्य समझकर ही गच्छ ` बाहर किया था। इसी अपमान से हो इन दोनों ने भगवान् महावीर और लौंकागच्छ की आज्ञा को भंगकर कई मन कल्पित कल्पनाओं द्वारा अपना नया ढूँढिया मत चलाया। परन्तु कलिकाल के कलुषित प्रभाव से उन दोनों की भी मान्यता एक न रह सकी, क्योकि जब धर्मसिंहजी ने श्रावक के सामायिक आठ कोटि से होने की कल्पना की तो लवजी ने डोरा डाल मुँह पर मुँहपत्ती बाँधने की कल्पना कर डाली। इन नयी २ कल्पनाओं के कारण लौंकाशाह के अनुयायियों और नूतन मत स्थापकों के परस्पर में वैमन होना भाविक था। तः नूः मत स्थापक, लौंकाशाह के इतिहास की ओर ों ध्यान देते ? जैसे स्थानक गियों ` से स्वामी भी मजी ने दया दान की उः । तेरहपन्थी

निकाला तो वे रुघुनाथजी आदि र मार्गियों इतिहा उपकार कब मानने बैठे थे? वे तो उलटा उन्हें (रुघुनाथजी आदि को) शिथिलाचारी, उत्सूत्रवादी और निन्हव कहने में भी नहीं चूके। जैसे कि धर्मसिंह, लवजी ने लौं । । के अनुयायियों श्री पूज्यो और यतिवरों को कहा था। इस हालत में स्थानकमार्गियों के प लौंकाशाह का इतिहा मिले तो यह संभव ही है। जब वि० ०१८६५ में मदाबाद में संवेग पत्तिय महान् पं० वीर वि यजी गणि और स्थानक मार्गी साधु जेठमलजी के आपस में शास्त्रार्थ हुआ तो वहाँ धर्मसिंहजी लवजी से ही उनका काम नहीं चला, किन्तु मूर्त्तिपू । विरोध लौंकाशाह को भी याद करना पड़ा, और उन्होंने ने म त सार नामक पुस्तक में लौंकाशाह की चर्चा भी की। (इसे हम पूर्व भी लिख चुके हैं) बस, स्थानकमार्गी समाज में हीं भी लौंकाशाह का यदि नामोल्लेख किया गया है तो स्व-स्वार्थ साधनार्थ एक इसी पुस्तक मे सर्व प्रथम स्वा० जेठमलजी ने किया है, पर यह वर्णन सादा और सरल होने से आज के स्थानकमार्गियों को रुचिकर नहीं होता। अच्छा होता, यदि जेठमलजी अपनी स्त में लौंकाशाह विषयक प्रसंग को जरा भी स्थान नहीं देते कि ये बिचारे अपनी रुचि के अ सार निःसंकोच हो लौंकाशाह के जीवन चरित्र का ढाँचा उपन्यास के तौर पर ऐसा सुन्दर ड़ा करते, जिसे दे सभ्य समाज को भी एक र दंग रह जाना पड़ता, परन्तु दुः है कि जेठमलजी का किया । लौंकाशाह विषयक उपकार उलटा अ प र सिद्ध हो इन नयी रोशनी गों के मार्ग में बाधा ल रहा है।

मी जेठमलजी के बाद प्राय: १०० वर्षों में किसी भी
ार्गी ने लौंकाशाह का नाम तक नहीं लिया, पर इस बीसवीं शताब्दी में फिर लौंकाशाह की आवश्यकता हुई और श्रीमान् डीलाल मोतीलाल शाह ने वि० सं० १९६५ में एक "ऐतिहासिक नोंध" नाम की किताब लिख सोते हुए स्थानक ार्गी समाज को जागृत किया।

जमाने ने फिर रंग बदला। श्रीमान् सन्तबालजी ने शाह की ऐतिहासिक नोंध में मनगढ़न्त सुधार कर अपने नाम से "श्रीमान् धर्मप्राण लौंकाशाह" नाम की लेखमाला लिखकर 'जैन प्रकाश' पत्र मे प्रकाशित करवाई पर श्री मणिलालजी को वह भी पसन्द नही ाई। आपने कुछ भाग ऐतिहासिक नोंध से; और भाग तपागच्छीय यति कान्तिविजयजी लिखित दो पत्रों से संगृहीत कर अर्थात् इन दोनों के मिश्रण से और कुछ फिर अपनी नयी कल्पना से "†प्रभुवीर पटावली" में लौंकाशाह का ए निराले ढंग पर जीवन चरित्र छपवाया। अब फिर न जाने भविष्य में इसमे भी कितने सुधारक क्या क्या सुधार करेंगे ?

वस्तुत: निष्पक्ष हो ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इन सब ले कों के पास प्रमाणों का तो पूरा अभाव ही है। जिसे हम इन्हीं समाज के विद्वानों के वाक्यो को यहाँ उद्धृत कर दि ाते हैं। पाठक तथ्याऽतथ्य का निर्णय करें। यथा—

स्थानक० साधु मणिलाल जी—

"× × × इतिहास लखवानी प्रथा जैनोमां

† यह पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है। जिसको स्था० समाज अप्रमाणिक होना घोषित कर दिया है।

घणी ओछी होवा थी, एक महान् अने प्रबल सुधार श्रीमान् लौंकाशाह ना जीवन थी पण आपणे केटलेक अंशे अन्धारामां रह्या छीअे ।"

× × ×

"× × × तेमना इतिहास संबन्धी आपणे जोइये तेवी माहिती मेलवी शक्या नथी ।"

प्रभुवीर पटावली पृष्ठ १५७

× × ×

"अेवा एक प्रबल तेजस्वी क्रान्तिकारक अने चारित्रशील पुरुषना व्यक्तित्व ने, तेना जीवन वृत्तान्त ने आपणे पक्के पाये खरी खात्री थी जाणी शक्या नथी, ते एक दुर्भाग्य नो विषय छे श्रीमान् लौंकाशाह कोण हता ? क्याँ जन्म्या हता ? कई रीते तेमणे सत्य धर्म नी घोषणा करी ? अने तेओए कया २ कार्यों कर्यां, तेनो संपूर्ण एहवाल पण आपणे जोइये ते रीते मेलवी शक्या नथी । पृथक् २ विद्वानों ना पृथक् २ अनुमानों पर हजुअे आपणे लक्ष दोरी रह्या छीअे, अद्यापि सुधिमां तेमना जीवन अने विकास माटे आपणे जे कांई सांभलीये छीअे, तेमां वधु वजन वाली वात " ऐतिहासिक नोंध " जे प्रखर तत्वज्ञ श्रीमान् " वाड़ीलाल मोतीलाल शाह " लिखित जणाय छे × × × ।"

प्रभुवीर प ^ पृष्ट १५८–६

ी र श्री संतबालजी दि स्था० साधु और गृहस्थ ले कों लौंकाशाह विषय प्रमाणों का सब से बढ़कर धार श्रीमान् ० मो० और से लिखित "ऐतिहासिक नोंध" है। ऐति० नोंध स्वयं ` नाम से ही विश्वास दिला रही है कि में इतिहा की बातों की ही नोंध (चर्चा)-होगी। और श्रीमान् वाडी० मोती० शाह स्थानकमार्गी समाज में एक बड़े भारी विद्वान् और इतिहास के संशोधक समझे भी जाते हैं।

ब देखना यह है कि श्रीमान् वाडी० मोती० शाह ने अपनी नोंध में लौंकाशाह का जीवन जिन साधनों को उपलब्ध कर लि । है उन्हें हम आपके ही शब्दों द्वारा व्यक्त कर देते हैं, हालाँ कि स्थान० समाज का इस पर अटूट विश्वास है।

"× × × हम लोगो में इतिहास लिखने की प्रथा कम होने से एक जबर्दस्त धर्म सुधारक, और जैन मिशनरी ` सम्बन्ध में आज हम बहुत करके अंधेरे में हैं।"

ऐतिहासिक नोंध पृष्ट ६५

× × ×

"इतना होने पर भी अभी हम उनके खुद के चरित्र के बारे में धेरे में ही हैं × × ×, लाकाशाह कौन थे? कब—कहाँ कहाँ फिरे इत्यादि बातें आज हम पक्की तरह कह नहीं सकते हैं × × जो कुछ बातें उन ` बारे में सुनने में आती हैं, उनमें से मेरे ध्यान में मानने योग्य ये जान पड़ती हैं × × × ×।"

ऐतिहासिक नोंध पृष्ट ६६

"× × × पर इस तरह कोई उल्लेख उनके निगुण भक्तों ने कहीं नहीं किया कि ोंकाशाह कौन स्थान में जन्मे ? कब उनका देहान्त हुआ ? उनका घर संसार कैसा चलता था ? वे थे किस सूरत के ? उनके पास कौन २ शास्त्र थे ? वगैरह २ हम कुछ नहीं जानते हैं × × ।"

ऐतिहासिक नोंध पृष्ट ७८

× × ×

"× × × मैं इन बातों को मञ्जूर करता हूँ कि मुझे मिली हुई हकीकतों पर मुझे विश्वास नहीं है। क्योंकि हमारे में यह इतिहास लिखने की प्रथा न होने से जुदी २ याददास्ती में जुदा २ हाल लिखा है × × × ।"

× × ×

ऐतिहारि नोंध पृष्ठ ८७

श्रीमान् लौंकाशाह के जीवन इतिहा के विषय में भी जब यह हाल है वि , वे हां जन्मे, हां मरे, उनकी सूरत कैसी थी, उनका संसार कैसे चलता था, के पा क्या क्या सूत्र थे, वे कहाँ २ फिरे, इ दि बातें भी ज कोई नहीं जानता तो उनको बड़ा साहूकार, महाविद्वान्, तिशय धर्मसुधार , न्तिकार आदि लिख मारना य लौंकाशाह ी हँसी उड़ाना नहीं है। खैर ! वाड़ीलाल तो गृहस्थ थे, × पर तीन कर और तीन योग से बोलने ाग ब । वाले श्रीमान् संतबालजी एवं मणि । ी ने ी लौं । के ीवन विषय

में संभव गर्वे मार कर अपने दूसरे महाव्रत (सत्य भाषण) । कैसे रक्षण किया होगा ? यह समझ में नहीं आता । में हम यह पूछना चाहते हैं कि इ २० वीं सदी में ये ऐसे कल्पित कलेवरों की आप लोग कितनी कीमत कराना चाहते हैं ?

लौंकाशाह का जीवन लि ने वाले जितने स्थान मार्गी हैं वे अपना २ बचाव करने के लिए प्रायः यह लि देते हैं बि जैनों में इतिहास लिखने की प्रथा थी ही नहीं, या थी तो बहुत कम, इसलिए लौंका ाह के विषय में इतिहास नहीं मिल है । पर हम आप से यह पूछते हैं कि जब लौंकाशाह का इतिहास मिलता ही नहीं है तो, फिर आपने लौंकाशाह का जीवन कि आधार पर लिखा है । जैसे लौंकाशाह का जन्म सं० १४८२ काति सुदि १५ को, लौंकाशाह की दीक्षा वि० १५०९ श्रावण सुदि ११ को, इत्यादि फिर वे कहाँ से लिख मारा है, । आपने ये सब मनगढन्त ही लिखे हैं ।

जैनों में इतिहास लिखने की प्रथा थी ही नहीं, यह लि तो केवल पना बचाव करना है । लौंकाशाह को तो ए आज केवल ४५० वर्ष हुए हैं परन्तु जैन साहित्य में हजार वर्ष से अधिक पूर्व का तो विस्तार से लिखा हुआ इतिहास प्राप्त है । पूर्वकालीन प्राप्त इतिहास केवल बड़े २ जैन धर्माऽवलम्बी राजाओं तथा जैन धर्म के ाचार्यों का ही नहीं है, अपितु जैन धर्म में श्रद्धालु, जैन सद्गृहस्थों का इतिहास भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध है । जैसे कि—"मंत्री विमल, उदायण, वाहड़, सान्तु मह , मुंजल मंत्री, महामात्य वर पाल तेजपाल, जगडुशाह त्रिभुवनसिंह, संग्रामसोनी राजसिंह सोमाशाह मंत्री नारायण, मोशाह

मुहता तेजसिंह, स लसिंह, ंत्री यशोधवल, हणोत नै ी, खेतसी, जेतसी, देशलशा , ारंगशाह, समरा ाह, थेरुशा , पेथड़शाह, पुन शाह, भैंसाशाह, चोपाशाह, लुनाशाह, खेमाशाह, दयालशाह, नांनगशाह, रामाशाह, भैंरूशा ोरपाल, सोनपा , भामाशाह, सोजत ं वैद मुहता, जोध र के सिंघी, भंडारी, मुर्शिदाबाद ं जगत सेठ, अहमदाबाद के नगर सेठ, ोर टीला-वाणिआ, आदि अनेक महापुरुषों के इतिहा विद्यमान हैं। इतना ही नहीं, किन्तु सोलहवीं शताब्दी के इतिहा से जैन ाहित्य ओतप्रोत भरा पड़ा है, फिर केव एक लौंका ाह के विषय ही यह क्यों कहा जाय ि हमारे में इतिहास-ले नप्रथा नहीं थी, लौंकाशाह के मकालीन ए कडुआशाह भी हुए। उन्होंने भी लौंकाशाह की भाँति ही अपने नाम पर ए पृथक् कडुआमत निकाला था, उनका तो इतिहास मिलता है, फिर लौंकाशाह का ही इतिहास न मिले इसमें क्या कारण है। यदि कोई ाधार व्यक्ति हो, उसका तो इतिहास शायद चूहों के बि की शरण ले सकता है, परन्तु स्थानकवासियों की मान्यतानुसार सात करोड़ जैनों से टक्कर लेने वाले, म न् ान्तिकारक, अपने नाम से नया मत निकाल, एकाध वर्ष में ही बिना वै ानिक सहायता , उ भारत के इस छोर से उस छोर तक फैलाने वाले, ला ों चैत्य-वासियों से मंदिर मूर्ति-पूजा छुड़ाके उन्हें अपने नव प्रचलित धर्म में दीक्षित करने वाले, स्वनाम धन्य लौंकाशाह । इतिहास कि गुफा में गुप्त र गया, रे इतिहास तो दूर किनार रहा, उनके गाँव घर, जन्मस्थान, ोर जन्मतिथि । हाथ न लगना, य स्था कमार्गियों के लिए कम दुः ोर म की बातनहीं ?

इस विषय का उपालंभ हम जैन इतिहा -कारों को ही नहीं किन्तु जैनेतर सहृदय अन्यान्य इतिहासकारों को दिये बिना भी नहीं रह कते। क्योंकि आपके इतिहासों में जब महात्मा कबीर नान , रामचरण, नरसिंह मेहता, मीरांबाई आदि को भी स्थान मिला है तो लौंकाशाह जैसे प्रबल सुधारक (!) को स्थान नहीं मिलना क्या यह एक परिताप का हेतु नहीं है ?

वस्तुतः यह गलती इतिहासकारों की नहीं किंतु स्थानकमार्गियों की यह एक प्रवत् कल्पना है कि लौंकाशाह एक नामांकित पुरुष हुए हैं, पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। स्थानकमार्गियों के हित्य में तो लौंकाशाह का अस्तित्व तक भी नहीं है। उनको तो प्रत्युत पं० ावणयसमयजी और उपा० कमलसंयमजी का महान् उपकार नना चाहिए, जिन्होंने कि स्वरचित ग्रन्थों में मोल्लेखकर लौंकाशाह का रि त्व स्थिर रक्खा है। अन्यथा लौंकाशाह ोई नाम नि ान ही नहीं था कि लौंकाशाह नाम ा भी कोई व्यत्ति र में प्रकट हुआ है।

ब म यह दिखाना चाहते हैं कि लौंकाशाह से ंबन्ध वाले कौन २ ाण उपलब्ध हैं जिनसे हमें इनके स्तित्व पता मिल स ? इन्हें पाठक गले प्रकरण में पढ़ें।

प्रकरण—चौथा

लौं ाशा विष   प्रा   माण।

लौंकाशाह के जीवन इति । के विषय में लौं ाग-च्छीय श्रीपूज्य व यतिवर्ग के पास अनेक पटावलियें आदि आज भी विद्यमान हैं, पर वे स्थानकमार्गियों को रुचिकर नहीं है, कारण! उन पटावलियों में न तो दिन भर मुँहपत्ती बाँधने का निर्देश है और न आज तक भी उनके नु-यायी बाँधते हैं। इतना ही नहीं पर लौंकाशाह की मान्यता के एवं परम्पराऽऽगत ाचार व्यवहार के विरुद्ध चलने के ण श्रीमान् धर्मसिंहजी लवजी नाम यतियों ो गच्छ के बाहिर करने का भी उल्ले ि ा है, इसी पमान के कारण इन दोनों महाशयों ने "ढूंढिया" नाम नया मत नि ला था, इसका भी वर्णन इन प वलियों में ंकित है। इ हालत स्थान -मार्गी समाज को ने पूर्वजों ी सत्यस्थिति (निंदा) बताने वाली पटावलियें कब भीष्ट हो सकती है? ौर वे व उन्हें (पटावलियों को) प्रमाणि मानने को तैयार हैं।

परन्तु फिर भी लौंकाशाह की पाट परम्परा मिलाने के लिये थोड़ा बहुत ंबंध व मा ी प वलियों से लिए बिना काम नहीं च ा, तः लौं गच्छ की प वलियों को प्रा-माणिक ा नते ए भी जहाँ पना रुक जा है वहाँ उनकी शर लेनी ी प ती है। गियों जो कुछ

इतिहास है वह लौंकागच्छ की पटावलियें ही हैं, इनको यदि निकाल दिया जाय तो स्थानक मार्गियों के पास कुछ भी अपना पूर्व इतिहास शेष नहीं रहता। और लौंकागच्छ के प्रतिपक्षियों ने भी जो कुछ लिखा है वह भी लौंकाशाह के लिए ही, न कि स्थानकमार्गियों के लिए। फिर समझ में नहीं आता है कि आज स्थानकमार्गी लोग लौंकाशाह को अपना धर्मस्थापक एवं धर्मगुरु किस कारण मानते हैं ? क्या लौंकाशाह के सिद्धान्त स्थानकमार्गी मान्य रखते हैं ?।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में एक लौंकाशाह नाम व्यक्ति ने जब जैन समाज में उत्पात मचाकर अपने नये धर्म की नींव डाली, उसके विरुद्ध में अनेक धुरंधर विद्वान् आचार्योंने अपनी आवाज उठाई और लौंकाशाह के खण्डन में अनेक ग्रन्थोंमें उल्ले भी किए, पर लौंकाशाह और लौंकाशाह के किसी भी आनुयायी ने उससमय कुछ भी प्रत्युत्तर दिया हो, इस विषय में कोई उल्ले नजर नहीं आता है। इतना ही नहीं पर लौंकाशाह के मूल सिद्धान्त क्या थे ? वह कौनसी धर्म क्रियाएँ करता था इसका भी कोई उल्लेख न तो स्वयं लौंकाशाह का और न उनके प्रतिष्ठित मताऽनुयायीका ही मिलता है, इससे यह पाया जाता है कि न तो स्वयं लौंकाशाह किसी विषय का विद्वान् था और न उनके पास कोई अन्य विद्वान् ही था। केवल पाप-पाप, हिंसा-हिंसा और दया-दया करके भद्रिक जनता को मिथ्याभ्रम में डाल पर्ना सि। जमाना ही लौंकाशाह का सिद्धान्त था, यह कहें तो मिथ्योक्ति नहीं है। लोंकाशाह के जी चरित्र विषय में लौंकाशा के समकालीन ले कों ने जो लिखा है, उससे ठीक

ज्ञात होता है कि लौं शा जैन धु और जैन गम किन्हीं को भी बिलकुल नहीं मा था यही क्यों पर वह तो जैनधर्म की मुख्य क्रिया—सामायिक, पौसह, प्रति मण, प्रत्याख्यान दान और देवपूजा को भी मानने से इन्कार था। इस विषय में आज तक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसकी सूची पाठकों के अवलोकनार्थ हम नीचे दे देते हैं:—

नं०	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	संवत्
१	सिद्धान्त चौपाई	पं० निश्री लावण्य-समय	वि० सं० १५४३
२	सिद्धान्तसार चौपाई	उपाध्याय कमल म	वि० सं० १५४४
३	उत्सूत्र निवारण छत्तीसी	नि वीका	वि० सं० १५४४
४	दयाधर्म चौपाई	लौंकागच्छीय यति नुचद्र	वि० सं० १५७८
५	तरण तारण श्राव र	दि० ण स्वामी	वि० सं० १६वीं श.
६	भद्रबाहु चरित्र	दि० रत्नानंदी	वि० सं० १६वीं श.
७	कुमतिध्वंस चौपाई	पं० हीर कलस	वि० सं० १६१७
८	लुंपक निराकरण चौपाई	दि० सुमति कीर्ति	वि० सं० १६२७
९	लौंकाशाह जीवन	तपागच्छीय कान्ति वि	वि० सं० १६३६
१०	तपागच्छीय पटावली	उ० धर्मसाग ी	वि० सं० १६४८
११	लौंका० सिलोको	लौं ० यति केशवजी	वि० सं० १७वीं श०
१२	कडुआमत पटावली	सं० श्रा० कल्याणजी	वि० स० १६८४
१३	कवितामय जीवन	रूपचन्द	वि० सं० १६९९
१४	सिद्धान्त चौपाई	पं० गुणविनय	वि० सं० १७वीं श.

१५	वीर वंशावली	....	वि० सं० १८०६
१६	सम सार	स्था० साधु जेठामलजी	वि० सं० १८६५
१७	शास्त्रोद्धार मीमांसा	६ ०भ० ने उद्धृतकी	वि० सं० १८८१
१८	अज्ञानति भास्कर	जै. आ विजयानंद सूरि	वि० सं० १९४१
१९	ऐतिहासिक नोंध	वाड़ी० मोतीलाल शाह	वि० सं० १९६५
२०	श ेद्धार मीमांसा	स्था० ० अमोलख ऋषिजी	वि० सं० १९७६
२१	जैनयुग का एक लेख	जैन श्वे० कान्फ्रेंस पत्र	वि० सं० १९८२
२२	राजपूताने का इतिहास	पं० गौरीशंकरजी ओझा	वि० सं० १९८३
२३	जैन० प्रभुवीर पटावली	स्था०साधु मणिलालजी	वि० सं० १९९१
२४	धर्मप्राण लौंकाशाह	स्था०साधु संतबालजी	वि० सं० १९९२
२५	लौंका० की पटावली	स्था० धु नागेन्द्र चंदजी द्वारा	
२६	ई समाचारका लेख	स्था०साधु विनयर्षिजी	४-४-३६
२७	उपकेशगच्छ पटा ी	उ० सहज सुन्दर	
२८	आंचलगच्छ ली	पं० हीरालाल हंसराज	

इनके अलावा ौर भी ने ग्रन्थ और पटावलियों लौंकाशाह के विषय का उल्ले मिल सकता है, और जिनके आधार से लौंकाशाह का एक प्रामाणिक इतिहास भी तैयार हो स ा है। लौंकाशाह कब जन्मा, इसका खुलासा हम पाँचवें प्र ण में करेंगे।

कर —पाँचवां

ौं । । ।

इसमें तो कोई सन्दे नहीं कि 'घटि जैन । को भिन्नच्छि करने के लिए ौं ाशा नाम ए व्यक्ति हुए, और इन मय विक्रम की पंद्रहवीं ब्दी अंतिमाऽर्द्ध से सो हवीं दी के पूर्वा त का है, परन्तु स्थानकमार्गियों के पास आपके उत्पत्ति मय के बारे में भी कोई निर्णीत प्रमाण नहीं है, इस विषय में यत्किंचित् प्रमाण ाथ लगते हैं वे अन्यान्य गच्छीय ले कों के लिखे ए ी हैं जो नि - प्रकार हैं।

(१) पंडित मुनि लावण्य समय जी (वि० सं० १५४३)

"सई उगणीस वरिस थया, पणयालीस प्रसिद्ध ।
त्यारे पछी लुंकु हुइ असमंजस तीणइ किद्ध ॥३॥

सिद्धान्त चौपाई ।

ये महाशय वीर प्रभु ` १९४५ वर्षों के बाद र्थात् वि० सं० १४७५ में लौंकाशाह जन्म होना बताते हैं।

× × ×

(२) उपाध्याय कमल संयम (वि० सं० १५४४)

"संवत् पनर अठोतरउ जाणि, लुंको लहियो मूल निखाणि

× × ×

संबत् पनर नु त्रिसई कलि, प्रकट्यो वेषधार समकलि"

सिद्धान्त चौपाई।

ापका मत है कि वि० ं० १५०८ में तो लौंकाशा ने पनी पुकार उठाई, और वि० सं० १५३० में भाणा ने विना गुरु वेष धारण किया।

× × ×

(३) मुनि श्री वीका

"वीर जिणेसर मुक्ति गया, सइ ओगणीस वरस जब थया,

पणयालीस अधिक माजनई, प्रागवाट पहिलई साजनई"

असूत्र निराकरण बत्तीसी।

आपका मत है कि लौंकाशाह का जन्म वीरात् १९४५ अर्थात् वि० सं० १४७५ में लघु० पोरवाल ल मे आ।

× × ×

(४) लौंका० यति भानुचंद (वि० सं० १५७८)

"चौदसया व्यासी वइसाखई, वद चौदस नाम लुंको राखई"

दयाधर्म चौपाई।

× × ×

(५) लौंकागच्छीय यति केशवजी

"पुनम गछइं गुरु सेवनथी, शौयद ना आशिष वचनथी।

पुत्र सगुण थयो लखु हरषि, शत चऊदे सत सितरवर्षि॥११॥"

२४ कड़ी का सिलोको।

आपका मत है कि लौंकाशाह का जन्म वि० सं० १४७७ में हुआ था। आगे यतिजी ने आपका देहान्त ५६ वर्ष की उम्र में वि० सं० १५३३ में होना लिखा है।

× × ×

(६) दि० तारण स्वामी—आपका समय लौंकाशाह के सम-कालीन है, आप लिखते हैं कि—

"उस समय अहमदाबाद में श्वेताम्बर जैनियों के अन्दर लौंकाशाह हुए, उन्होंने भी वि० सं० १५०८ में अपने नया पन्थकी स्थापना की जो मूर्ति को नहीं पूजते ह।" (मूल लेख से विशुद्ध भाषान्तर)

तरण आव चार।

× × ×

(७) उपाध्याय धर्मसागरजी (वि० सं० १६४८)

'वि० सं० १५०८ में लौंकाशाह ने उत्पात मचाया, सं० १५३३ में उसके मत में साधु हुए। (मूल लेख से भाषान्तर)

गच्छ ली।

× × ×

(८) तपागच्छीय यति कान्तिविजय (वि० सं० १६३६)

"आ महात्मानो जन्म अरहट्वाड़ा नी ओसवाल गृहस्थ चौधरी अटकना शेठ हेमाभाई नी पवित्र पतिव्रत परायण भार्या

गंगाबाई नी कुक्षि था संवत १४८२ चौदा सौ ब्यासी ना कार्तिक शुक्ला पूनम ने दिवसे थयो।"

लौ.....ह नुं जी प्रभुवीर ावली पृ० १६१।

× × ×

(९) इसी का अनुकरण स्वामी मणिलालजी और संतबालजी ने किया है। अर्थात् आप दोनों का मत है कि लौंकाशाह का जन्म वि० सं० १४८२ में हुआ है।

(१०) स्था० साधु जेठमलजी (वि० सं० १८६५)

"संवत् पनरासौ गति से गयो, एक सुमेत मत तिहां थयो।
अमदावाद नगर मंझार, लौंकाशाह वसे सुविचार॥"

समा र ७।

आप वि० सं० १५३१ में लौंकाशाह का होना लि ते हैं।

× × ×

ऊपर दिये हुए ा ों से यह स्पष्ट होजाता है वि लौं -शाह का अस्तित्व तो विक्रम की पंद्रहवीं-सोलहवीं ताब्दी मध्य में अवश्य था। परं उनकी निश्चि त जन्मतिथि श्य सन्दिग्ध है, क्योंकि पं० लावण्य जी और नि वीक्षा तो वि० सं० १४७५ में इनका जन्म होना मानते हैं, ैं० यति केशवजी १४७७ और अवशिष्ट, लौंकागच्छीय यति भा चन्द्रजी, स्था० साधु मणिलालजी, एवं संतबालजी तथा त गच्छीय यति न्तिविजयजी इन चारों की मान्यता है कि लौंकाशाह का न

वि० सं० १४८२ में हुआ था। जि प्रकार लौंका ह के संवत् में मतभेद है इसी प्र ार देहान्त ` मय ` भी मतभेद है। इस मतभेद ` होने । रण यही हो ता है वि ौं ाह के समकालीन किसी भी ौंका- नुयायी ने इन । जी चरित्र नहीं लिखा। फिर भी लौंका-यति भानुचन्द्रजी ी लि ी चौपाई जरूर मान्य सम ी जा ी है क्योंि ये स्वयं ौंका के अनुयायी और इन्होंने लौंकाशाह के इहली । ंवरण के बाद केवल ४० वर्षों में ही इस चौपाई ो लि । था। अतः लौंकाशाह । जन्म संवत् वि० ं० १४८२ ` पास ही मानना युि और प्रमाणों ` संगत है। ि प्र ार लौंकाशाह का जन्म संवत् विचार वीथी में भूला आ भट रहा है तद्वत् जन्म स्थान भी पूरा निर्णय भी त नहीं ो सका है, इसका विवेचन पाठ ट्रे प्रकरण में पढ़ें।



करण-छट्ठा

लौं ाशाह का जन्मस्थान।

लौंकाशाह के जन्म स्थान के संबंध में ज बड़ी धाँधली मची हुई है, हमारी बुद्धि में तो इ का कारण यह जँच है कि लौंकाशाह ने जन्म तो कि सी छोटे म में लिया पर, बाद में कुछ वयस्क होने पर जीवन निर्वा निमित्त अहमदाबाद में ाकर वास किया, ौर वहाँ अक ात् यतियों से विरोध होजाने पर, अ ` नाम से नया मत निकालने की दुश्चेष्टा की, ऐसी दशा में यदि पिछले ले कों ने उन गाँव न जान से उन्हें अहमदाबाद का ही लिख दिया हो तो कोई अस्वाभावि नहीं है। परन्तु हम यहाँ यह प्रया करेंगे कि में लौंका ाह का जन्म स्थान कहाँ है, इसलिये इ विषय के ि र लेखकों ` प्रमाण यहाँ पहिले उद्धृत करते हैं।

(१) लौंकागच्छीय यति भानुचंद्र (वि० सं० १५७८)

"सोरठ देस लींबड़ी ग्रामेइ, दसा श्रीमाली डुंगर नामई।
घरणी चूड़ा ही चित उदारी, दीकरो जायो हरख अपारी॥३॥"

दया ` चौपाई

(२) यति कान्तिविजय (१६३६)

"आ महातमानो जन्म अरहटवाड़ा ना ओसवाल गृहस्थ

चौधरी अटकना सेठ हेमाभाई नी पवित्र पतिव्रत परायण भार्या गंगा नी कुक्षि थी चौदा ब्यासी ना कार्त्तिक शुद्ध पुनम ने दिवसे थयो × ×"

लौंका ह जीवन वृत्तान्त प्रभु० ० १६१

× × ×

(३) दि. रत्नानन्दी विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

"लौंकाशाह का जन्म पाटण के दशा पोरवाल कुल में होना लिखते हैं।"

भद्रबाहु चरित्र पृष्ठ ९०

(४) दि. सुमति कीर्ति वि० सं० १६२७

"लौंकाशाह का जन्म पाटण दशा पोरवाल कुल में हुआ।"

ह खित चौ ई

(५) लौं० यति केशवजी २४ कड़ीका सिलोका में

"इण कालइं सौरष्ट्र धरा मइं, नागवेश तटिनीतट गामइं।
हरिचन्द श्रेष्टि तिहां वसइं, मडंघी वाइ घरणी शील लसइं॥१०॥"

इसने लौं । । जन्म गौरा देश की नदी के कि रे पर बसा हुआ नागने म में रिचन्द्र श्रेष्ठि की मडंघी । के वहां होना ब । है।

(६) श्री वीर वंशावली वि० सं० १८०६ संग्रहीता

"लौंकाशाह का जन्म पाटण में दशा पोरवाल कुल में हुआ।"

जैन सा० सं० वर्ष ३ अंक ३ पृष्ठ ४९

(७) स्था० साधु नागेन्द्रचंद्रजी से मिली पट्टावली

"एह अवसर पोसालिया, गढ जालौर मझार।
ताड़पत्र जीरण थयां, कुलगुरु रे विचार ॥४०॥
लुंको महतो तिहॉं वसे, अक्षर सुन्दर तास।
आगम लिखवा सुंपिया, लिखे शुद्ध सुविलास ॥४१॥

ऐति० नोंध पृ० ११६

इसीसे मिलती ई एक रूपचंदकृत चौपाई भी वि० सं० १६९९ की है, में भी लौं शाह जन्म स्थान जालौर हो लिखा है।

इनके अलावा अन्य जितने ले क हैं, उन ा मत है कि लौंकाशाह अहमदाबाद का था, जैसे ामी जेठ जी समकितसार नाम के ग्रन्थ में, स्वामी अमोल र्षिजी ने पनी शा ोद्धार मीमांसा में, स्वामी ंतवालजी " ंप्राण लौं - शाह" नाम की लेख माला में, वाड़ीलाल मोतीला ाह ने अपनी एतिहासिक नोंध में, लौंकाशाह को अहम बाद ा साहूकार लिखा है। पूर्वो ले ों सारां निम्नोक्त है:—

वि० सं० १५७८ के लेख से लौंकाशाह का जन्मस्थान लींबड़ी (काठियावाड़) ।

वि० सं० १६२७ के लेख से लौंकाशाह का जन्मस्थान पाटण (गुजरात) ।

वि० सं० १६३६ के लेख से लौंका ाह का जन्मस्थान अरहटवाड़ा (सिरोही)

वि० सतरहवी सताब्दी के लेख से लौंकाशाह का जन्मस्थान नागनेश (सौराष्ट्र) ।

वि० सं० १६६६ के लेख से ौंकाशाह का जन्मस्थान जालौर (मारवाड़)

वि० सं० १८६५ से आज पर्यन्त के लेखं से लौंकाशाह का जन्मस्थान अहमदाबाद (गुजरात) ।

लौंकाशाह ति रिचय यह है

वि० सं० ५७८ के लेख से—दशा श्रीमाली ।

वि० सं० १६२७ के लेख से—दशा पोरवाल ।

वि० सं० १६३६ के लेख से ओसवाल ।

लौंकाशा के सम मयि ि वी । हुए । उन्होंने ी लौंकाशाह । वं दशा पोरवाल लि । है ।

उपरोर णों य नि नहीं हो कता है कि वस्तुतः लौं न्म कि वंश और किस र हुआ । तथ पि मान प्रम से यह सकते हैं वि ौं ाशाह

का जन्मस्थ "लींबड़ी" ब त संभव है, नन्तर ींबड़ी से लौंकाशाह गुजारे के लिये अहमदाबाद आया हो यह बात जँच सकती है। इसे कुछ अंशों में अन्य ले क भी ीकार करते हैं। लौंका ाह हमदाबाद आकर फिर चिरकाल के लिए वहीं रहा, इ ीसे इन्हें कोई २ अहमदाबाद वासी लि ते हों यह भी हो सकता है। तथा जिन्होंने लौंकाशाह को पाटण का लि । है इसका कारण मेरे याल से अहमदाबाद का उपनाम "पाटण" होना ही है।

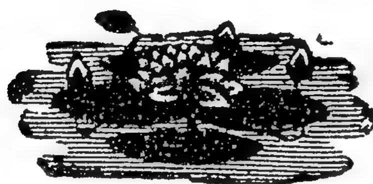
वीरवंशावली में लौंका ह का देहान्त सत्यपुरी (मारवाड़) में होना लि । है, इस हालत में यदि लौंकाशाह अपनी युवाऽवस्था में कभी जालोर गया हो और वहाँ के ल गुरुओं के पास लि ाई का काम करने से ि सी ले क ने इन्हें जालोर का और जालोर के पास पुरी होने से आपका देहान्त सत्यपुरी में होना लि दिया हो तो कोई ाश्चर्य नहीं। परन लौंकाशाह जन्मस्थान तो लींबड़ी होना ही युि यु है। कारण— प्रथम तो सब से प्राचीन र्थात् वि० सं० १५७८ की चौपाई में इसका उल्ले है और चौ ई ौंकागच्छीय यति की ही बनाई हुई है और यह यति लौंकाशाह के समय विद्यमान हो भी सम्भव है, अतः यह प्रमाण ति समीपवर्ती समय का है। दूसरा इस चौपाई में ल ामसी को लौंकाशाह के फूई का पुत्र होना लिखा है। तीसरा लोंकाशाह ने यतियों के ि लाफ पुकार अहमदाबाद में उठाई पर जब वहाँ ि ी भी इनकी बात नहीं सुनी और उल्टा तिरर र किया तब वह लींबड़ी गया और वहाँ एक तो जन्मस्थान होने के कारण से न्य ल मसी की सहायता से उन्होंने लींबड़ी राज्य में े नये मत की ि व ी बोई। इस े यह र

प्र होता है वि लौं ह का जन्मस्थ लींबड़ी ही ा, ौर लौंकाशाह ा जितना ंबंध िंबडी े है उतना श्चर ा, ा ौर ौर पाटण से नहीं है। ब रा स्थान वासी नये विद्वानों की ोर भी दृष्टिपात कीजिये वि वे इ वि में क्या ि ते हैं ? ।

ामी मणिलालजी ने लौं ाशा जन्म श्चरहटवाड़ा े लि ा है ौर मी ंत लजी ने मदाबाद में वि० ं० १४८२ काति दि १५ को इन ा जन्म महो व ड़े मारो से हो लि । यें तो यह वि जब पूर्ण रूपेण जन्म स्थान का भी प नहीं है तो फिर ति सुदि १५ की मिति वि धार से लि ी गई है। इ मिति के लि ने ार मेरी द्धि में तो शायद यह हो है कि ार्ति क्षा १५ रि चल ी ए म त्व पूर्ण ात्रा ा दिन है। हजारों । रि द्धाचल पर जाते हैं, जि में ौंकागच्छीय और ान सी भी ामिल हैं, को वहाँ जाने से रोकने के ारण ी लौं ा-शा की जन्मतिथि र्ति क्षा १५ ी बता के उ दिन की न्ती का । रना ही इ है। लौं श न्म र वाड़ा ब ने ा तो मी मणिलालजी े पा कस्मिक प्र दो पत्रों प्रमाण है। पर ंतबालजी के पा तो सिवाय मन लि श्राधार े ौर कोई प्रबल प्रमा नहीं है, ोंकि होता तो वे पने ले में जरूर लि ते। हाँ ! ये भी एक ऐसी घोषणा करदें कि मुझे भी प्राचीन पु ें टटोलते २ पत्ते मिले हैं जिनमें लौं । जी ौर जन्मस्थान लि ौर मदाबाद ो उनकी जन्म भूमि रार दी तो बच ो

कता है। क्योंकि ऐसी २ सत्य घोषणाएँ स्वार्थ साधनार्थ घोषित क । ऐसे लोगों के लिए कोई नई बात नहीं है।

चमुच इन्होने (संतबालजी ने) यदि ऐसी घोषणा रदी तो फिर, मणिलालजी पने प्राप्त पत्रों की इ त रक्षा कैसे रेंगे ? इसका पूरा उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में है। उपर्यु विवेचन से सुज्ञ पाठक यह तो विचार ते हैं कि लौंकाशाह जन्मस्थान अन्य स्थानों को न मान कर लींबड़ी को मानना ही धिक युक्ति यु और संगत है, वि वि यथा वि पूरा खुलासा हम ऊपर कर आए हैं। ब यह बतायेंगे कि लौंकाशाह का वसाय क्या था, इ ठ सातवें प्रकर में देखें।



करण—सातवां

लौं शा ० व । ।

वि म ी सोलहवीं शताब्दी से उन्नी वीं शताब्दी त के लेखकों लौंकाशाह ो जीवन-वृत्त लिखा है, उसमें व लेखकों । प्रधान । यही एक मत रहा है कि लौंकाशा ए ाधारण गृहस्थ था, और ना ।-वटी का तथा लिखने । धंधा ि । रता था, जैसे कि यति भानुचन्द्रजो वि० ं० १५७८ में लि ते हैं।

"लखमसी फूई नो दीकरउ, द्रव्य लुंका नुं तेणइहरऊं ।
उमर वरिस सोलानी थई, चूडा माता सरगिं गई ॥
आवइ अहमदाबाद मंझार, नाणावटी नो करइ व्यापार ॥

दयाधर्म चौपाई

लौंकाशाह पिता लौं ाशाह ी ८ वर्ष की में और माता १६ वर्ष की उ में स्वर्गस्थ ई। लौंका ाह की ८ वर्ष की वय में ही उ े पिता े मर जाने पर उ ी सब कीमती जायदाद, उ की भु ।का ड़। मसी ह म र गया। बाद में लौंकाशा निर्द्रव्य और निराधार ोकर हमदावाद आया और वहाँ ना ावटी (टका ोड़ी ी कोथली) का धं करना प्रारंभ किया।

+ × +

"लौंकाशाह लींबड़ी थी अहमदाबाद आव्या त्यां केटलाक वर्षों सुधी नौकरी करी पण पोतानो स्वभाव अति उग्र होवा थी, त्यांथी छूटा पड़ी अने नाणावटी नो धंधो आदर्यो, पण त्यां एकदा महा अनर्थ जोई लौंकाशाह ने लागी आव्युं के मारे एक जीवड़ा माटे एटलो बधो अनर्थ शुं करवा करवो जोईये" इत्यादि ।

हस्तलिखित लौं ह जी .

× × ×

यति कान्तिविजयजी वि० सं० १९३६ में लिखते हैं:

"पोताना वतन थी अहमदाबाद आवी नाणावटी नो धंधो करता हता ।"

प्रभुवीर वली १६१

× × ×

(१) लौं० यति केशवजी २४ कड़ीका सिलोका में

ज्ञान समुद्र नी सेवा करता, भणीं गुणीं लहिउं बन्यो तव त्यां ।
द्रम्म कमाणी श्रुतनी भक्ति, आगम लिखइं मनमां शंकई ॥१२॥

आप लिखते हैं कि ानसमुद्र (ज्ञानसागर) सूरि के पास लि पढ़ (अक्षर ज्ञान प्राप्त कर) के ले क (लहियो) । आगम लि ने में एक तो द्रव्य प्र ी दूसरी ान की भरि यह लौंकाशाह का व्यवसाय था आगम लि ते २ लौंकाशाह को शंकाए हुई वह लौंका ह के सिद्धान्त में बतलाई जायगी ।

स्था० साधु जेठमलजी लिखते हैं: वि० सं० १८६५

"× × × वत पनरासौ एकत्रीमें गुजरात देशे अहमदावाद नगर ने विषय ओसवाल वंशी सा० लुंको वसे ते नाणावट नो धंधो करे।"

मां पृ. ७

× × ×

स्थानक साधु मणिलालजी वि० सं० १९९२ में लिखते हैं:—

"× × तेमां केटला धीर धार नो व्या वटावनो अने अनाज विगेरे नो व्यापार करता अने संतोष थी जीवन गुजारता × × × (यह तो लौंकाशाह के पिता का व्यवसाय था) × × × लौंकचन्द्र (लौंकाशाह) ने पिताए दुकान नो सर्व कारभार सोंप्यो × × (लाकाशाह) ठीक २ द्रव्योपार्जन करता अने कुटुम्ब नो निर्वाह चलावता हता × × ×।"

प्रभुवीर प ली पृष्ट १६५

स्वामीजी ब ाते हैं वि लौंकाशाह े पिता का व्यापार किसानों को ाज पर धन धान दि देना था। जब लौंकाशाह का लग्न हुआ तब दुकान का सब व्यापार लौं शाह को सौंप दिया और लौंका उ दु ान ा धंधा कर पने कुटुम्ब का ठीक निर्वाह करता था, बात भी ठीक है, ऐसे छोटे से गाँवों में रि य

इस व्यापार के न्य । व्यापार हो सकता है। परन्तु जब एसे छोटे गाँव में शायद इस क्षुद्र व्यापार से अपना निर्वाह ठीक चलता नहीं देखा हो तो अरहट्टवाड़ा का त्याग कर अहमदाबाद गए हों, ैर वहाँ नाणावट का धंधा किया हो तो यह संभव ही है, क्योंकि ए साधारण निर्धन गृहस्थ बड़ा व्यपार कैसे कर है। यह तो हुई स्वामी मणिलालजी की बात, अब आगे चल कर देखें कि साधु संतबालजी लौंकाशाह के विषय में अपने क्या उद्गार प्रकट करते हैं। आप लौंकाशाह को अहमदाबाद का बड़ा भारी साहू र बतलाते हैं। (देखो धर्मप्राण लौंकाशाह की ले माला) संभव है इन दोनों महाशयों के नायक लौंका ह अलग २ होंगे तभी तो वे वैसा और ये ऐसा लि ते हैं पाठक जरा ध्यान से दे । हालाँ कि इन लौंकाशाह के माता पिता के नामों में दोनों का एक मत होने पर भी जन्मस्थान और व्यवसाय के विषय में एक मत नहीं है। अब वाल यह पैदा होता है कि धर्मप्राण लौंकाशाह हुए हैं वह संतबालजीवाले हैं या मणिलालजी वाले ?

जब वाड़ीलाल मोती० शाह पनी ऐतिहासि नोंध में लोंकाशाह े लिए और ही लिखते हैं कि लौं शाह बड़ा भारी साहूकार था, तब स्वामी नागेन्द्रचंद्रजी रा प्राप्त पटावली में लि । हुआ मिलता है कि:—

> "लौंको महतो तिहाँ वसै, अक्षर सुन्दर तास।
> आगम लि वा सूँपिया, लिखे शुद्ध सुविलास॥

ऐतिहासिक नोंध पृष्ठ ११६

"× × × लौंकाशाह उपासरे पुस्तकें लिखते थे। उसकी लिखाई के पैसे दे देने पर भी साढ़ा सत्रह दोकड़ा शेष रहने से आपस में तकरार हुई।"

वीरवंशावली जै० सा० सं० वर्ष ३–४–४९

× × ×

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सि हो गया कि लौंकाशाह, एक धनी मानी सेठ नहीं किन्तु साधारण स्थिति का बणि या था, इसका व्यवसाय भी साधार ही था। परन्‍ मारे नई रोशनी वाले स्थानिकमार्गियों को यह व अच्छा लगे कि, उनके आ धर्मप्रवर्तक, धर्मगुरु एक सामान्य स्थिति के ाबित हों; अतः स्था० साधु मणिलालजी ने इनके बारे में जो स्फुट उद्गार दबती जबान से निकाले हैं वे पाठकों के अवलो नार्थ यहाँ अंि त करते हैं।

"× × × तेओ लहीया हता एम असंबद्ध अनुमान आपणे केम करी शकिये ? बीजुं कारण ए के तेमणे पोताना उपदेश थी लाखो मनुष्यो ने सारंभी अने परिग्रह प्रवृत्तिओनी मान्यता फेरवी शुद्ध दयामय जैन धर्म नो प्रकाश कर्यों, एवुं प्रब कार्य अने महाभारत कार्य एक लहीया थी थई शके ते वात मानवा मां आवे खरी ?

प्रभुवीर पटांवली पृष्ठ १६०

मीजी की य कल्पना ठी ही है कि बि रा साधारण ही कोई महत्त्व का ार्य नहीं र ता, और लौंकाशाह ने भी तद्वत् कोइ महत्त्व का ार्य नहीं किया। ए घर में फूट डा के एक ग हि । करना यह कार्य महत्त्व का थोड़े ी । महत्त्व का कार्य तो पृथक नींव खोद कर । मकान खड़ा है। घर में ाग लगा ौन महत्त्व का कार्य ाता है। ऐसा घृणि त र्य तो निःसहाय विधवा भी कर कती है। ागे आप लि ते हैं कि लौं शाह ने लाखों मनुष्यों को मूर्त्ति-पूजा छुड़ाकर अ अनुय ी ब ये, एवं लौंका ह वि न् तथा धना था, पर इस कथन के लिये स्था० साधुओं के पा क्र भी प्रमा नहीं है। य तो केवल कल्पना की सृष्टि है। बात तो उन्हीं चीन ले गों विदित होती है जो हम ऊपर । आये हैं।

चारसौ वर्ष पूर्व के रल हृदयी और रस्वभावी स्था० धुओं का लि । आ लौंकाशाह का ाय ाडम्बर प्रिय आज के स्थ क गी साधुओं को कैसे प्रिय हो ता है। वे तो उन्हें बड़ा भारी वि न बडा साहू र राज चारी, एवं बादशाह का परम ि व्यक्ति दे ना चाहते हैं। पर उनको :ख इतना ही है कि पने पूज्य पूर्वजों का लि प्राचीन इतिहास दे ि र नीचा करना पड़ता है।

स्तु, इस नये और पुराने के व्यर्थ झगड़े ो दूर र । लौंकाशाह संतबालजी के मुँह से । फरमाते हैं। उसे ही हम ठकों आगे र ते हैं। लौं शाह पने को पूछने ले कहते हैं:—

"× × × हूँ उपदेशक नथी, पण साधारण लहीयो छुं × × ।"

× × ×

× × × अने मारी जेवा गरीब वाणियानी शक्ति पण शुं × × ?

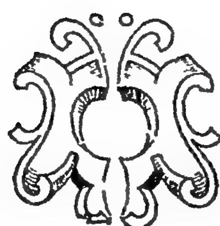
"स्थान. साधु संतबालजी की लेख ला जैन प्रकाश ४-८-३५ पृष्ठ ४५१

लो, स्वयं लौंकाशाह ˙तबालजी द्वारा कहा रहे हैं कि मैं उपदेशक नहीं परन्तु ए साधारण लहिया (ले) हूँ, और मेरे जैसे गरीब बणिये की क्या क्ति, कि मैं छ कर सकूँ। ऐसी दशा में, वाड़ी. मोती.शाह, संतबालजी, मणिलालजी, अमोल-खर्षिजी, आदि स्थानकमार्गी लोग विचारे लौंकाशाह पर क्यों वृथा वाग्प्रपञ्च रच बोझा लाद रहे हैं। याद रक्खो भी चमुच स्वयं लौंकाशाह तुम्हारे सामने आकर सवाल कर बैठे कि— क्यों रे! साधुओं! मैंने कब अनार्य मुस्लिम बादशाह की नौकरी की थी? और कब मैंने मनुष्यों को उपदेश देकर महोपदेशक का तमगा लटकाया था? बोलिये! इस हालत में उनका प्रतीकार करने को आपके पास क्या पुष्ट प्रमाण है?

यदि मत प्रवर्त्तक लौंकाशाह को मानकर ही उनके लिए इतने प्रशंसात्मक चाटुवाद कहे और लिखे जाते हैं तो, लौंकाशाह के मत से अलग होकर नया मत निकालने वालों के लिए भी तो कुछ लिखना चाहिए था कि उन्होंने लौंकाशाह से विरुद्ध होकर बड़ी भारी बहादुरी की, उन्होंने लौंका-मत से पृथक् जो

मत निकाला है वह श्रे और सर्व मान्य है जि में स्वामी भीखमजी भी सामिल आ सके। इत्यादि, छ न कुछ लिखने पर ही आपकी लौंकाशाह के प्रति की हुई भक्ति की क़ीमत हो सकती है। अन्यथा यह तो प्रशं नहीं प्रत्युत प्रशंसा की ओट ले, लौंकाशाह की हँसी करना है।

वस्तुतः लौंकाशाह एक दशा श्रीमाली बणिया तथा साधारण गृहस्थ और लि ने का काम कर अपनी जीविका चलाने वाला लहिया था। जिस तरह लौंकाशाह के पास लौकि धनों की पूर्त्ति करने को धन का अभाव था, वैसे ही इह लौकिक और पारलौकिक धनों की पूर्त्ति करने वाला ान धन भी कम था। जिसको ाप अगले प्रकरण में पढ़ने श्रय करें।



प्रकरण–आठवां

लौंकाशाह का ज्ञानाऽभ्यास ।

श्रीमान् लौंकाशाह के जीवन विषय में जितने ले कों के नाम हम पीछे लि आए हैं, उनमें किसी एक ने भी ऐसा उल्लेख कहीं पर नहीं किया है कि लौंकाशाह ने गृहस्थाऽवस्था में किसी के पास ज्ञानाभ्यास किया था, और न लौंकाशाह के जीवन में भी ज्ञान की झलक पाई जाती है। हाँ! स्थानकमार्गी साधु मणिलालजी, अमोलखर्षिजी, तबालजी और वाड़ी० मोती० शाह अपनी २ कृतियो में यह उल्लेख जरूर करते हैं कि, लौंकाशाह के अक्षर सुन्दर मोती के मान चमकीले थे, पर इससे यह सिद्ध नही होता कि लौं शाह विद्वान् थे। किन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि वे एक अच्छे लिखने वाले लहिया (नकलनविज) थे और जैन-उपा ों में लिखाई का काम करते थे, जैसे आज भी नेक ब्रा णादि लोग कर रहे हैं। लिखाई का काम करने मात्र से विद्वत्ता प्राप्त हो नितान्त असंभव है, यदि संभव हो तो सांप्रत में जिन नकलनविजों ने अपने जीवन का बड़ा भाग इस काम में व्यतीत कि है से पूछा जाय ि ाप कितने वि न् ए हैं। हमें अमुक ब्द अर्थ तो बता दीजिये–देखें आपको सिवाय "ना" के क्या र मिलता है। हाँ, निरन्तर लिखने से ज र अच्छा (लहिया) नकलनविज हो सकता है। यही ल लौं । । का था, उनको

भी इससे बढ़कर विद्वत्ता प्राप्त नहीं हुई थी कि कापी टू कापी के सिवाय उनका अन्तर्निहित मर्म जानलें।

यह एक प्रधान बात है कि जब हम किसी के जीवन वृत्त को लि ने बैठते हैं तो की विद्वत्ता बताने को उनके रचित ग्रन्थों का हवाला देकर उनकी प्रशंसा करते हैं। पर यह उदाह-र तो सर्व प्रथम लौंकाशाह के विषय का ही दे ने में आया है कि की न्दर लिपि का प्रमाण दे उनको बजाय लि ारी के, पण्डित प्रमाणित किया जाता है। लिपि रचना एक प्रकार की कला है, अतः सुन्दर लिपिकार कलाविद् कहा जा सकता है विद्यावान् नहीं। यह बात दूसरी है कि यदि एक मनुष्य पूर्ण पंडित भी हों, सुन्दर ले क भी हों तो उसे हम विद्वान् लहिया (नकलनवीज) कह सकते हैं।

अब हम इसका विवेचन करते हैं कि लौंकाशाह के अक्षरों की सुन्दरता किस लिए बताई जाती है? क्या इसका कारण यह तो नहीं है कि, लौंकाशाह का जन्म काठियावाड़ मे हुआ और बाद मे व्यापारार्थ गुजरात मे आकर वास किया अतः उनकी गुर्जर लिपि तो तः सुन्दर सिद्ध है। परन्तु जैन लिपि जो देव नागरी अक्षरों के अनुकूल है, और जैनो के तमाम आगम प्राकृत और संस्कृत भाषा मे हैं, अतः इस देवनागरी लिपि का पृथक् अभ्यास करना, एक गुर्जर भाषा भाषी के लिए जरूर महत्त्व का परिचायक है। क्योकि, पहिले जमाने मे आज कल की भाँति पाठशालादिकों का सुचारु प्रबंध नहीं था, और न सर्वत्र र्व-विषयो के अभ्यास का अबाध प्रचार था, अतः लौंकाशाह का अन्य भाषा भाषी होकर भी देवनागरी लिपि में सुन्दर लि ।

ही स्थानक मार्गियों की एकान्त प्रशंसा का प्रधान हेतु है। लौंका-शाह ने जैन यतियों के पा रह कर ही लिपिज्ञान सीखा था। इसका भी यत्र तत्र उल्लेख नजर आता है। जो हो! इ से तो यह सिद्ध होता है कि लौंकाशाह को केवल लिपिज्ञान याद था, न कि शास्त्र ज्ञान, और यही इनकी महिमा का कारण हो तो शायद संभव भी है। क्योंकि आज भी संसार में जो नकल करने का पे ा वाले या मुंशी हैं तो उनका परिचय अक्षरों की सुन्दरता से ही दिया जाता है, यहीं क्यों? इससे उनकी प्रशंसा और कीमत भी होती है। परन्तु किसी साहूकार या राज र्मचारी की प्रशंसा अक्षरों से हुई हो यह उदाहरण हमारे ध्यान में आज तक भी नहीं आया।

वि० सं० १५७८ में लौंकागच्छीय यती भानुचंद्रजी ने दया-धर्म चौपाई लिखी है ि में लौंकाशाह को नाणावटी व्यापारी लिखा है, परन्तु अक्षरों की सुन्दरता और विद्वत्ता के बारे में तो यतीजी के लेख में हीं गन्ध भी नहीं मिलती है।

वि० सं० १६३६ में यति कान्तिविजयजी लिखि त दो पन्नों में लौंकाशाह का सब जी चरित्र लि ा मिलता है, और स्थानकमार्गी समाज तथा विशेषतः ामी मणि जी का उ पर पूर्ण विश्वास है, किन् लौंकाशाह गृहस्थाऽवस्था में ही विद्वान् या सुन्दर लेखक था, इसका जि इन प ों में भी नहीं है।

वि० सं० १८६५ में स्था० धु जेठमलजी पने समकित सार नाम के ग्रन्थ में लौंकाशाह के विषय में बहुत लिखा है! आपने लौंकाशाह का व्यवसाय णावटी का हुए यह भी उल्लेख किया है कि ब उनको पने नाणावटी

तात्पर्य यह है कि लौंकाशाह तो एक ामान्य व्यक्ति , एवं ध्यम स्थिति का गृहस्थ था। न तो उसने भी ३२ सूत्र लिखे ौर उसके वर्णनीय अक्तर ही थे। न वह विद्वान् था, ौर न उसने कहीं कभी कि ी गुरु के पा रह कर विनय-भक्ति यु हो ानाऽभ्यास ही किया था। और न ोई प्राचीन पुस्त , पटावली, व इतिहास इन बातों को सत्य सिद्ध करते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि वह प्रगाढ विद्वान् और विख्यात लेखक था। यह बात तो एक ाधारण मनुष्य भी जान कता है कि, यदि लौंकाशाह कुछ भी विद्वान होते और थोड़ा बहुत ही उन्हें जैनशास्त्रों का अभ्यास होता तो वे कभी भी सामा- यि , पौषह, प्रति मण, प्रत्याख्यान, दान, और देव पूजा ा निषेध नहीं रते। यदि दृष्टिराग, और मतपक्त में बेभान होकर ही उन्होंने ऐसा किया, यह कहा जाय, तो फिर तेरहपंथी लोग ी मजी के लिए भी तो यही कहते हैं, उ भी सत्य मानना हिए। यदि तेरह पंथियों का हना सत्य नहीं मानते हों तो ापका (स्थानक मार्गियों) कहना ही हम क्यों सत्य मानें। अर्थात् जैसा आपका कहना निःसार है, वैसा तेरह पंथियों का; क्योंकि तुम दोनों एक ही वृत्त की तो दो । ाएँ ों।

स्थानक र्गी साधु आज लौंकाशाह को भले ही विद्वान्, ांतिकारक, और सुधार आदि मिथ्या विशेष ों से विभूषित करें, किन्तु ागजी घुड़ दौड़ में वे ब भी तेरहपंथियों की बराबरी नही कर सकते हैं। रण तेरहपंथी तो पने पूज्यजी ो पूज्य परमेश्वर, तीर्थेश्वर, र्थनाथ, शासनाधीश, ासन थ,

ादि कई उपमाएँ लगाते हैं। जिन्हें स्थानकमार्गी समाज, धर्म-नाशक, दयादान, उत्थापक, मिथ्यात्वी, कुलिंगी, पाखण्डी, समझते हैं। परन्तु यही हाल लौंकाशाह और लवजी धर्मसिंहजी का है। सत्य बात तो यह है कि ऐसे निरर्थक मिथ्या विशेषणों की कल्पना करने के बजाय, किसी व्यक्ति के थोड़े भी हो पर प्रमाणिक गुणविशेष, यदि जनता के सामने रखे जायँ तो उनकी विशेष कीमत हो सकती है। अन्यथा मिथ्या गुण वर्णित व्यक्ति तो होली के बादशाह की तरह केवल हास्यभाजन ही समझा जाता है।

उक्त विवेचन से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि लौंकाशाह का शास्त्रज्ञान कुछ था ही नहीं, क्योंकि इसके लिए कोई भी पुष्ट प्रमाण हमें अद्याऽवधि नहीं मिला है। जो कुछ मिलता है वह सामान्य लौकिक ज्ञान का ही द्योतक है। स्थानक मार्गियों ने जो इनके विषय मे बढ़ा चढ़ा के लिखा है, यह इनकी मिथ्या कल्पना एवं स्वकीय वाक् प्रपञ्च का विस्तार है। तथा जो बात के ३२ सूत्रों की नकल करने की है, वह भी खपुष्पवत् झूंठी है, जिसका पूरा खुलासा आप नवें प्रकरण में पढ़ें।

प्र रण-नौवां

क्या ौं ाशाह ने ३२ सू लिखे थे ?

कई एक मनुष्यों की यह धारणा है कि लौंका ाह ने निज हाथों से ३२ सूत्रों की दो दो नकलें (प्रतिलिपिएं) करी थी जिनमें ए एक तो यतिजी को दी, ौर एक एक अपने पास रहने दी, और इन ३२ सूत्रों के आधार पर ही अपना नया मत चलाया, प्रमाण में आज भी आपके अनुयायी इन ३२ सूत्रों को मानते हैं। उदाहरणार्थ छ प्रमाण ये हैं:—

श्रीमान् वाड़ीलाल मोतीलाल शाह—

"× × × लौंकाशाह यतियों के उपाश्रय में गए × × × उतारने के लिए दिए हुए शास्त्रों से एक-एक नकल यतियों के लिए और एक-एक घरू उपयोग के लिए लिखी, इसी तरह लौंकाशाह के पास एक अरसा में अच्छा जैन साहित्य इकट्ठा हो गया।"

ऐति. नोंध. ६७

× × ×

आचार्य विजयानन्द सूरि—

"× × × अहमदाबाद में एक लौंका नामक लिखारी यतियों के उपसरा में पुस्तक लिख के आजीविका चलाता था, एक दिन उसके दिल में बेईमानी आई, और एक पुस्तक के सात पन्ने बीच में से लिखना छोड़ दिया, तब पुस्तक के मालिक ने पुस्तक अधूरा देखा तो लुंका लिखारी का तिरस्कार कर उपाश्रय से निकाल दिया और दूसरे (शास्त्र) भी उससे लिखवाना बन्द कर दिया × × × ।"

अज्ञान तिमिर भास्कर पृष्ठ २०२-३

आपने स्थानकवासी मान्यता के अनुसार यह लिखा होगा ।

× × ×

श्रीमान् संतबालजी—

"× × × यतिजी लौंकाशाह के यहां गोचरी को गए, वहा वार्तालाप हुआ × × × यतिजी ने शास्त्र लिखने को दिए, पर उनको यह खयाल नहीं था, कि आज यह लाहिया है, वह कल कैसा होगा ?' लौंकाशाह को शास्त्र मिलता गया और वह उतारा करते गए × × × ।"

"जैन श ता० १८-७-३५ पृष्ठ ३३९ गुजराती का सार"

× × ×

इन्हीं उपर्युक्त उद्धरणों का उल्लेख यत्र तत्र अन्य लेखकों ने भी किया है। इन लेखों से यह पाया जाता है कि लौंका-शाह ने जो सूत्र पन्ने लिए गुप्त रूप से लिखे थे, वे यतियों

ी । बिना तस्कर वृत्ति से लिखे थे, और इस प्रकार यतियों ी चोरी की थी, आप ी इस वृत्ति का अनु रण आज भी आप े अनुयायियों में पूर्ववत् ही विद्यमान है, और सैकड़ों ग्रंथों ंथ त्तीओं े मूल पाठ नि ाल कर अपने नाम से नये पाठ व र र ने के अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं।

यह लोकोक्ति बिलकुल ठीक है कि झूठ बोलने वा े और ीन पर सोने वाले के कोई मर्यादा नहीं होती है। जब स्थानक मार्गियों के ले ों से लौं शाह पर चोरी करने का आक्षेप आता है, उसका निवारण करने को स्था० ाधु मोल र्षिजी पने "शास्त्रोद्धारामीमांसा" नाम के ग्रंथ में लि ते हैं:—

"लौंकाशाह साधु दर्शन का प्रेमी होने से एक दिन प्रातः काल यतियों के दर्शनार्थ उनके उपाश्रय में आया, × × × यतिजी ने एक सूत्र लिखने को दिया। लौंकाशाह ने उसकी दो प्रतिलिपि लिख कर यतिजी को दी और कहा कि एक प्रति आपके लिये और एक प्रति मेरे लिए मैंने लिखी है, यह सुन सरल स्वभावी और ज्ञान प्रचार के बड़े प्रेमी यतिजी ने खुश होकर कहा कि आप भी इसे पढ़ना, × × × इस तरह से करके लौंकाशाह ने बत्तीस सूत्रों की भी दो दो प्रतिलिपिएँ कीं। × × × आगे आप लिखते हैं कि नन्दी सूत्र में ७२ सूत्रों के नाम हैं पर ३२ सूत्रों के अलावा ४० सूत्र विच्छिन्न होगए हैं।

"शास्त्रोद्धार मीमांसा पृष्ठ ५७"

यह युक्ति न तो वा. मो. शाह को सूझी और न संतबाल जी की स्मृति में आई। पर ऋषिजी ने यह नयी युक्ति गढ कर लौंकाशाह पर आते हुए चोरी के दोष का निवारण कर दिया। च्ची भक्ति तो इसी का ही नाम है कि अपना दूसरा महाव्रत भले ही भाड़ में चला जाय, पर धर्म गुरू लौंकाशाह पर कोई कलङ्क न रहना चाहिए। फिर भी आपकी युक्ति में एक त्रुटि तो रह ही गई है। वह यह है कि . मो. ह और संतबाल जी तो उस समय के यतियों को घृ । की दृष्टि से देखते हैं, और ऋषिजी उन्हें सरल स्वभावी तथा ान प्रचार के प्रेमी और लौंकाशाह के वंदनीय तथा पूजनीय मानते हैं। संतबालजी ने यतियों का लौंकाशाह के घर आना लि । है। और वा. मो. शाह, एवं ऋषिजी उल्टा लौंकाशाह को उपाश्रय में भेजते हैं। इससे तो संतबालजी बड़ा भारी अपमान होता है। और जब हम स्था. साधु मणिलालजी के लेख को देखते हैं तब पूर्वोक्त सब ले ों पर पानी फिरता नजर आता है। क्योंकि वे अपनी प्रभुवीर पटावली में लिखते हैं कि "लौंकाशाह का जन्म अरहटवाड़ा में हुआ, बाद वह अहमदाबाद गया। वहाँ बादशाह की नोकरी की तत्पश्चात् पाटण जाकर यति दीक्षाली इत्यादि यह बात स्वामीजी ने केवल कल्पना के किले पर ही नहीं खड़ी की है, किन्तु इसके लिए स्वामीजी को नायास वि० सं० १६३६ के लिखे हुए ले का सहारा मिला है। पर स्वामीजी ने इसमें न तो लौं शाह का उपाश्रय जाना लिखा है और न यतिजी का गोचरी निमित्त उसके घर जाना लिखा है तथा न लौं ह ने चोरी या ाहू री से कैसे भी ३२ सूत्र या एकाध

सूत्र की भी नकल की हो इसका उल्लेख किया है। ऐसी दशा ` वा. मो. शाह, स्वामी ' बालजी, मोलखर्षिजी आदि की पूर्व कल्पना स्वतः संदिग्ध सिद्ध है। क्योंकि मणिलालजी ने जो छ लिखा है उसको अन्य प्रमाण भी पुष्ट करते हैं। यथा— स्थानक० साधु जेठमलजी ने वि० सं० १८६५ में समकितसार नाम का जो ग्रन्थ वनाया है, उसमें भी लौंकाशाह । जीवन लिख, तत्सम्बन्धी कई प्राचीन चौपाईयें उद्धृत की हैं. पर उनमें भी यह कहीं नहीं लिखा है कि लौंकाशाह ने ३२ सूत्रों की एक एक या दो दो नकलें की थीं। इनसे आगे चलकर वि० सं० १५७८ में लौंका गच्छीय यति भानुचंद्र ने दया धर्म चौपाई लिख लौंकाशाह का पूरा जीवन चरित्र वर्णन किया है,पर ३२ सूत्रों की नकल की तो कहीं गन्ध त भी नहीं मिलती है। जब लौंका-शाह के ४० वर्ष ` पश्चात् का ही यह प्रमाण है तो जरूर मान्य है, तद्वत् वि० सं० १६३६ का स्वामी मणिलालजी वाला, और वि० सं० १८६५ का स्वामी जेठमलजी का लि । प्रमाण भी अवश्य विश्वसनीय है। और उपर्युक्त तीनों प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि लौंकाशाह ने ३२ सूत्र तो क्या पर एक भी सूत्र नहीं लिखा। फिर समझ में नहीं आता कि वा. मो. शाह, संतबाल जी, और अमोल र्षिजी ने यह ी कल्पना कहाँ से ढूँढ निकाली है ? और इसके लिए उनके पास क्या प्रमाण है ? यदि एक भी प्रमाण नहीं तो इस बीसवीं श ब्दी ` वैज्ञानिक युग में ऐसे स्वकल्पित ढकोसले की छ भी `मत शेष नहीं रहती है। स्थानक मार्गी माज को चाहिए कि वे पहिले अपने घर में यह निपटारा रलें कि संत लजी

का लि ना झूठा है, या मणिलालजी का लेख मिथ्या है।

अब हम स्वयं इनके लिखे लेखों को ऐतिहासिक कसोटी पर कस के दिखाते हैं कि कितने ··भर इन लेखों में सत्यांश है ? अथवा केवल काल्पनिक कागजी कपोत ही उड़ाए गए हैं।

"लौंकाशाह ३२ जैनागमों की दो दो प्रतिएँ तैयार कर चुके थे उस समय भण्डार के स्वामी यतिजी को यह खबर मिली कि लौंकाशाह गुप्त रूप से एक एक प्रति पृथक् निज के लिए रात्रि के समय लिखते हैं। तब उनसे लिखवाना बंद कर दिया × × ×" पर हमारी समझ से स्थानकमार्गी भाइयों का यह कहना इतिहास की दृष्टि से सत्य प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि लौंकाशाह ने अपने हाथों से ३२ जैनागमों की दो दो प्रतिएँ लिखी थीं; तब उनमें से एकाध प्रति या एकाध छोंटा मोटा पन्ना ही उनके हस्ताक्षरों वाला कहीं भी उपलब्ध नहीं होना इसका कारण क्या है ? क्योंकि चौदहवीं पन्द्रहवीं सदी के लिखे हुए तो इस समय अनेकों ग्रन्थ उपलब्ध है तो फिर सोलहवीं शताब्दी के लिखे लौंकाशाह के हस्तलिखित अक्षरों के ही नही मिलने में क्या विशेष कारण है × × × ?"

जैन युग वर्ष ५ अंक १०

इस प्र ण से भी यह स्प हो जाता है कि लौंकाशाह ने अपने लिये यतिजी के लिए कोई भी सूत्र नहीं लिखा था, विशेष खुलासा हम गे चल कर फिर करेंगे।

अब एक ोर तो हमारे अमोलखर्षिजी लि ते हैं कि ३२ सूत्रों के अलावा सब सूत्रों का विच्छेद हो गया, और दूसरी ओर लौंकाशाह के जन्म के पहिले के भी अने सूत्र हस्त लिखित मिलते हैं, यह परस्पर विरोधोक्ति न जाने क्या जान कर लिखी गई है ?! हम इनसे यह पूछना चाहते हैं कि जब लौंकाशाह ने ३२ सूत्रों की २-२ नकलें लिखीं तो मात्र ६४ नकलें तो सूत्रों की ही हो गईं, और विश्वास है ये बृहद कार्य ग्रंथ हजारों पृष्ठों में समाप्त हुए होंगे पर 'आज बारोकी से ढूँढने पर भी कहीं लौंकाशाह के हस्ताक्षरों से भूषित एक पन्ना भी उपलब्ध नहीं होता है ऐसी हालत में इस वीसवीं सदी के शोध युग में यह क्यों कर विश्वास हो सकता है कि लौंकाशाह ने भी कभी ३२ सूत्रों की नकलें की थीं ?। सत्य वात तो यह है कि लौंकाशाह ने ३२ सूत्र तो क एक भी सूत्र नहीं लिखा, इनके अनुयायी जो झूठी गप्पे हाँकते हैं वह केवल लौंकाशाह की महत्ता बताने के लिए ही।

ब यदि कोई यह प्रश्न करें कि जब लौंकाशाह ने ३२ सूत्र नहीं लि े तो उनके अनुयायियों में फिर इन ३२ सूत्रों की मान्यता क्यों ?। इसके प्रत्युत्तर में यही लि ना पर्याप्त है कि न तो लौंका मताऽनुयायी ३२ सूत्रों की निर्युक्ति टीका मानते हैं और न भाष्य चूर्णिका, किन्तु ३२ सूत्रों पर किए हुए गुर्जर भाषा मय टब्बा को ही ये मान्य मानते हैं और ३२ सूत्रों पर सर्व प्रथम टब्बा श्री पार्श्वचंद सूरि ने वि० सं० १५६० के आ पास किया था। एवं इ मय से पहिले ही अर्थात् वि० ं० १५३२ में लौंकाशाह ा देहान्त हो चु ा था, तः

यह भी सिद्ध है कि लौंकाशाह ३२ सूत्रों ो लिखना तो क्या पर एकाध सूत्र को मानता तक भी नहीं था। इसके नहीं लिखने का और नहीं मानने का एक अन्य भी कारण है कि "जैनाऽऽगम मूल तो अर्ध मागधी में और उन पर टीका संस्कृत में हैं" अतः लौंकाशाह, स्वतः, इन भाषाओं की अनभिज्ञता के कारण इन आगम सूत्रों से पराङ्मु था। लौंकाशाह के लिखने मानने की बात तो दूर रही, किन उस के पास अन्य लिखित भी सूत्र प्रति नहीं थी, यह बात लौंकाशाहका जीवन वि० सं० १६३६ के ले से सिद्ध होती है। उसमें लि । है कि लौंकाशाह ने बादशाह की नौकरी छोड़ कर तत्क्षण ही यति दीक्षा ली।

अब लौंकाशाह के अ यायियों मे ३२ सूत्रों के विषय में जो मान । है उसका भी कारण हम प्रदर्शित कर देते है। कहा जाता है कि तपागच्छवालों ने जब पार्श्वचंद्रसूरि को गच्छ से अलग कर दिया, उस समय लौंकाशाह तो विद्यमान नहीं था, पर लौंकाशाह के अनुयायियों को यह एक बड़ा भारी सुअवसर हाथ लगा। यह तो सभी जानते हैं कि दो जनों की फूट होने पर तीसरा मनुष्य स्वस्वार्थ बना लेता है" इसी प्रकार लौंकों के अनुयायियों ने श्री पार्श्वचंद्र सूरि से जाकर प्रार्थना की कि आप जैन सूत्रों का अर्थ गुर्जर भाषा में करदें तो हम लोगों पर बड़ा भारी उपकार होगा, पार्श्वचंद्र सूरि को यह पता था कि ये जैन धर्म के विरोधी हैं, अतः सूरिजी ने उन लौंकों से तीन शर्तें तय की। (१) तो यह कि जैन मन्दिर मूर्त्तियों की निंदा नहीं करना। (२) री यह कि जैन मन्दिर में जाकर जिन प्रतिमा के दर्शन हमेशा करना। (३) री यह कि पूर्वाचार्यों

अवगुणवाद हीं बोलना। यदि म इन तीनों बातों की प्रति ा लो ! तो मैं तुम्हें मूल त्रों पर गुजर ी टब्बा (भाषान्तर) बना दूँ। ौं ाऽनुयायियों ने इसे स्वी कि , सूरिजी मशः इन्हें टब्बा ा २ सूत्र देते गए, इ टब हित ३२ सूत्र तो ौंकों के थ गए, परन्तु द में वे (ौंकाऽनुयायी) पनी पूर्व प्रतिज्ञा से भ्र होगए, उन्हें पनी प्रति े विचलि त दे सूरिजी ने शेष सूत्र के उन्हें देना बन्द कर दिया। इस प्र ार जो ३२ सूत्र ौं ों थ ग गए सो ग गए ौर वे इन्हें ी मानने लगे। न बत्तीस सूत्रों में मूर्त्ति विषय है या नहीं ? यह ज्ञान ौं ं को मय बिलकुल नहीं था। दि होता तो वे ३२ भी कदापि नहीं मानते। ोंकि जैसे ४५ सूत्रों में से ३२ सूत्रों को इन्होंने पृथ किया, वैसे ही ३२ े भी मूर्त्तिपूजा वाले ूत्र जुदे कर देते, परन्तु मजा तो य र ा कि वे ३२ सूत्रों ा मर्म जान नहीं के, ौर जि े ूत्र सूरिजी े ए उन्हें ज्यों ा त्यों मानते रहे। परन्तु ाल मात् इनकी ादिता धीरे धीरे दूर होगई और लौं शाह के नुयायी भी मूर्त्तिपूजा ानने लगे। तथा पंचांगी सहित ब ूत्रों को भी मा द े देखने गे। इ तर यह तो यहीं े गया।

अनन्तर धर्मसिंहजी और वजी म ओं ने लौंकों-विरोध कर "ढूँढिया पन्थ" से नया मत नि ला, और ोरों से मूर्त्ति का विरोध करना ि या, जो ांप्रत में भो तें न हैं। पर ३२ सूत्रों ी ता तो इ नये मत में भी

पूर्ववत् स्थिर ही रही। हाँ ! इन्होंने जहां २श्री पार्श्वचंद्रसूरि कृत टब्बा में मूर्त्ति समर्थक ले पढ़ा, उसे बदल कर नया अर्थ गढ़ दिया।
ोंकि धर्मसिंहजी और लवजी को भी तत्वतः कुछ ज्ञान नहीं था, यदि होता तो वे सूत्रों के अर्थ को न बदल कर, जैसे लौंकाऽनुयायियों ने ४५ सूत्रों में ३२ ही को मान्य रक्खा, तद्वत् ये भी ३२ में से मूर्त्ति समर्थक सूत्रों का बहिष्कार कर शेष सूत्रों को ही मान्य रखते तो इस प्रकार टब्बा को बदलना, और माया हित मिथ्यात्व सेवन करना नहीं पड़ता।

खैर, श्री पार्श्वचंद्रसूरि ने जो टब्बा बनाया वह पूर्व टीकाओं के आधार पर ही बनाया था। जो भाव टीका में था ठीक वही सूरीजी के टब्बा में बतलाया। इस तरह टीकाऽनुपूर्वी टब्बा को कुछ काल तक तो अक्षुण्ण मान मिलता रहा, पर बाद में जब नये मत के प्रवर्तक निकले ौर इन्होंने मूर्तिपूजा का प्रबल विरोध करने साथ मूर्त्तिविषयक टब्बा को भी बदल कर "कहां साधु, कहाँ ज्ञान, कहाँ छद्मस्थ तीर्थङ्करादि" इत्यादि अर्थ कर दिया। तब से लौंकाऽनुयायी तो श्री पार्श्वचंद्रसूरिकृत टब्बा को, और धर्मसिंह-लवजीअनुयायी, तथा स्थानकमार्गी, धर्मसिंह कृत टब्बा को मानते रहे हैं। पर स्वामी अमोलखर्षिजी को तो यह भी स्वीकार नहीं आ, उन्होंने इस परिष्कृत टब्बा को पुनः परिष्कृत कर हाल ही में ३२ सूत्रों का षाऽनुवाद किया है।

जैनियों में यह मान्यता सदा से चली आई है कि जो कोई प्राचीन मूल सूत्रों में एकाध मात्रा को भी न्यूनाधिक करे, वह नंत संसारी होता है, पर हमारे ऋषिजी ने ३२ सूत्रों का भाषा ऽनु द ते समय र्थ में फेरफार किया सो तो किया ही, पर

पने तो मूल सूत्रों के मूल पाठों को भी बद दिया। मूनार्थ देखिये:—

सूत्र श्री राजप्रश्नीजी और जीवाभिगम में देवताओं ने श्री जिन प्रतिमा का पूजन किया है, वहां धूप देने के वि य में मूः पाठ है कि:—

"धूवं दाउणं जिणवराणं"

टीका:—धूपं दत्वा जिनवरेभ्यः।

पार्श्वचन्द्र सूरिकृत टब्बा:—धूप दीधुं जिनराज ने।

लौंकागच्छीयों की मान्यता, धूप दीधु जिनराजने,

इन—मूल पाठ, टीका, और टब्बा से यह स्प होता है कि जिन प्रतिमा को जिनराज मक्ष के तीन ज्ञान संयु , सम्यग् दृष्टि देवता ने "धूप दिया है" यह बात मूर्त्तिपूजा विरोधी लौंकामतानुयायी एवं स्थानकमार्गी ४५० वर्षों से बराबर मानते चले आरहे हैं। पर यह त वर्तमान काल के ऋषिजी को न रुची, ौर ाप इ मूल पाठ को बदल :—

"धूवं दाउण पडिमाणं"

यह पाठ बदल दिया और इसका अर्थ किया है। "धूप दिया प्र मा को" ौर प्रतिमा' अर्थ आपने जिनप्रति न र न्य प्रतिमा अर्थात् कामदेव ी प्रति ा र दिया है। ापके इ पाठ परिवर्त्तन का य कारण हो सकता है कि "कुछ ों में हमारा भी ले जब प्राचीन ो ज गा, तब यह वांश सि नहीं होगा तो नहीं सही, पर कई यज्ञ ों को ' ाशील तो ज रेगा। पर ऋषिजी यह नर्थ रते मय इ े कतई भूल गए

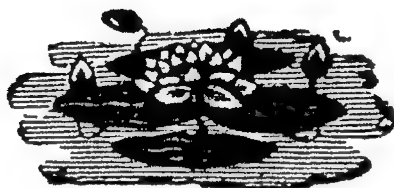
कि वि ग तो ऐतिहासि सत्य घनों की ोध का आएगा, उसमें य लू की दीवार कैसे टिक केगी ? औरों को जाने दो पर षिजी के ले को तो स्थानकमार्गियों के थ से लिखे सूत्र ी झूंठा क र देने में ी है। तथा मूल ठ "धूवं दाउणं जिणवर" को बद अ । न ठ बनाना, विद्वत्समाज में य पात्र बनने ही का तो उपाय है जरा इसे भी तो सोच ीजिए।

स्तु ! प्रसंगोपात्त इतना छ कह के बाद हम पुनः अपने प्र त वि य का अन्तिम निर्णय करते हैं वि उपरि निर्दिष्ट प्रमाणों से "लौं ाहने न तो ३२ सूत्र लिखे और न लौंकाशाह की विद्यम ता में ३२ सूत्रों की कोई मान्यता थी ही" यह पूर्णतः परिस्फुट हो जाता है।

यदि लौंका ाह ने छ लिखा हो तो ों के अतिरक्त कोई ग्रन्‍ दि लि । होगा ऐसा वीरवंशावली के उल्लेख से पाया जाता है परन्तु लौंकाशाह ने तो ारंभ ही अपनी योग्यता का दिग्दर्शन करवा दिया। जो आचार्य विजयानन्द सूरि ने लिखा है वि लौंका ह ने एक पुस्तक के कई पन्ने लि ना छोड़ देने से यति ों उससे लिखाना बन्द करदिया।

लौं के समकालीन वि. १५२४ में कडूआशाह नाम एक गृहस्थ ने अपने नाम से जो नया 'कडुआमत' निकाला था उसमें उन्होने द्वेष के कारण धु संस्था का बहिष्कार करते हुए भी पंचांगी संयुक्त जैना ऽ गमो को म्मत मा , और लौंकाशाह का भीष विरोध वि ।, उन्होंने तो यहां तक लि ादिया कि लौंका-वालों के घर न जल भी नहीं लेना चाहिए। ऐसी

हालत में सुज्ञ पा यं ोच ते हैं वि के लोग लौंकाशाह को वि दृष्टि े दे ते थे। आगे म यह बतावेंगे वि लौं ा ाह के मय जैन माज की क्या परिस्थिति थी, च वृन्द इ के लिए राह दे ें।



प्रकरण-दशवां

लौं ाशाह के म न माज को रिस्थिति

कि ˆ भी इतिहास के पाठक से वह त छुपी हुई नहीं है, कि इस कलिकाल पंचम ारा और हुण्डा सर्पि ी ादि कारणों से समग्र भारत पर, एवं विशेषतः जैन-सन पर किन किन तरह से ापत्तियों और संकट के बादल मं ा रहे थे, और किन किन कठिनाइयों ने आकर घेरा था, जिससे मध्योदय प्राप्त भी भारत का भाग्य भास्कर अस्त प्राय होगया था, जैसेः—लगातार कई वर्षों तक भीषण दुष्काल का , जैन ओं को पने कठिन नियमों के कारण नाना संकट सहना, पुष्पमित्र, मिहिरगुल, और सुन्दरपाण्डेय जैसे धम नरे ों का जैन धर्म पर दारुण आक्रमण करना, शंकराचार्य और वसव जैसे अन्य मताऽवलम्बियों का तथा नीच ों हमला होना, काल के कलुषित प्रभाव से साधुओं में ाचार शैथिल्यता आना, एवं चै वास ादि वि समस्या में जैन धर्म का परिर ना कोई धारण प्रश्न नहीं पर एक तरह से बड़े झमेले का। प्रश्न था, फिर भी शासन की रक्षार्थ उस नाचार्यों अनेक लक्ष्य बिन्दुओं को दृष्टि में रखकर जिस र जैन सन का र णार्थ ात्मभोग दिया उसे सुनने त्र से ही कलेजा ंप उठ है, नेत्रों से नितरां अश्रुधारा बहने गती है और रह २ रके दय से ए अन्तर्वेदना उठती है जो

चण भरके लिए आत्मा को जड़वत् बनादेती है। गोंकि ए गोर तो गृह ेश, चैत्यवास, और शिथिलाचार को दूर करना, तथा दूसरी ओर विधर्मियों के होते हुए आक्रमणों को सहन र ास्त्रार्थ में उनसे विजय माला छीनना, तीसरी गोर पूर्वाचार्यों द्वारा ंस्थापित शुद्धि मि न द्वारा नित नये जैन बनाते रहना तथा ासन की नींव दृढ़ र ने को जैन मन्दिर मूत्तियों की प्रति । रवाना, और अनेक विषयों के अने ग्रन्थों का निर्मा कर में ंल रहना, इत्यादि उस भीषण परिस्थिति में जो शा न ेवा उन महान् प्रभाव ाली आचार्यों ने की है वह दापि भूली नहीं जा कती है।

। यह बात कह देना ब ों का खेल सा होगया है वि पूर्व समय में जैन साधु शिथिलाचारी हो जैन शासन को बड़ी ानि पहुँचाई थी। पर यदि थोड़ासा परिश्रम कर तत्कालीन इतिहा ो दे । ाय तो, यह कहे बिना दापि नहीं रहा जायगा कि वि समय में चाहे उनमें से कोई ाचार्य ाद सेवी भले ही रहे हों, पर उस मय उन्होंने जारों ापत्तियें उठा र भी जो काम ि है, वह उनके बाद ह- ांश भी किसी ने किया हो ऐसा एक भी उदाहरण दृष्टि-गोचर नहीं होता है। यदि यह कहा जाय वि उ बि समय में आच ों ने जैन धर्म का जीवन सुरक्षि त रक ा, तो भी कोई तिशयोक्ति नहीं है। भगवान महावीर ामी से १००० वर्ष त पूर्व-श्रुत न प्रभावशाली युग है, उ के बाद वीरात् ग्यारवीं ताब्दी ोल ीं शताब्दी का ाल चै वा । है। ंच सौ वर्षों में जैनाचार्यों ने ि ने राजा ों को

या, तथा जितने जैनों को जैन बनाया, जितने तात्विक विषयों के ग्रंथ बनाए, और जितने शा । कर विजय वैजयन्ती फहराई उतने पीछे के इतिहा में नहीं मिलते हैं। और यह भी नहीं है कि उस समय सब शिथिलाचारी एवं चैत्यवासी ही थे, ोंकि उस समय भी कई एक ि यापात्र एवं क्रिया उद्धारक हुए हैं। और उस समय जो केवल चैत्यवासी, एवं शि थिलाचारी ही थे, की नसों में भी जैन धर्म का गौरव क्षुण्ण र ने को वह जोश भरा आ था, जो पीछे के ओं में ंशि रूप से ही विद्यमान रहा। परन्‍ ज म ली उपाश्रय, स्थानक और गृ थों के बंगलों में आराम करते ए भी कुछ नहीं करते हैं, केवल गृहस्थों पर दम लगा रहे हैं, वस्तुतः शिथिलाचार और चैत्यादिम तो यही है। किन्तु अपनी ती न देख उन पूर्व म पु ों को शि थिलाचारी आदि से ोधि त कर उनकी निंदा करना यह भीष कृतघ्न ही है और है आज इसी व प से यह ाज रस ल में जा रहा है।

ों ों क्रियावादी, ीवासी, और विहारियों का जोर बढ़ गया ों ों चै रि यों ी सत्ता हटती गई, विक्रम की तेरह ्ी तो चैत्यवासि यों ी बिलकुल ही अस्त होगई, रण य कलिक र्व , ान हेमचन्द्र सूरि राजगुरु कक्कसूरि, म धारी देवसूरि; वादीदेवसूरि, जयसिंहसूरि सार्थी सोम सूरि, जिनचन्द्रसूरि आदि सुविहि ार्यों प्र व चारों ओर । ,और महाराज मार से जैन नरेशों जैन धर्म का खूब होरहा था, इसी से चै रियों । उ मय प्रायः अंत

होगया था। र्थात् मय कोई भी साधु चैत्य (ंदिर) नहीं ठहरता था। किंतु वंत्र वस्तीवासियों का विजय डङ्का बजरहा था। य समय जैनधर्म की ति का था, इस मय में जैन जनता ी संख्या १२ करोड़ प ँच गई थी। पहिले ो पु र र चार ी जा रही थी, कि चैत्यवा ो दूर रो वह पुकार चैत्य दूर होने : न होगई थी, और फिर दो द्दी शासन क व्यवस्था पूर्वक चलता रहा, किसी यह ावाज नहीं उठाई कि इस समय क्रियोद्धार ी आवश्यकता है।

इतना सब कुछ होने पर भी फिर हम ों शाह के को देखते हैं तो ऐसा कोई कारण नहीं या । है वि जिससे उ समय वि ी परिव की वश्यकता हो। यदि कोई आवश्यक होती तो समय अनेक गच्छों के और हजारों साधु विहार करते थे, वे आवाज उठाये ि नहीं र जैसे वि चैत्यवासियों और शिथिला-चारियों में हरिभद्र ूरि मुनिचन्द्रसूरी और जिनव ूरि ादि ने उपदेश किया था।

ों । के मुख्यतः विहारी क्रिया ही थे, पर गौण में कई शिथिलाचारी ी ों तो भी ंभव है; र दो ार वर्षों कई प्रकार की उथल थल हुई, ौर इतनी ी वाले ज यदि कोई २ शिथिलाचारी र भी जायँ तो कोई बड़ी त नहीं है। फिर भी वे ऐसे ाचार थे, जि से दुनियाँ उन्हें हेय मझें। उनका प्रभाव बड़े बड़े रा ा म ाराजा त । क्योंकि पूर्वजों जैन व ा उ ार था, तः यदि वे उन । दूर ार ँ,

उन्हें मान दें, तो इसमें कोई ाश्चर्य की बात भी नहीं थी उस समय कई लोग उपाश्रय वासी भी बैठे थे, जो पूर्व में चैत्यवासी थे। का चैत्यवास छुट जाने पर, व ी में रहते हुए भी उनकी ल परम्पराऽऽगत प्रवृत्तिएँ ज्यों की त्यों विद्यमान ही रही होंगी, जो हो जहाँ विशाल मुदाय हो, वहाँ सब तरह के लोग हुआ ी करते हैं। किन्तु लौंकाशाह की प्रथम भेंट यदि उन उपाश्रय वासियों से हुई हो, ौर अ ात लौं शाह उन । शिथिलाचार देख मित आ हो, और उनके अवगुणवाद बोले हों तो उन यतियों उनका जरूर तिरस्कार किया होगा, और उनसे तिरस्कृत होकर ही यदि उसने पना नया मत निकाला हो तो बहुत संभव है। कारण न्य निमित्त तो कोई नजर नहीं आता, जिससे रुष्ट हो लौं । ाह नया मत नि लता ?

स्थानकमार्गी साधु अमोलखर्षिजी, मणिलालजी, संतबालजी, और व ीलाल मोतीलाल शाह ने लौंकाशा के जीवन में स्थान स्थ पर वारंवार इस शब्द का प्रयोग किया है कि उस समय चै वासि ों का बड़ा भारी जोर था, और लौंकाशाह ने लाखों चैत्यवासियों को दयाधर्मी बन । किन मेरे ख्याल से तो ये इतिह से अभी नभि ही है और इनके शब्दों समुदायकत्व जहर भी टपक रहा है। पक्षपात के कीचड़ में फँस अ ी द्वेषाग्नि ी ज्वाला निकाल कर आपने अपने वानल व्यथित य को शान्त किया हो, तो बात और है। न्यथा पके लेखों में कहीं न कहीं तो यह प्रमाण मिलता कि उस य क साधु चैत्यव करता था। श्री हरिभद्रसूरि का वि० की सातवीं ताब्दी और जिनवल्लभसूरि का समय

विक्रम की रहवीं शताब्दी । है और उ मय के तो प्रमाण मिलते हैं कि उस मय चैत्यवासी थे, और उनके विरोध में जैनाचार्यों ने पुकार भी ी थी, किन्तु लौं । ह के मय वि म की सोलहवीं शताब्दी में किसी ने भी यह पुकार नहीं की कि इस मय चैत्यवास या शिथिलाचार है, और इसके निवार-णार्थं क्रिया उद्धार की जरूरत है। अतः इन पूर्वोक्त स्थानकमार्गी लेख ों के ले का क्या अर्थ है, यह पाठक स्वयं विचार रें।

शायद ! जैसे आज कई लोग स्थानक मानने वालों को "स्थान वा ी" कहते हैं, वैसे ही यदि उस समय चैत्य (मंदिर) मानने लों को इन स्थानकवासी ले कों ने "चैत्य ी" समझा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उस समय चैत्य मानने वालों की संख्या सात करोड़ की थी, और उनके धर्मोपदेश अनेक गच्छों में बड़े बड़े विद्वान्, क्रियापात्र उग्र-विहारी और धर्म प्रभावक ाचार्य विद्यमान थे, नमूना के तौर कतिपय विद्वान आचार्यों के नाम बतला र इन मिथ्या-दियों के बन्द नेत्रों को हम खोल देते हैं:—

१—तपागच्छाचार्य रत्नशे रसूरि।
२—उपकेश गच्छाचार्य देवगुप्तसूरि।
३— ंचलगच्छाचार्य जयसिंहसूरि।
४— ागमगच्छाचार्य हेमर सूरि।
५—कोरं च्छाचार्य सार्वदेवसूरि।
६— रतर गच्छाचार्य जिनचंद्र ुरि।
७—चैत्रगच्छाचार्य मलचंद्रसूरि।
८—थार च्छा र्य ान्तिसरि।

९—धर्मघोषगच्छाचार्य धुरत्नसूरि।
१०—नागेन्द्रगच्छ चार्य गुणदेवसूरि।
११—नाणक्यगच्छाचार्य धनेश्वरसूरि।
१२—पीप गच्छाचार्य मरचंद्रसूरि।
१३—पूर्णिमियगच्छाचार्य साधुसिंह रि।
१४— णागच्छाचार्य पज्जगसूरि।
१५—भावहड़ाचार्य भ दे रि।
१६— धारीगच्छाचार्य गुण नि सूरि।
१७—रुद्र ली आचार्य सोमसुन्दरसूरि।
१८—वृद्धगच्छाचार्य सागरचंद्रसूरि।
१९—संडेरा गच्छ र्य शान्तिसूरि।
२०—द्विवन्दनीगच्छ ाचार्य सूरि।
२१— षंपुरीयगच्छ चार्य गुण न्दर रि।
२२—निवृत्तिगच्छ चार्य कचंद्रसूरि।
२३— ली गच्छाचार्य यशोदेवसूरि।
२४—विद्याधरगच्छाचार्य हेमचंद्रसूरि।
२५—विधिप आचार्य जयके रिसूरि।
२६— बड़गच्छ चार्य सिंह देवसूरि। (श्वेताम्बर)
२७—सिद्धान्तगच्छाचार्य सोमचन्द्रसूरि।
२८—र पुरागच्छाचार्य धर्मचंद्रसूरि।
२९—राजगच्छ गच्छाचार्य मलियाचन्द्र रि।
३०— जीगच्छाचार्य महेश्वर रि।

इत्यादि क गच्छों के चार्य उस विद्यमान थे। और

ये प्रतिष्ठि चार्य हैं। इ । रि , लौंकाशाह के के शिलालेखों और ग्रंथ निर्माण प्र से सिद्ध होता है।

यदि हमारे मार्गी ।ई यह हने की ।। धृष्टता लें वि ये के चार्य शि थि ।चारवान् थे, इसी लौंका- को अपना नया मत नि पड़ा ? तो पहिले पने इस ी पुष्टि में प्रमाण देना होगा जि से य सिद्ध हो कि मय के ी ।चार्य आचार शि थि थे। यदि म थोड़ी देर के लिए य मान भी लें कि ँ ी चार्य आचारहीन थे, पर ।प यह तो नहीं ह केगें वि उस मय गवान् महावीर प्र के शासन ही विच्छेद ोगया था जि कोई भी । रहा ही नहीं। यदि . छ ।धु ों में शि थिल ।गई थी तो लौं ।शा को केवल उस शिथि । का ही विरोध । था, पर उन्होंने ऐसा रने के ब ।य, यति स्था माथि , पौषह, प्रति मण, ख्यान, देव पूजा और द ।दि विरोध , एक दम भी ी नास्ति र । ी। इ तो स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि लौंकाशाह को इस वि य में ोई अन्य ही दर्द था, धु-शैथिल्याचार तो मात्र बहाना था। यदि यही रण होता तो देवपूजा और दान आदि मोक्ष । की क्रि या । कदापि विरोध नहीं करता।

लौंका । के ठी मकालि न कडुआशाह नाम के जो रि ए, ौर जिन्होंने भी अपने नाम पृथ "कडुआपंथ" निकाला। पर लौं । की तरह नितान्त अज्ञता का नाटय नहीं वि । कडु ह को जैन ।धु ों के साथ ेष होने से उसने य पि ।धु स्था का बहिष्कार र वि ।, परन्तु जै

मंदिरमूर्त्ति, जै SSगम पञ्चा ी हित, तथा सामायिकादि मोक्ष ाधिका जैन ि ाओं को तो अपने मत में पूर्ण मान्य दिया।

" ल तोष" न्याय से यदि मान भी लिया जाय कि आचार ैथिल्य ही लौंकाशाह के नये मत निर्माण में हेतु भूत था, तो समझना चाहिए कि लौंकाशाह को जैन सि द्धान्त, स्याद्वाद, उत्सर्गापवाद एवं सामान्य विशेष का न ही नहीं था। और जिस हेतु को ले कर ाप अपने पूर्वजों पर ाञ्छन लगाने का दु: ाहस कर नये मत का प्रचार किया, वही हे इसके मत पर भी लागू होगया। पूर्ववर्त्ती जो जैनशासन करीब २००० वर्षों के दीर्घ समय में अनेक उथल पुथल, ौर दुष्क ादिकों के कारणी भूत होने से व्यक्ति गत शिथिलाचारी साधुओं से दूषित होगया था, पर वही दोष इसके मत को पूरे सौ वर्ष होने के पहिले ही लग गया, जैसे "लौंकामत के साधुओं के लिए पालकियें र ना, छत्र चामर, पग वन्दन आदिका करना" इत्यादि। जब लौंकामत भी दूषित होगया तो लौंकामत के यति जीवाजीको वि० सं० १६०८ में पुकार करके नया मत नि लना पड़ा, ौर जब जीवामत भी ढीला पड़ा तो वि० सं १७०८ में यति लवजी सिंहजी ो फिर नया मत नि लना पड़ा और वह भी जब ढीला हुआ तब वि० सं० १८१५ में स्वामी भीषमजी ने पुनः नया मत निकाला। इन नव निर्मित मतों में यह खूबी थी कि लौंकाशाह ने जब सामा० पौस० प्रति० प्र ा० दान और देवपूजा को तई अस्वीकार किया तो यति लवजी ने इनसे भी विशेष ह पर डोरा डाल दिन भर मुँह पत्ती बाँधना किया। भी मजी ने इन सब से भी बढकर दया दान को ही प्रायः निर्मू दि ा। परन्तु इस

विघोक्त विपरीत वातावरण में भी जैनधर्म के भरूप जैनाचार्य ाज तक भी प्राणप से अपनी पूर्व मान्यता पर डटे ए हैं, और भविष्य में भी रहेंगे ।

वस्तुतः इतिहा इ बात को पुष्ट करता है वि लौंकाशा के समय में जैन माज ी ऐसी परिस्थिति नहीं थी, जि से कि सी प्रकार के परिवर्त्तन की ावश्यकता हो । पर यह तो हमारी बदनसीबी का ही कारण था कि लौंकाशाह ा यतियों द्वारा अपमान हो, ौर वह उससे होकर नये मत ा बीजारोपण करे । जैन समा को इस फूट से महान् ानि पहुँची है । जो जैन जनता लौंकाशाह के समय सात करोड़ की ंख्या में थी, वही आज लौंकाशाह की फूट के कारण केवल १२ ला की ं ा में आपहुँची है, और भविष्य में न जाने क्या होगा ? य आज लि का विषय नहीं है । प्रकृत विवेचन में मने यह सा ा दिया है कि लौंकाशाह के समय जैनियों की परि थति क्या थी ? अब अगले प्रकरण में स ा विवेचन रेंगे वि लौं ाशाह और भ प्रह ा क्या सम्बन्ध है, पाठ धैर्य से को भी पढ़ें ।



प्रकरण ग्यारहवां

लौंकाशाह और भस्मग्रह।

श्री कल्पसूत्र में यह उल्लेख है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के समय में आपकी राशि पर "भ " नाम के क्रूर ग्रह का आक्रमण हुआ, जिसका फल यह बताया है कि भगवान् महावीर के बाद २००० वर्षों तक "श्रमण संघ" की उदय, उदय पूजा न होगी, वे २००० वर्ष वि० ं० १५३० में पूरे होते हैं, तब वि० सं० १५०८ में लौंकाशाह ौर वि० सं० १५२४ में कडुआशाह ने जैन धर्म में उत्पात मचाया। और इन दोनों गृहस्थों के अनुयायी कहते हैं कि हमारे धर्म-स्थापकों ने धर्म का उद्योत किया। अब सर्व प्रथम तो यह सो । चाहिए कि भस्म-ग्रह के कारण उदय उदय पूजा का न होना "श्रमणसंघ" के लिए लिखा है, तब कडुआशाह और लौंकाशाह तो गृहस्थ थे, इनके और भस्मग्रह के क्या सम्बन्ध है कि ये भस्मग्रह के उतरने के पूर्व ही धर्म का उद्योत कर सकें। परन्तु वास्तव में यह उद्योत नहीं था किंतु उतरते हुए भस्मग्रह की अन्तिम क्रूरता का प्रभाव था जो इन गृहस्थों पर वह ालता गया। क्योंकि जैसे दीपक अपने अंत काल में अपना चरम प्रकाश दिखा जाता है, वैसे ही भस्मग्रह भी जाता जाता ए फटकार दिखा गया। इधर तो भस्मग्रह का जाना हुआ ौर उधर श्रीसंघ की राशी परधूम्र केतु नामक महा त्रिकराल

ग्रह आना था। इन दोनों अशुभ कारणों से ही इन दोनों गृहस्थों ने जैनधर्म में भयङ्कर फूट और कुसम्प डालकर जैन शासन को छिन्न भिन्न कर डाला, जिसके साथ में असंयति पूजा नाम च्छेरा का भी प्रभाव पड़ा कि दोनों गृहस्थी अ ति होने पर भी श्रमण श्रमणीओं ी उदय उदय पूजा उठाकर स्वयं को पुजवाने की कोशिश करने गे। इसके अलावा इन दोनों गृहस्थों ने जैनधर्म का क्या उद्योत किया ? यह प क :सोचलें, यदि हम मारे भाइयों को नाराज न करें और थोड़ी देर के लिए उनका कहना भी मानलें, परन्तु गृहस्थ ौं ाशाह के अनुयायी मारे भाई क्या यह बतलाने का साह र े गे कि लौं ा-ाह ने नया मत नि ल र जैन शासन का यह उद्योत किया जै े कि :—

(१) क्या ौं ाशाह ने भारत के बा हर जाकर जैनधर्म ा प्रचार वि ा था जैसे कि जैनाचार्यों के उपदेश से ट् चंद्रगुप्त एवं ंप्रति ने किया था।

(२) क्या लौं शाह ने किसी यज्ञ में बलि देते ए ीवों को अ दान दिलवाया ? ाचार्य प्रीयग्रन्थ सूरि, चार्य यं प्रभ ूरि एवं रत्नप्रभसूरि ने ा ों प्राणियों के प्राण बचाये। इ ा ही नहीं पर इन मान्य आचार्यों ने तो ऐसी घातु प्रथा को ही निर्मूल बना दिया।

(३) क्या लौं ह ने किसी जबर्दस्त राजा को प्रतिबोध जैन धर्म उपासक बनाया ? जैसे ाचार्य स्ती सूरिने ट् प्रति ो ाया।

(४) ा ौं ने किन्हीं अजैनों को जैन या ?

जैसे ाचार्य रत्नप्रभसूरि आ० मुनिचंद्र सूरि धर्म घोषसूरि आदि जैनाचार्यों ने लाखों करोड़ों अजैनों को जैन बनाया।

(५) क्या लौंका ाह ने कोई तात्विक विषय का ग्रन्थ निर्माण करवाया ? या यं किया ? जैसे आचार्य सिद्धसूरि उमा- स्याचार्य, वादी देव सूरि, आचार्य हरिभद्रसूरि हेमचंन्द्रसूरि और वाचक यशोविजयजी गणी जैसे विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की।

(६) क्या लौंकाशाह ने जैनधर्म के स्तम्भ स्वरूप जैन मंदिर, मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा कराई ? जैसे सैकड़ों जैनाचार्यों ने हजारों मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाऐं कराईं।

(७) ा लौंकाशाह ने किसी राजसभा में जाकर अपने प्रतिवादियों के साथ ा ार्थ कर कहीं विजय पताका फहराई ? जैसे वादीवैताल शान्तिसूरि, आचार्य वादीदेवसूरि, राजगुरुकक्क- सूरि, आदि ने जैनधर्म का डंका बजाया था।

(८) ा लौंकाशाह ने किसी निमित्त ज्ञान द्वारा राजा, महाराजा या प्रजा पर जैनधर्म का प्रभाव डाला ? जैसे आचार्य भद्रबाहु मि ने ला था।

(९) क लौंकाश किसी राजसभा में जाकर व्याख्यान दिया था ? जैसे आचार्य बप्पभट्टिसूरि, देवगुप्तसूरि हेमचन्द्र सूरि, द् गुरु श्री विजय हरि ूरि ादि ने दिया था।

इ ादि सैकड़ों जैना र्यों तो मग्रह की विद्यमानता में भी य श ब त प्रभ शाली ार्य कर शासन का उद्योत किया, किंतु भस्मग्रह के ा पर भी लौंकाशाह ने

ध ॅ का ऐसा क्या उद्योत किया कि उसके नुयायी आज फूले नहीं समाते हैं ?

अब हम वादी प्रतिवादी रूप में कुछ प्रश्नोत्तर लि इसका पूरा खुला । करते हैं:—

प्रश्नः—जिस मय जैनों में हिं । की मात्रा बहुत बढ़ीहुई थी, उस समय बढ़ती ई हिंसा को रो लौंकाशाह ने दया धर्म का प्रचार किया।

उत्तरः—दया धर्म का प्रचार तो तीर्थङ्कर महावीर ने किया और उनके बाद जैनाचार्यों ने उसका पोषण किया, फिर लौंका-शाह ने कौनसा दया धर्म नया फैलाया ? ौर किस जगह जीव दया पलाई ?

प्रश्नः—लौंकाशाह ॅ मय मंदिरों के नाम पर घोरे हिंसा होती थी, उसे बन्द करवा के ही लौंकाशाह ने दयाधर्म प्रचार किया।

उत्तरः—लौंकाशाह ने मंदिरों का विरोध रके तो मंदिरों को कम नहीं किया, पर सोते ए माज को जागृत कर उल्टी मंदिर मूर्त्तियों की तो खूब वृद्धि ही की। जरा शिलाले ों की ओर दृष्टि डालकर देखिये तो सही कि लौं । ाह ॅ पूर्व के जितने मंदिर मूर्त्तियों के शिलाले मिलते हैं उनसे करीबन बीस गुने ज्यादा शिला ले लौंका ाह के त्पात करने के बाद के मिलते हैं। इससे यह मालूम पड़ता है कि लौंकाशाह के विरु उपदेश से की श्रद्धा मंदिर मूर्तियों ॅ न्यून होने के बजाय उनमें खूब बढ़ी। लौं शा तो उस पने अ ान के ार चे था, उसे क्या मालूम वि ंदिरों कौन हिंसा

होती है, उसने तो शैयद के वहकाने में आकर केवल हिंसा २ की पुकार उठाली होगी ? नहीं तो क्या मंदिरों के नाम पर भैंसे वकरे काटे जाते थे ? या मनुष्य वलि दी जाती थी ? क्या ि ा जाता था ? कि लौंकाशाह ने उसे बन्द करवाया।

प्रश्नः—नहीं जी ! ऐसा कौन कहते हैं, हमतो यह कहते हैं कि उस समय मंदिर के लिए पत्थर, पानी, चूना, तथा मूर्त्ति पूजा के लिए जल, चन्दन, फल, फूल, धूप आदि की प्रक्रिया में जो जीव हिंसा होती थी उसी को ही लौंकाशाह ने बन्द कराया।

उत्तरः—यह तो खूब हुआ, भगवान् महावीर के समवसरण के समय लौंकाशाह विद्यमान ही नहीं था, यदि होता तो, समवसरण की रचना देख वह छाती फाड़ कर मरजाता और शायद जीवित रह जाता तो भी गौशाला के समान यह पुकारे बिना तो नहीं रहता कि अरे ! त्यागी, वीतराग पुरुषों को इतने आरंभ और आडम्बर की आवश्यकता यों ? यदि उपदेश-व्याख्यान देना ही इष्ट है तो महारंभ पूर्वक समवसरण की क्या आवश्यकता है हायरे हाय ! इतना पानी छिड़काना, अरे इतने गाडों के गाडे भरे हुए जल थल में उत्पन्न हुए फूलों का बिछवाना यह क्यों किया जाता है इसके अतिरि एक योजन ऊँचे से पुष्प वरसाने से अनेक वायु काय के जीवों ि विराधना होती है। अरे ! प्रभो ! अग्निकाय का ारम्भ ये धूप वत्तिऐं व्याख्यान में क्यों ? हाय ! पाप, हाय ! हिंसा, अरे ! भगवन् ! ये आपके भक्त इन्द्रादि देव तीन ज्ञान संयु सम्यग् दृष्टि ल्प-परिमित संसारी महाविवेकी, धर्म के नाम पर आपके सामने घोर हिंसा करते हैं, और आप बैठे २ े ते हो, पर इनको श्र कहते नहीं हो ? इतना ही नहीं पर

ाप तो इनके रचे हुए मवसरण में जाकर विराजमान होगये हो ? : आप यं इ आरम्भ अनुमोदन करते हो। तथा धर्म के नाम पर इतनी भीषण हिं । करने वालों का, ाप स्वयं हों ला वढ़ाते हो। प्रभो ! क्या-आप यह भूलगये हैं कि विष्य में कलियुगी लोग इसी का अनुकरण र, आपका उदाहरण दे विचारे हम जैसे केवल दयाधर्मियों (ढोंगियों) को बोलने नहीं देंगे।

अरे ! दयासिन्धो ! आपके प्रत्यक्ष में ये इन्द्रादि देव क्ति में वेसुध होकर चारों ोर चँवरों के फटकार लगा रहे हैं, जिन ` संख्य वायुकाय के जीवों की विराधना होती है, फिर भी आप इन्हें छ नहीं कहते हैं, यह बड़े ाश्चर्य की बात । य ! यह कौनसा धर्म ? यह कैसी भक्ति ? कि जि में जीवों ी परिमित हिंसा हो।

हे प्रभो ! आपको इन लोगों ने मेरु पर ले जाकर एक द कच्चे पानी से आपका स्नात्र कराया, पर उसे तो हम पके जन्म-गृहस्थापना से संवोधित कर अपना वचाव कर कते हैं। पर आपकी कैवल्याऽवस्था और निर्वाण दशा में भी ये ोग भक्ति और धर्म का नाम ले लेकर इतनी हिंसा करते हैं, उसे आप भले ही सहलें पर हम से ` यह अत्याचार दे । नहीं जाता। यद्यपि ये लोग चाहे अवृत्ति अपच्चरखखानी हो, पर ाप तो चात्र अहिं । धर्म के अवतार हो, ापकी मोजूदगी में यह इतना अन्याय क्यों ? ये लोग ाप` लिये ही बाजा गाजा (दुँदुभी) वजाते हैं। आपके अवाज की साथ में भी वाजा के र देते हैं पर भी ाप बड़ीशान से मालको वगैर राग-

रागनि ों को ललकारते रहते हैं इसमें वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है उसका दोष किसके शिर पर है ? क्या आप उन्हें मना नहीं कर सकते ? । तथा आप स्वयं भी, घंटे तक खुले मुँह व्याख्यान दे रहे हैं, तो इसमें क्या वायुकाय के जीव मरते नहीं होंगे ? जब कि एक बार खुले मुँह बोलने में भी असंख्य जीव मरते हैं तो फिर घंटे तक में तो कहना ही क्या ? । यदि आप खुद ही खुले मुँह बोलोगे तो पंचमआरा के पामर प्राणी तो निःशंकतया खुले मुँह ही बोलेंगे । और कोई कहेगा तो आपका उदाहरण देके अपना बचाव कर लेंगे, फिर दयाधर्मियों की तो सुनेगा ही कौन ? । यदि आपके पास वस्त्र का अभाव हो तो, लीजिए मैं सेवा में व लादूं पर आप खुले मुँह तो कृपया व्याख्यान मत दो । यदि आप इतना कुछ कहने सुनने पर भी मुँहपत्ती न न्धोगे तो च्छे आप तीर्थङ्कर हो पर मैं तो आपका व्याख्यान कभी नहीं सुनूंगा । कारण मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जहाँ एक शब्द भी खुले मुँह बोला जाय वहाँ ठहरना भी अच्छा नहीं ।

पको अपनी प्रतिमा बनाना भी पसंद है अतएव समवसरन में दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के सिंहासन पर आपकी ही ३ प्रतिमा बनवा कर बैठाई जाती है । ाप वहाँ मना तक नहीं करते हैं इसके विपरीत आप उन मूर्त्तियों की सेवा पूजा और दर्शन करने में भी धर्म बताते हैं । क्या आपको अपनी प्रतिमाएँ इष्ट हैं ? ऊफ् वीतराग होने पर भी आप संवेगी के पक्षमें जा बैठे ? अब हमारी दया की पुकार कौन सुने ?

इत्यादि नेक तर्कनाएँ लौंकाशाह के दिल में होंती, पर शी इसी बात की है कि लौंकाशाह म वीर प्रभु के समय

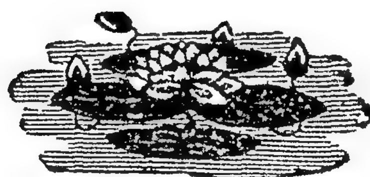
दा ी नहीं हुए। नहीं तो प्रभु महावीर ो ए गो ल के बजायदो गोसालों का अनुभव करना पड़ । अर ! गों । इ के यायियों ो चाहिए कि अब भी किसी जैन विद्वान् द्वारा भस्मग्रह । पूरा मतलब ठीक तौर से मझ लें।

भस्मग्रह के कारण २००० वर्ष तक "श्रमण संघ" की उदय उदय पूजा न होगी," इ का अर्थ य नहीं कि २००० वर्षों में श्रमण संघ की पूजा कतई होगी ही नहीं। पर इसका तो यह म व है कि, लगातार उदय २ पूजा न होकर बीच २ में कुछ काल यों ी बिना पूजा के चला जायगा, फिर पूर्ववत् पूजा होती रहेगी। देखिये भस्मग्रह के होते हुए भी २००० वर्षों के न्दर जैनाचार्यों ने भारत े बाहर भी जैनधर्म का प्रचार कर-वाया। करीब १०० राजाओं को और ला ों रोड़ों जैनेतरों को जैनधर्म में दीक्षित किया, अनेक विषयों पर परिमित ग्रन्थों की रचना की, कई राजसभाओं में ास्त्रार्थ र जैनधर्म ी वि पताका फहराई, ह ारों ।ों मन्दिर मूर्त्तियों े मेदनी मण्डि त करवा के जैनधर्म । उद्योत किया इत्यादि यह भी तो एक तरह े श्रमणपूजा ी थी। यह तो आप नि य समझ लीजिए वि जैनशा न का उ ोत श्रमण संघ ने ही किया है, ौर भविष्य में भी फिर करेगा। परन्तु आज पर्यं भी कि ी गृहस्थ ने न तो कभी शासन का उदय किया है, और न भविष्य में भी करने की ाशा है। हाँ! श्रमण संघ ाथ देकर शासनोन्नति कार्य करेतो कर स है।

प्र न में— लौंकाशाह न तो कुछ नी था, और न ति ने काबिल ही था। उसने तो जो कुछ कार्य किया

वह आज आपके सामने प्रत्यक्ष रूप विद्यमान हैं। जैनधर्म में दारुण फूट और विद्वेष फैला कर, संगठन को छिन्नभिन्न कर श्रेयार्थीजन माज को स्वेष्ट से भ्रष्ट कर, स्व, पर के पूर्ण अहित करने का श्रेय यदि किसी को है तो वह केवल लौंकाशाह को है। क्योंकि ऐसा घृणित कार्य करना सो तो ऐसे महात्माओं (।) को ही फबता है, विशेष में अज्ञात लौंकाशाह उन्नति का कार्य तो कर ही कैसे सकता था। जो हो! जाते हुए भस्मग्रह ने अपने पूरे कुयश का सेहरा लौंकाशाह आदि के कंठ में डाल गया।

लौंकाशाह ने यह नये मत का बखेड़ा क्यों खड़ा किया? इसका संक्षिप्त वर्णन यद्यपि हमने आगे के प्रकरणों में प्रसंगोपात्त छ किया है। किन्तु इसका मार्मिक विवेचन व अगले प्रकर में दे कि, क्यों उसने ाी डेढ चांवल की खिचड़ी अलग प ई थी।



प्रकरण–बारहवाँ

लौं शाह के नया मत निकालने का कारण ।

व ए धारा प्रवाही मीठे और साफ जल की नदी वह रही है तब उसके किनारे अलग उकेरी (") ोदना कुछ न छ कारण जरूर र है। या तो यह कारण ो वि नदी के ल से उकेरी का जल ाद में अधि मी और ठंडा है या उसे ोद की धूल े नदी के छ हिस्से ो पा े की जरूरत है। पर यह सब मनोदशा के विकार ही हैं। क्योंकि उकेरी में जो पानी आ है वह भी तो नदी ही े ाता है ऐसी हालत में नदी का पानी राब, और उकेरी का पानी उस े अच्छा हो यह अ ंभव है। तथा उ े री ोद कर नदी ो पा े की (नाबुद करने ो) इच्छा है यह भी निज के प का ही कारण है क्योंकि उकेरी के खोदने से जब नदी पट जायगी तो उकेरी तो स्वयं पटी हुई है। अब यदि यह कहा जाय कि नदी का पानी गँदला हो राब े जाय इस हालत में उकेरी ोदना लाभप्रद हो सकता है, यह भी कहना न्यायतः ठी नहीं, ों कि नयी उकेरी खोदने की बजाय तो नदी का पानी ही स्वच्छ करना विशेष लाभकारी है। ोंकि नदी हृदय विशाल होता है ौर उकेरियों का हृदय संकी ं रहता है। नदी ाधारण एवं चराचर प्राणियों का ाधार एवं उपकार तथा विश्वास पात्र है। और उकेरियों चन्द व्यक्ति यों की म्पत्ति

है। न तो उसपर किसी का आधार और विश्वास रहता है, और न वह इतना उपकार ही कर सकती है। नदी । पानी हमेशा के लिये रहता है, तब उकेरियों का पानी स्वल्प समय में ही सूख जाता है। बाद में धूल, मिट्टी, कचरा; पड़कर वह नष्ट हो जाती है। नदी में कूड़ा कचरा भी सब बह जाता है और उसका पानी सदा च्छ रहता है। नदी के लिए सभ्य समाज को किसी प्रकार की घृणा या ंका नहीं रहती है। किन्तु उकेरियों के लिए वह खोदने वाले व्यरि का लक्ष्य कर सदा शंकाशील रहता है और विचार करने लगता है कि अमुक व्यक्ति मेरे समानधर्मी नहीं है। नदी एक भी अनेकों का सुख पूर्वक निर्वाह कर सकती है। किन्तु उकेरियों अनेक होकर भी सब को सन्तोप शील नहीं कर सकतीं। उकेरिएँ खोदने वाले सब अपनी उकेरी के पानी को श्रेष्ठ और अन्य के पानी को हेय बताते हैं, इसी से संसार में राग, द्वेष और फूट का विष-वृक्ष-वपन होता है, और वह संसार को अवनति के गहरे गर्त्त में पहुँचा देता है। पर नदी के लिए कभी कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा! क्योंकि नदी का पानी सर्वत्र सरस और स्वच्छ ही होता है। फिर भी यदि दुराग्रह वश नदी के किनारे यदि उकेरियें खोदी जायँ तो इन से नदी को न तो विशेष हानि है और न उसकी महिमा में ही कोई कमी आती है, किन्तु भद्रार्थी जनता को भ्रम में डाल कर अपने साथ उनका भी अहित किया जा सकता है। अतएव धारा प्रवाही नदी के किनारे प्रथम े उ रियें न ोदना ही अच्छा है, यदि गोदे ही तो फिर पूर्वोक्त दो कारणों में से एकाध कारण का होना जरूरी है।

र , जिनशासन रूपी जो धारा प्रवाही नदी बहरही है

के किनारे नये त उन्तर रूपी नयी उकेरियों ग़ी ।व- कता नहीं है। यदि भी उसमें मय के प्रभाव और आप- त्तियों के कारण कोई विकार भी होगया हो तो उस विकार ग़े सुधारने की जरूरत है। जैसे पूर्ववर्त्ती जमाने में अनेक धर्म धुरं- धर शा न रक्षक ।चार्यों ने अपनी बुलंद आवाज द्वारा पुकारें की और शासन को पुनः संस्कार द्वारा स्वच्छ स्फटिक के समान चमकीला बना दिया। परन्तु अगले किन्हीं आचार्यों ने भी यह दुःसाह नहीं किया कि शासन में भेद डाल नये मत निकालें। जै` लौं ।शाह ने अपना लौंका मत नया निकाला। इसी प्रकार अन्यों ने भी जैसे:—कडुआशाह, बीजाशाह, गुलाबशाह, और भी मजी ने विना सोचे समझे नये नये मत निकाल, शासन को ि भि कर दिया। कोई भाई यदि यह भी सवाल करें ि जब लौंकाशाह के पूर्व भी ८४ गच्छ ए तो क्या ये उकेरिएँ नहीं थी?—इसके उत्तर में यह लि । जाता है कि ८४ गच्छ स्थापकों ने नई उकेरियों नहीं खोदी थी, किन वे तो विशाल नदी ग़ी । । । प नहरें ही थी, जिनसे रके नदी भरी इ और तूफान मच ।ी हुई मन्थर चाल ` बहती हैं। ौर र्वे तो मु ।ी उपकारक होती है क्योंकि इन शाखाओं के अधि- ।ओं ने कहीं पर भी ऐसे शब्द का उच्चारण नहीं किया ि नदी का पानी खराब और मारी शा । का पानी च्छा है। जैसा ि लौंकाशाह पनी नन्हीं सी उकेरी खोद चट से कह उठे कि म साधुओं को नहीं मानते, हम सूत्रों को नहीं म `, य ।ी नहीं किन यहाँ तक ह दिया कि हम तो मा- 'ि पौषद, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान, ।र मूर्त्तिपूजा ो

जैन शासन के खास अंग हैं इन्हें भी नहीं मानते। ऐसी २ घृणित और गन्दी उकेरियों खोदने वालों में, या तो स्वयं पूजवाने की प्रबल आकांक्षा है, या उत्पादकों के अभिमान की अभिभावना है। यदि ऐसा न होता तो ऐसा दुःसाहस कभी नहीं किया जाता। यहाँ पर तो लौंकाशाह के विषय में ही हम कुछ लिखेंगे कि लौंकाशाह के नये मत निकालने में क्या कारण पैदा हुआ था।

लौंकागच्छीय यति भानुचन्द्रजी वि० सं० १५७८ में लिखत ह किः—

"धर्म सुणवा जावई पोसाल, पूजा सामायिक करई त्रिकाल।
सांभलई साधु तणुं आचार, पण नावि पेखइ यति हिं लगार।
कहे लंको तमें पभणो खरउं, वीर आणा चालो परउं।
कहइ यति अम्हथी रहै धरम, तमेकिम जाणो तेहनो मर्म।
पांच आश्रव सेवता तम्हे, सिखामण देवी सहीगमें॥
सा लुंको कहई दयाई धर्म, तमे तो वाहिओ हिंसा अधर्म।
फट्भूंडा किहा हिंसा जोय, यति सम दया न पालई कोय।
साभुं लुंको मान ई अपमान, पौसालई जावा पच्चखांण।
ठाम ठाम दयाई धर्म कह्यो, साचो भेद आज अम्हि लह्यो॥
हाट बेठो दे उपदेश, सांभलां यति गण करई कलेस।

"दयाधर्म चौपाई"

× × ×

"लुंका, यतियों के उपासरे पुस्तक लिखता था, उसके

दिल में बेईमानी आने से एक पुस्तक के ७ पन्ने लिखने छोड़ दिए। जब यतिजी ने पुस्तक अधूरी देखी तो लौंका को उपालंभ दिया। और उपासरा से निकाल दिया, और दूसरे यतियों को भी लौंका से पुस्तक लिखवाना बन्द कर देने को हा। इसी कारण लौंका ने यतियों से विरोध कर अपना नया मत निकाला × × × ”

अज्ञान तिमिरभास्कर पृष्ठ २०३

इ ी बात प्रकारान्तर से स्वामी मणिलालजी अपनी प्रभुवीर पटावली में लि ते हैं वह यह है:— (सारांश)

वि० सं० १५०६ में लौंकाशाह ने पाटण में यति सुमति विजयजी के पास जाकर दीक्षा ली, बाद में घूमते घूमते अहमदाबाद झवेरीवाड़ में आकर चौमासा किया और लोगों को उपदेश देना शुरू किया कि मूर्त्तिपूजा का शास्त्रों में उल्लेख नहीं है, इत्यादि। बाद की बात स्वामीजी के शब्दों में कही जाय तो:—

× × ×

“संघ ना श्रद्धालु तत्काल झवेरीवाड़ा ना उपाश्रय (ज्यां लौंका ाह उपदेश आपता हता) आव्या अने लौंकाशाह ने संघ नी मालकीनो मकान खाली करवा धमकी आपी। लौंकाशाहे आवेल श्रावकों ने समझावानी कोशिश करी, पण यतियोंनी सज्जड़ उश्केरणी ने कारणे यति भक्तोंए कांई दाद न दीधी। अेटलुंज नहीं पण तेमांना केटलाक स्वच्छन्दी

श्रावकों आगल आवी श्रीमान् ने बल जबरी थी उपासरानी बहार कहडवानो प्रयत्न करवा लाग्या, अेटले लौंकाशाह स्वयं (पोत) तरतज उपाश्रयनी बहार निकली गया × ×

प्रभुवीर पटावली पृष्ठ १७०

ामी मणिलालजी पने धर्म स्थाप गुरु लौंकाशाह के लिए यदि छ स ई से लि`, तो इसमें कोई ाश्चर्य नहीं, पर यह बात छि पी नहीं रह सकती है कि अहमदाबाद श्री संघ की ओर से लौंकाशाह का पमान वश्य । था। अर्थात् लौंकाशाह को बल जबरी से उपाश्रय के बाहिर निकाल दिया था। बस यही कार था कि लौंकाशाह नया मत निकालता।

× × ×

× × × लौंकाशाह यतियों ` उपाश्रय, लिखाई का काम करता था, उसकी मजदूरी के पैसे श्रावक लोग ज्ञान खातों में से दिया करते थे। एक बार ए पुस्तक की लिखाई दे देने पर केवल साढ़े सत्तर दोकड़े[1] देने शेष रह गए, और इसीलिए लौंकाशाह और श्रावकों के बीच आपस में तकरार हो गई। लौं ाशाह यतियों के पास आया। यतियों ने कहा- लुंका! हम तो पैसे रखते नहीं हैं, तुम श्रावकों से अपना हिसाब ले लो। यह सुन लौंका को गुस्सा आया और यह साधुओं की निन्दा करता हुआ बाजार में एक हाट पर आकर बैठ गया। इधर एक मुसलमान ालिखारा जो मुसलमानों की पुस्तकें लिखता था और लौंकाशाह ामित्र था, वह

आ निकला, लौंकाशाह को पूछा क्या साह लौंका तेरी कपाल पर क्या है ? लौंकाशाह ने कहा मन्दिर का स्तम्भा (तिलक) इस पर शैयद ने लौंकाशाह को नास्तिकता का उपदेश दिया और लौंकाशाह की बुद्धि मे विकार हुआ। बाद उसने शैयद की संगति से जैन-धर्म की सब क्रियाओं का नास्तिपना (लोप) कर अपना नया मत निकाला ।

वीर वंशावली गुजराती का सार जैन० ० सं० वर्ष ३-३-४९

× × ×

उ० कमल संयमजी (वि० सं० १५४४)

"अहवई हूऊ पीरोज्जिखान, तेहनई पातशाह दई मान।
पाडई देहरा अने पोसाल, जिनमत पीडेई दुःखम काल।
लुंका नई ते मिलियु संयोग, ताव माहि जिम सीसक रोग।

उ० कमल संयम चौपाई वि० सं० १५४४

× × ×

उपर्यु घटनाऐं यद्यपि भिन्न भि प्रकार े लि ी गई हैं तद्यपि, इन सबका निष्कर्ष यही निकल कता है कि लौंकाशाह का यतियों द्वारा पमान आ, और यवन का ंयोग मिलने े तथा अनार्य संस्कृति े दूषित प्रभाव से प्रभावित हो जैन धर्म के विरुद्ध उ ने अ मत ग ड़ा वि ा। लौंका ह के इस कुकृत्य ी पूर्ण सफलता में हमें ाश्चर्य रने की ेई त नहीं। रण ाधारण म ध्य वि सी ावेश में र र्त्त ऽ र्त्तव्य के विषय ें अन ा है,

उसे निज तथा परके हिताहित का जरा भी विचार नहीं रहता है। फिर इनको तो उस समय ऐसे अनेक कारण भी उपलब्ध होगये थे जैसे:—भस्मग्रह की अन्तिम फटकार, उधर श्रीसंघ की राशि पर धूम्रकेतु नामक ग्रह का आना और इधर असंयति पूजा नामक अच्छेरा का बुरा प्रभाव पड़ना, एक तरफ लौंकाशाह का ाकस्मिक अपमान होना, दूसरी तरफ उसे तत्काल ही सैयद का ोग मिलना। इन सब कारणों के एक जगह मिल जाने पर ही लौं ाशाह ने यह उत्पात मचाया और उसमें ांशिक सफल हासिल की। जैन शासन में असंयमी गृहस्थ निकाला हुआ यही सबसे पहिला मत है, और यही "असंयति पूजा अच्छेरा" नाम से कहा जाता है। इस प्रकार यह विवेचन ब यहीं समाप्त होजाता है, तथा इसके अगले प्रकरण में "लौंकाशाह का सिद्धान्त क्या था?" इस पर लिखा जायगा पाठक उसे भी ान से पढ़ने की कृपा करें।



करण—तेरहवां

लौंकाशा का सिद्धान्त

कोई भी नया मत जब सर्व प्रथम होता है, तब के मूल सिद्धान्त भी साथ ही में निश्चित हो जाते हैं। जैसे दिगम्बर सम्प्रदाय का मुख्य सि ान्त है कि ाधु न रहें, ढु ामत का सि न्त है वि इस समय कोई ा साधु हो नहीं है। गुलाबपंथ का सिद्धान्त है कि स्त्रि यों को ामायिक, पौषह न हो सके। भी मजी का सिद्धान्त है कि मरते जीव को बचाने में अट्ठारह पाप लगते हैं, इत्यादि। पर लौंकाशाह ने जिस समय पना अलग मत निकाला उस समय उनका ा सि ान्त था ? यह मालूम नहीं होता। क्योंकि न तो लौंकाशाह के हाथ का कोई उल्लेख मिलता है और न लौंका-ाह के मकालीन या ास पास के समय वर्ती उनके अनुया-यियों लि ा ही कोई प्रमाण मिल है। फिर भी लौंकाशाह के म पर आज दो समुदाय विद्यमान हैं। (१) तो लौंकागच्छ (२) रा स्थानकमार्गी. इन दोनों दलों में इस समय इतना ि ोध है कि, लौंकागच्छीय यति न तो मुंह पर मुँहपत्ती ँधते हैं, और न मूर्त्ति पूजन को इन्कार करते हैं, किं इससे विरु ? न मार्गी दिन भर ँह पर डोरा डाल मुँह पत्ती बाँधते हैं और मूर्ति पूजन ा भीषण विरोध रते । इस लत में ौंका के सच्चे अनुयायी ो हैं ? नि ्य ना ठि

होगया है तथा लौंकाशा का स । सिद्धान्त क्या था ? यह भी हम साफ तौर से (जो इस विषम परिस्थिति को देख) नहीं कह कते हैं ।

फिर भी लौंकाशाह के समकालीन कई एक विद्वानों ने लौंकाशाह के सिद्धान्तो की उस समय समालोचना की थी, इसका उल्ले प्राचीन पुस्तक भण्डारों में मिलता है । तदनुसार यह पता चलता है कि लौंकाशाह का सिद्धान्त था, सामायिक, पौषह, प्रति ण, प्रत्याख्यान, दान एवं देव पूजा को नहीं मानना, यही नहीं किंतु उनसे यह भी ज्ञात आ है कि लौंकाशाह साधु और जैनागमों को भी नहीं मानता था इस विषय के कतिपय उदाहरण यहां दिये जाते हैं ।

तद्यथा:—पं० लावण्य समयजी वि० सं० १५४३

"मति थोड़ी नई थोडु ज्ञान, माहियल बहु न माने दान ।
पोसह पडिक्कमण पच्चरकाण, नही माने ए इस्यो अजांण ।
जिन पूजा करवा मति टली, अष्टापद बहु तीर्थ वली ।
नवि माने प्रतिमा प्रासाद, ते कुमति सिऊ केहु वाद ।
लुंटक मत नु किसोउ विचार, जे पुण न करई शौचाचार ॥
शोच विहुणाउ श्री सिद्धान्त, पढतां गुणतां दोष अनन्त ॥

सिद्धान्त चौपाई जैन-युग वर्ष ५ अंक १०

× × ×

उपाध्याय कमल संयम वि० सं० १५४४

"संवत् पनर अठोतर उजांणि, लुंको लहीऊ मूल नी खांणि ।
साधु निन्दा अह निशि करई, धर्म धड़ा बंध ढिलाऊ धरई ॥

तेहनई शिष्य मलीयो लखमसी, जेह नी बुद्धि हियोथी खसी ।
टालई जिन प्रतिमा नई मान, दया दया करी टालई दान ।
टालई विनय विवेक विचार, टालई सामायिक उच्चार ।
पडिक्कमणानेऊ टालई नाम, भ्रमे पड़िया घणा तेई ग्राम ।

सिद्धान्त सार चौपाई जैन युग वर्ष ५ अं० १०

× × ×

मुनि वीका कृत असूत्र निराकरण बत्तीसी

"घर सूणई ते करई वखांण, छांडई पडिक्कमण पच्चखांण ।
छांड़ी पूजा छांडिउ दान, जिण पाडिमा किधऊ अपमान ॥
पांचमी आठमी पार्खी नथी, मा छांडीनई माही इच्छी ।
विनय विवेक तिजिऊ आचार, चारित्रीयां नइ कहइ खाधार ॥

जैन युग मासिक ँ ५ अंक १-२-३

ये तीनों ले क वड़े भारी विद्वान और ों मर्म थे। लौंकाशा का देहान्त श्री संतबालजी के मताऽनुसार वि० ं० १५३२ और मुनि मणिलाल जी के कथ ऽनुसार वि० ं० १५४१ का है। और पं० लावण्य जी ने वि० ं० १५४३ में तथा उपाध्यायजी ने ं० १५४४ में उक्त चौपाईयों निर्माण किया है। इस दशा में ये तीनों उद्धरण लौं शाह के सम कालिन और ऐतिहासि सत्य ंयु सि ेते हैं। इन े लौं शाह की न्यता तथा के सि ान्त निर्णय हो जाता है। लौंकाशाह सामा. पौषह प्रति० प्रत्या० दान और देवपूजा को ही इन्कार नहीं करता था किन्तु वह तो ो चार के भी

ि द्ध था। इस विषय में एक दिगम्बरीय ।न्र का भी प्रमाण मिल ता है।

दि० आ० रत्ननन्दी वि० सं० १५२७ के बाद

"सुरेन्द्रा ों जिनेन्द्रार्चो, तत्पूजांदातु मुत्तनम् ।
समुत्थाप्य स पापात्मा, प्रतीपोजिन सूत्रतः ॥१६

भद्रबाहु चरित्र पृ० ९०

उस समय के दिगम्बरी भी यही कह रहे है कि वि० सं० १५२७ में श्वेताम्बरों में एक लुंक नाम पापात्मा ने जिनेन्द्र की पू । और दान को उत्थापा, अर्थात् वह इन्हें नहीं मानता था।

इस प्रकार श्वे० दि० अनेक ले कों ने अपने २ ग्रन्थ में लौं शाह के विषय में उल्ले किया है किन्तु मैं खास लौंका- ह के अनुयायी यति केशवजी 'जो लौं मत में एक विद्वानों की पक्ति में समझा जाता था' ने अपने ग्रन्थ में लौंकाशाह के सिद्धान्त के बारे में लि । है कि:—

"आगम लखइ मनमा शंकई, आगम सांखि दान न दिसइं।
प्रतिमा पूजा न पडिक्कमणुं सामायिक पोसहापिण कमणुं ।१३।
श्रेणिक कुणिक राय प्रदेशी, तुंगिया श्रावक तत्वगवेषी।
किणइ पडिक्कमणुं नवि किधु, किणइ परने दान न दिधुं ।१४।
सामायिक पूजा छइ ढोल, यति चलावइ इणविध पोल।
प्रतिमा पूजा बहु संताप, तो अम्हि करइं धर्मनी थाप ।१५।

लौ०—यति केशवजी० चतुर्विंशति सिलोगो।

(० १८ जुलाई ३६ ईस्वी का मुम्बई समाचार से)

ले ` पाया जाता है कि लौंकाशा सामायि ादि क्रियाओं को नहीं नता था भी तो । लौं । ाह के - यायी ऐसा लिखा है ।

इ ` आगे चल र लौं ाह के पश्चात् करीब ३०-४० वर्षों में ही लौंकागच्छीय भानुचंद्र नाम । यति ।, उ के य ˝ लौंकाशाह के मूल सिद्धान्तों में छ परिवर्त्तन अवश्य हुआ । फिर भी लौंका के प्रतिपक्षी लोग तो उन्हीं मू सिद्धान्तों ो ागे र कर कहते थे कि लौंकाशाह सा० पो० प्रति० प्रत्या० दान० ौर देव पूजा को नहीं मानता था । इनके उत्तर में भानुचंद्र पने मय के लौंकामत के सि न्तों ो ि प्र ार ` पने हाथों लि । है:—

''सामायिक टालई बो बार, पर्व परे पोसह परिहार ।
पडिकमणुं विण वरतन करइ, पच्चरकाणई किम आगार धरई ॥
टालई असंयती नइं दान, भाव पूजा भी रुडउ ज्ञान ॥
सूत्र वत्तीस सांचा सदह्या, समता भावे साधु ा ।
सिरि लोंका नुं साचो धरम, अमे पड़ीया न लहइ मर्म ॥
निंदइ कुमति करइ हठवाद, बीछी करडयो पि उन्माद ।

दयाधरम चौपाई वि० सं० १५७८

इन चौपाइयों से यह ध्वनि निकलती है कि लौंका । सामा. पौषह. प्रति. प्रत्या. दान और देव पूजा, साधु तथा जैनागम दि भी नहीं मानता था । पर ये ` जिन शासन की मूल क्रियाएँ हैं, इनके विना मत या पन्थ नहीं ता, इसी कारण यदि लौंकाशाह ने अपने अन्तिम समय

अपने दूषित विचारों को बदल दिया हो और बाद उनके अनुयायी वर्ग भी इसी सिद्धान्त पर ाए हों कि, सामायिक दिन नियमित समय पर एक बार, पौषह पर्वदिन में, प्रति मण धारी श्रावक को, प्रत्याख्यान विना आगार, दान असंयमी को नहीं पर संयमीको देना, द्रव्य पूजा नहीं पर भाव पूजा करना, आगमों में ३२ सूत्रों को मानना, और मता भाव ला हो वही साधु हो सके, इ ादि मान्यताएँ बाद में घड़ निकाली हों तो आश्चर्य नहीं।

यहाँ पर एक यह सवाल भी उठता है कि लौंकाशाह ने सा . पौस. जैसी उत्तम प्रक्रियाओं एकदम कैसे निषेध ि ा होगा? यह प्रश्न प्रधानतया विचारणीय है। मनुष्य जब किसी ावे में आज ा है तब उसे पने हिताऽहित का जरा भी विचार नहीं रहता। कोइ राजा किसी पर जब प्रस हो जा है तो हर्ष के आवेश में आकर उसे राज तक देने को तैयार हो जाता है। बहादुर दमी जब युद्ध में जाते हैं तब उन्हें वीरता का आवेश चढाया जाता है। वीरता के ावेश में आया वीर हँसते २ पने अमूल्य प्राणों को पने मी के काज युद्ध में बलिवेदी पर चढा देता है। इसी प्रकार क्रोध के वेश में आया हुआ व्यक्ति अनेक बुरे कामों को कर बै ा है। इसी से तो श रों ने क्रोध को जीतना महात्मा मुख्य ल ण माना है। लौंका ह ने जब नया मत निकाला तब पर भी क्रोध का वेश चढा आ था क्योंकि उपाश्रय श्रीसंघ द्वारा पमान हुआ था, ौर इस अपमान, और जन्य ोधावे के कारण की कर्त्तव्य बुद्धि

भ्रष्ट होगई जैसे गोसाला को लीजिए, क्या वह वंज्ञ तीर्थ र था ? परन्तु आवेश में उसने स्वयं को सर्वज्ञ तीर्थङ्कर घोषित किया । क्या जमाली केवली होगया था ? नहीं, पर वह अपने को केवली कहलाने लगा । इसी प्रकार जब लौंकाशाह उपाश्रय में गया और वहाँ उसका अपमान हुआ तो वह ुद्ध हो बाहिर । के बैठगया बैठते ही तत्त्तण "मर्कस्य सुरामानं मध्ये वृश्चिक दंशनम् तन्मध्येमृत सञ्चारः यद्वातद्वा भविष्यति" इस न्याय के अनुसार उसे सैयद का संयोग मिल गया उसने सीधी उल्टी पट्टी पढ़ा उसे जैन धर्म के खिलाफ़ कर दिया, इधर भस्मग्रह की अंतिम कार, श्री संघ की राशि पर धू केतु का आ मण, असंयति पूजा अच्छेरा का प्रभाव, इत्यादि निमित्त कारणों ने लौंकाशाह को आग बबूला बना दिया और यह अनर्थ करा दिया हो तो विस्मय की बात नहीं । अथवा जिस समय लौंकाशाह क्रोध में था, ौर सैयद के दुरूपदेश । असर उस पर चढ़ा आ था, उ समय शायद किसी ने लौंकाशाह को कहा होगा कि:—

चलो लौंकाशाह ! सामायिक करें । जाओ हम नहीं मानते सामायिक ।

चलो लौंकाशाह ! पौसह करें । जा ो हम नहीं मानते पौसह को ।

चलो लौंकाशाह ! पडिक्कमण करें ? जाओ हम नहीं मानते पडिक्कमणि को ।

लौंकाशाह ! कुछ पच्चक्खांण तो करो ? जाओ हम नहीं मानते पच्चक्खाण को ।

कौशाह ! यतियों को दान दो ! जाओ हम नहीं मानते दान को ।

चलो लौंकाशाह ! पूजा तो करो। जाओ हम नहीं मानते पूजा को ।

चलो लौंकाशाह ! यतिवन्दन तो करो ? जाओ हम नहीं मानते यतियों ो ।

लौंकाशाह ! ये सब बातें सूत्रों में लिखी है ? जाओ हम नहीं मानते सूत्रों को ।

इस तरह से या प्रकारा ऽ न्तर से लौंकाशाह ने पूर्वोक्त धर्म क्रियाओं का इन्कार तो अवश्य किया होगा, जभी तो आपके समकालीन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में इस बात का उ ेख किया है । यदि लौंकाशाह के ब.द १०० या २०० वर्षों में ये ग्रन्थ लिखे गए होते तो, उन पर इतना विश्वास नहीं होता जैसे ामी भीषमजी ने दया दान की उत्थापना की वैसे ही उस समय के ग्रन्थों में भी दया दान के विषय का उल्लेख मिलता है । पर यह कहीं नहीं कहा गया कि भीषम जी ने भगवान् महावीर को भी "चू ।" कहा था कारण यह बात उनके बाद की है । इसी भाँति लौंकाशाह के समय भी पूर्वोक्त बातों का ही निषेध हुआ था, और उन्ही का उल्लेख तात्कालीन ग्रन्थों में मिलता है नकि डोरा डाल मुँह पर मुँहपत्ती बांधने की विधि का प्रयोग लौंकाशाह के समवर्ती समय का मिलता है । क्योंकि लौंकाशाह तो मुंहपत्ती बाँधते नहीं थे, मुँहपत्ती तो उनके प्रायः दो सौ

वर्षों बाद यति लवजी ने बाँधी थी, और उसी का उल्लेख लि । आ यत्र तत्र मिलता है ।

लौंकाशाह पर तो नार्य यवन का ही प्रभाव पड़ा, और फल रूप लौंकाशाह ने जैन धर्म के अंग रूप प्र धर्म क्रियाओं का निषेध कर दिया तो मुँहपत्ती मुँह पर बांधने की फत लौंका ाह क्यों मोल रीद करे वह तो धर्म क्रियाओं से भी पृथक था इ अस्मदुक्त बात को परिपुष्ट करने वाला ए और सबल प्रमाण लौंकाशाह के समकालीन क डुआशाह ना गृहस्थ का मिलता है । इसने भी अपने नाम से नया कडु ामत निकाला था जैसे लौंका ाह ने अपने नाम से लौंकामत निकाला ।

लौंकाशाह			डुआशाह		
जन्म	वि० सं०	१४८२	जन्म	वि० ०ं	१४९५
मत	वि० ०ं	१५०८	मत	वि० सं०	१५२४
देहान्त	वि० ०ं	१५३२	देहान्त	वि० सं०	१५६४
अथवा	मु० म०	१५४१			

इस वर्षावली से यह स्पष्ट पाया जाता है कि लौंकाशाह और कडुआशाह ये दोनों समकालीन गृहस्थ थे, और जैन यतियों से अपमानित हो अपने नाम से नये मत निकालने वाले थे, जब लौंकाशाह ने सामायिकादि सभी ि याओं का निषेध किया तब कडुआशाह ने अपने नियमों में यह भी एक नियम र । कि सामायिक वहुधा, एक दिन में बहुत वार करना, पौपह पर्व के अलावा प्रत्येक दिन करना, इत्यादि ।

यदि कडुआशाह के समय सामायिकादि के खिलाफ किसी की मान्यता नहीं होती तो फिर यह नियम बनाने की कोई ावश्यकता शेष नहीं रह जाती। परन्तु जब यह नियम बनाया है तो यह मानना पड़ेगा कि कडुआशाह के समय सामायिकादि ि याओं का विरोध जरूर हुआ था। और यही लौंकाशाह का मूल सिद्धान्त था। लौंकाशाह के अनन्तर लौंका० के अनुयायी ३२ सूत्र मानने लगे, परन्तु ३२ सूत्रों में तो किसी भी स्थान पर श्रावक के सामायिक, पौसहादि की विशेष विधि नहीं है। इन ३२ सूत्र में १ आवश्यक सूत्र हैं। पर इनमें श्रावक के प्रतिक्रमण का नाम निशान तक भी नहीं है। ऐसी दशा में स्वयं लौंकाशाह ने और उसके बाद कुछ वर्षों तक उसके अनुयायी वर्ग ने यदि इन क्रियाओं को न किया हो तो संभव है। परन्तु जब लवजी ने आगे चल कर अपना सिद्धान्त बदल दिया, तब लौंकाशाह की मान्यता और स्थानकमार्गियों की मान्यता में आकाश पृथ्वी का अन्तर आगया, फिर समझ में नहीं आता है कि सि न्तो के अन्दर वैषम्य होने पर भी स्थानकमार्गी समाज पने को लौंका ह का अनुयायी क्योंकर मानता है।

वस्तुतः लौं शाह ने अपने अपमान के कारण क्रुद्ध हो, सब क्रिया साधु, तथा जैनागमों को अस्वीकार किया, परन्तु उस द । में उसने अपना अलग पक्ष स्थिर नहीं किया। अपितु जब उस क्रोध न्त हुआ होगा, तब यह विचारा होगा कि मैंने यह । बुरा काम किया। तथा भाणादि तीनों मनुष्यों ने भी उसे समझाया होगा कि आपने यह क्या बुरा काम किया, ा सामायिकादि धर्म क्रियाओं के किए बिना

पना म चल सकेगा ? ामायिक-प्रतिक्रमण न हो तो आपके मत में हम ाधु कैसे होसके ? बिना साधु धर्म चीरं-जीव बनता नहीं, इत्यादि समझौते से और कुछ निजके शान्त विचारों से लौंकाशाह ने अपनी पिछली टाइम में अपने संकुचित विचारों को बदल कुछ उदात्त विचार धारण किए, तत्पश्चात् भाण आदि लौंका के अनुयायियों ने भी धीरे धीरे मम्र क्रियाओं को मान देना शुरू किया।

और भानुचन्द्र के समय तक तो, जो क्रियाएँ लौंकाशाह के मय में नहीं मानी जाती थीं वे सब भी मानी जाने लगीं, ऐसा उनकी दया धर्म चौपाई से विदित होता है। भानुचंद्र के नन्तर तो लौंकाऽनुयायी मूर्ति को भी मानने लग गए थे। इसी तो स्वामी मणिलालजी ने अपनी "प्रभुवीर पटावली" पृ १८१ में लि है कि—"वि० सं० १६०८ में लौंकामत में गोटाला (अव्यवस्था) होने लगा। व इस गोटाले से संकेत मूर्त्ति पूजा-प्रति ा की ओर ही है। नन्तर लौंकाशाह का मूल मत टूट लग गया, ौर वे अपने उपाश्रयों में मूर्त्तियों ी यथा-वत् स्थापना, और सामायिकादि ि ाएँ रने लग गए, तथा ि या-काल में स्थापनाजी ादि भी रखने लग गए जो द्या-वधि विद्यमान है। इस पूरा विवेचन चौदहवें प्रकरण में हैं, पाठक उसे वहां दे ने का कष्ट रें।

प्रकरण चौदहवां

लौंकाशाह और मूर्तिपूजा

लौंकाशाह जिस समय हमदाबाद के श्रीसंघ द्वारा अपमानित हुआ था उस समय गुस्सा-आवेश में आकर जैन श्रमण, जैनागम, ामायिक पौसद प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और दान का निषेध किया था, इसी भांति मूर्ति पूजा का भी इन्कार कर दिया था। बात भी ठीक है, क्रोध में मनुष्य वेभान एवं अन्धा वन जाता हैं। ावेश में इन्सान हिताहित एवं कृत्याकृत्य का याल भूल जाता हैं। जैसे जमाली गोसालादि ने स्वयं अल्पज्ञ होने पर भी सर्वज्ञता का नाद फूका। इतना ही नहीं पर भगवान् पर भी उन्होंने पना रोष प्रगट कि । ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, इसी प्रकार लौंकाशाह जैन यतियों, जैन मंदिर उपाश्रय और जैन श्रीसंघ से खिलाफ हो पूर्वोक्त बातों का विरोध किया हो तो यह असंभव नहीं है, लौंकाशाह के समकालीन लेखकों के लेखो से भी यह बात परिपुष्ट होती है।

जब मनुष्य को क्रोध से थोडी बहुत शान्ति मिलती है, तब वह विचार करता है कि मैंने आवेश में कर अमुक कार्य किया वह अच्छा ि ा, या बुरा? इतना भान होने पर बुरा काम का पश्चाताप अवश्य होता है। इसी भांति श्रीमान् लौंका-शाह जब थोड़ा बहुत शान्त हुआ तो उन्होने अपने अकृत्य पर

ताप कि या परन्तु पकड़ी हुई त एक दम छुट नहीं कती हैं, तथापि उन विरोध किये हुवे विधानों पर इतना जोर नहीं दिया गया इसी ही है कि जि क्रियाओं का लौंका- रं में विरोध कि ी क्रियाओं को आपके अनु- ायी धीरे धीरे पने मत में स्थ देने लगे जैसे लौंकाशाह ने । ी जैनागम को नहीं ा था पर बाद ापके नुयायियों को श्री पार्श्वचन्द्रसूरि द्वारा गुर्जर भाषानुवाद किये ए बत्तीस सूत्र थ गे, उनको मानने लगे और बत्तीस सूत्रों में श्रावक के मायिक पौसह प्रतिक्रमणादि का विशिष्ट विधान न होने पर भी लोगों की ब लता के ारण इन त्र क्रिया ों को स्थान देकर ी र करनी पड़ी, लौंकाशाह ने यतियों के साथ द्वेष के कारण दान देना भी निषेध किया परन्तु द में आपके मत में ाधु होजाने से दान देने की भी टी दे दी, लौं शाह ने मूर्त्ति पूजा भी विरोध किया था, पर आपके अनुयायियों ने तो अपने मत में मूर्त्ति पूजा को भी स्थान देदिया। इतना ही नहीं पर लौंकागच्छ के पूज्य मेघजीस्वामी तथा श्री लजी और पूज्य आनंदजी, सैंकड़ों ाधु ों के साथ जैनाचार्यों के पास पुनः दीक्षा ग्रहण कर मूर्त्ति पूजा के कट्टर उपदेशक एवं प्रचार बन गये और शेष रहे हुए लौंकाशाह के अ यायी और साधुवर्ग ने मूर्त्ति पूजा को शा सहमत सम के स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने तो अपने उपाश्रयों में देरासर बनवा

१ पं० व समय उ० क संयम, नि वीका, लौंकागच्छीय यति भ चन्द्रादि लेख इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट देदेते हैं देखो विस्तार से।

र वीतराग की मूर्त्तियों ो प्रति । कर ` द्रव्य भाव से पूजा तक करने लग गये । इतना ही क्यों लौंकागच्छ के आचार्यों ने कई मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा भी रवाई वे मन्दिरमूर्त्तियों और उन पर अंकित * शिलाले ाज भी विद्यमान हैं । जहां जहां लुंकागच्छ के उपाश्रय हैं, वहां जैन देरासर मूर्त्तियों साम्प्रत मय भी विद्यमान हैं । जिन जिन गामों में लौंकागच्छ के साधु नहीं रहे वहां के उपाश्रय की मूर्त्तियों नगर के मन्दिरों में पधराई गई हैं फिर भी बी नेर जोधपुर फलोदी सादड़ी मजल मेवाड़ मालवा गुजरात काठियावाड़ पंजाब ी. पी. बरारादि प्रदेश में लौंकागच्छ के उपाश्रयों में तीर्थङ्करों की मूर्त्तियां आज भी पूजी जारही है, और उन लौंकागच्छीय पुजारों की संख्या भी हजारों घरों की हैं । वे लौंकागच्छ के हलाते हुए भी मूर्त्ति-पूजक हैं । उनकी गण भी मूर्त्तिपूजकों में ो जाती है । अत-एव दोनों स द ों में फिर ` शान्ति हुई जो मूर्त्तिपूजा मानना ौर नहीं मानने का भेद भाव मिट कर उभय समाज मूर्त्ति के उपासक बन गये । जब मूर्त्ति विषय दोनों स दाय की मान्यता एक होगई तो जैनागम और निर्युक्ति टीकादि पांचांगी मानने में भी किसी प्रकारका मतभेद नही रहा इसी कारण लौंकागच्छीय कई विद्वानों ने छोटे बड़े † ग्रन्थों का भी निर्माण किया उसमें

---

* बाबू पूर्णचंद्रजी नाहर संपादित ि `ख प्रथम खण्ड लेखांक लौंकागच्छ के आचार्यों ने मन्दिरों की प्रतिष्ठा वाई के लेख है ।

† विजयगच्छीय यति केशवरायजी कृत रामायण तथा लौंकागच्छीय गणि रामचंद्र तथा आपके शिष्य नानकचन्द कृत ग्रन्थों को देखो ।

भी मूर्त्तिपूजा का यथार्थ, प्रतिपादन कि , हुआ ाहित्य । भी वि मान है।

परन्तु लिकाल के र प्रभाव के ारण यह बात दुरत को पसंद नहीं हुई उसने पुनः शान्त हुई जैन समाज में ए ऐ । उत्पात मचाया कि वि म ी अठारवीं शताब्दी के प्रारंभ में लौंकागच्छ के यति धर्मसिंहजी और वजी को प्रेरणा ी और उन्होंने फिर मूर्त्ति पूजा का विरोध उठाया। शायद् लौंकागच्छ के श्री ों ने इ ी रण इन दोनों व्यक्ति यों को गच्छ बाहर करना घोषीत कर दिया हो परन्त दुरत ो इतने से ही संतोष नहीं आ फिर इन दोनों व्यक्ति यों में भी ऐसा भेद डाला कि वे ापस में एक दूसरे को उत्सूत्र प्ररूपक निन्हव और मिथ्यात्वी बतला लगे—कारण धर्मसिंहजी ने श्राव के सामायिक का पच्चख ाण ाठ कोटि होने की मिथ्या कल्पना की तब ामि लवजी ने डोरा डाल दिन भर मुहपत्ती मुँहपर बान्धने की नयी कल्पना कर डाली जो जैन । और प्रवृत्ति से बिलकुल विरु थी।

इन दोनों व्यक्ति यों । चलाया । नूतन मत का नाम ही ढूंढिया मत है। वह भी दो विभागों में विभाजित हो ग (१) ाठ कोटि (२) कोटि इस के भी अने । । प्रतिशाखाऐं रूप टुकड़े हो गये उनमे से कई आज भी विद्यमान हैं ौर आपस में इतना ही विरोध है कि जो शरुआत में था। जब ढूंढिया नाम इन लोगों को खराब लगा तब वे लोग आप पने ो धु मार्गी के नाम से ओल ाने लगे ोंकि जैनियों का मार्ग तो तीर्थ रों । चलाया । पर ढूंढि का मार्ग

ाधु ों ने ही निकाला। वे तीर्थंकरों का नाम क्यों रखे जब फासुक धर्म शाल उपाश्रय से लौंका मत वालों ने इन लोगों को निकाल दिया तब वे लोग पने भ ों को उपदेश देकर साधुओं के रहने के लिये स्थानक (मकान) बनाया और उसमें रहने के कारण ये स्थानक वासी कहलाये! ौर जो लोग स्थानक को आधा र्मी—दोषित बतलाकर उसमें ठहरने में महा पाप समझने वाले ाज भी साधुमार्गी कहलाते हैं परन्त स्थानक में ठैरने वालों की हुलता होने के कारण इस समाज का नाम प्रायः स्थानकवासी (वास्तव में स्थानक मार्गी कहना चाहिये) पड़ गया है इतना परिचय करवा देने के पश्चात् यह बतला देना चाहता हूँ कि इन स्थानकमार्गीयों की मूर्त्तिपूजा विषय प्राचीन एवं अर्वाचीन क्या मान्यता हैं। जिसका संक्षेप से यहाँ परिचय करवा देना ठीक होगा।

(१) आज से करीबन पचास वर्ष पूर्व स्थानकवासी समाज कीमान्यता थी कि भगवान् महावीर के बाद २७ पाट तक तो सुविहित आचार्य हुए (श्रीनन्दीसूत्र की स्थविरावली में सत्ताईस पाट अर्थात् देवर्द्धगणि क्षमाश्रमण तक की नामावली हैं और नन्दीसूत्र ३२ सूत्रों में से एक है)। उन लोगों के कहने का त्पर्य यह है कि भगवान् म वीर से १००० वर्ष तक तो शुद्ध चारी पूर्वधर ाचार्य हुए बाद शिथलाचारी आचार्यों ने अपने र्थ के लिये मूर्त्तियों की स्थापना कर मुर्ति पूजा चलाई।

(२) स्थानकवासी साधु हर्षचन्दजी ने अपनी "श्रीमद्-रायचन्द्र विचार निरिक्षण" नामक पुस्तक के पृष्ठ २२ में, पं० बेचरद , रचित "जैन ाहित्यमाँ वि ार थवा थी हानि" नामक

पुस्तक के अधार पर लिखा है कि भगवान् महावीर ` वाद ८२२ वर्ष में जैन मूर्तियों की स्थापना हुई। इस समय के पूर्व जैनों में मूर्तिपूजा नहीं थी।

(३) श्रीमान् वाडीलाल, मोतीलाल शाह अहमदावाद वालों ने पनी "ऐतिहासिक नोंध" नामक पुस्तक के पृष्ठ १८ पर लि । है कि आचार्य वज्र स्वामी का शिष्य आचार्य व सेनसूरि के मय पाँच, सात एवं वारह वर्ष का दुष्काल पड़ा गौर उस य शि थलाचारी आचार्यों ने मूर्ति पूजा प्रचलित की। यह मय महावीर के वाद छट्टी शताब्दी का था।

(४) स्थानकवासी मुनि सोभाग्यचन्द्रजी (संतबा जी) ने "जैन प्र ाश" अ वार में धर्मप्राण लौंकाशाह की ले माला ति खते हुए बतलाया है कि सम्राट् अशोक के समय जैन मूर्त्तियाँ प्र लित हुई। सम्राट् अशोक का समय महावीर प्रभु के बाद तीसरी श ब्दी का है। प ात् में दूसरे शताब्दी पर आये और त्र बड़ली ले शिलाले से भगवान् महावीर के बाद ८४ वें वर्ष मूर्ति पूजा शुरु ई इसको मानने लगे।

(५) स्थानकवासी मुनि मणिलालजी अपनी "जैन धर्म नो प्राचीन संक्षिप्त इतिहास अने प्रभुवीर प ावली" नामक पुस्तक के पृष्ठ १०९ तथा १२१ में इस प्रकार उल्ले करते हैं कि "मूर्त्तिपूजानी शरूआत जैनोंमाँ श्री वीरनि ि ना बीजा सैंकाना अन्तमां थई होय अेम के ।क ।णों पर थी मजी काय छे××× सुविहित आचार्यों श्री जिने रदेवनी प्रति । ताः ते जे परिणाम मेलवना आचार्यों अे युं हतुं ते परिणाम केटले शे ।व्युं रूँ थात् श्री

जिनेश्वरदेवनी प्रतिमानी स्थापना ने तेनी प्रवृति थी घणा नों जैनेत्तर थता अटक्या ; अने तेम करवामों ओ आचार्यों ओ जैन समाज पर महान् उपकार कर्यो छे ओम करवामां जरा ओ अतिशय युक्ति नथी" ।

इस पर निर्पक्ष मुमुक्षुओं को विचार करना चाहिये कि भगवान् महावीर के बाद ९८० वर्ष में श्री देवर्द्धगणि क्षमाश्रमणजी ने जैन सूत्रों को पु कारूढ़ किया । इस समय तक सुविहित आचार्यों का होना ीकार कर लिया । क्योंकि वे सूत्र श्वेताम्बर समुदाय के तीनों फिरके मान रहे हैं अर्थात् इन सूत्रों पर आज शासन ही चल रहा है । इस समय के बाद शिथलाचार और मूर्त्तियों का प्रचलित होना स्थानकवासी समाज स्वीकार करता है । पर ज्ञान के प्रकाश में स्था० साधु हर्षचन्दजी करीबन २५८ वर्ष और बढ़कर महावीर ८२२ वर्ष में शिथिलाचार और मूर्त्तियो के दर्शन कर रहे हैं । भाई वाडीलालशाह की शोधखोल ४०० वर्ष आगे बढ़कर भगवान् महावीर के बाद ६०० वर्ष में शिथलाचारी चार्यों रा मूर्त्तियों की स्थापना का ा देख रहा हैं । पर यह लि ते ाप अपने पूर्वजों की कल ा को बिल ल भूल ही गये कि भगवान् महावीर के ६०० वर्षों में शिथलाचार सम ज गा तो ३२ सूत्र भी शिथलाचारियों के लिखे ए के जायँगे ? फिर भी ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई ।

इधर पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों की शोधखोल ने प्राचीन के इतने ाधन उपस्थित कर दिये कि हमारे स्थानकवासी नियों को ५ पूर्वजों की मान्यता ों में परिवर्तन करना

पड़ा। ाथ ही पना यह मत भी प्रकट करना पड़ा कि—जैन मूर्त्तियों की स्थापना भगवान् महावीर के बाद दूसरी शताब्दी में सुविहित आचार्यों ने की। और उस ा परिणाम भी अच्छा आया अर्थात् जैनमूर्त्तियों की स्थापना कर जैनाचार्यों ने जैन-समाज पर उपकार किया। यदि स्वामीजी ए कदम और आगे बढ़ जाते तो करीबन् ४५० वर्षों का मतभेद स्वयं न हो जाता और दोनों समुदायें एक होकर शासन सेवा करने में ग्य-शाली बन जाती। खैर! इ सत्य प्रियता के लिये आप । स्वागत करना हम हमारा कर्त्तव्य समझते हैं।

परन्तु इसमें एक प्रश्न पैदा होता है कि आपने य वि आधार पर लि है कि जैनों में मूर्त्ति ा मानना महावीर निर्वाण के बाद दूसरी शताब्दी े प्रारम्भ ा ौर वि त आचार्यों ने इ प्रवृति े जैन माज पर महान् र वि । इत्यादि।

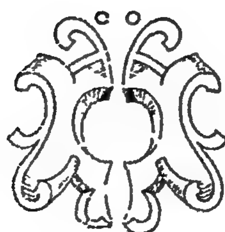
आपने इसके लिए न तो कोई प्रमा बत या है और न यह बात कि ी चीन ग्रन्थ व शिलाले में मिलती भी है। यदि महाराज ारवेल के शि लेख , स्तीगु ी चीन मूर्तियां, मथुरा े ी टीलों की चीन जैन मूर्तियों के शि ालेखों, ेरि के सिद्ध यं आस्ट्रेलिया की महावीर मूर्त्ति, ोलिया प्रान्त े मन्दिर के ध्वं विशेषादि प्राचीन इतिहा ा ों पर ही ल्पना की हो तो अभी ाप का भ्या ाप्त है। ोंकि पूर्वोक्त प्रमाणों े तो भगवान् महावीर े पूर्व भी जैनों मूर्त्तिपूजा प्रचलित होना सिद्ध होता हो। और इ बात को म प

को किसी प्रकार की आपत्ती भी नहीं है। क्योंकि महावीर के बाद दूसरी शताब्दी में सुविहिताचार्यों के समय मूर्त्तिपूजा प्रचलित तो आप ˆकार कर ही चुके हैं। और वीरात् दूसरी शताब्दी के सुविहिताचार्यों के निर्माण किये आगमों को (ठ हारसूत्रादि) ाप प्रमाण मानते हो जब उनके बनाये म प्रमाण है तो उनकी चलाई मूर्त्तिपूजा भी प्रमाणिक मानना तो यं सिद्ध है और मूर्त्ति बिना आप का भी तो म नहीं चलता हैं कि ी भी रूप से मानों पर मूर्त्ति तो आपने भी मानी है। खैर पब्लिक में आज नहीं तो कल पर मूर्त्तिपूजा ने बिनो छुटकारा नहीं है आप नहीं तो ापके होने वाले मानेंगें जैसे ापके पूर्वजों कि अपेक्षा आप को आगे कदम बढाना पड़ा है इसी तरह आपके पीछे होने वालों को आप से

---

* १ मारवाड़ गोरी ग्राम में स्थानकवासी साधु हर्षचन्दजी की पाषणमय मूर्त्ति उपाश्रय के द्वार पर विराजमान है। आपके भक्त लोग नलयेरादि से पूजा करते हैं मारवाड़ सादड़ी ग्राम में ताराचंदजीकी पाषाण मय मूर्त्ति और अष्टद्रव से हमेशा पूजा होती है। और स्थानकवासी धु साध्वियों दर्शन ने को जाते है। और भी जेतपुर-रायपुर-बडोत-अंबालादि बहुत स्थानों में स्थानकवासी साधुओं की समाधी पादुका और मूर् ों है और उनकी सेवा पूजा भक्ति स्थानकवासी समाज पूज्य भाव से करते है। स्थानकवासी साधुओं के फोटु तो प्रायः घर में और अनेक पुस्तकों में पाये जाते है। यह सब मूर्त्तिपूजा नहीं तो और । है ? जिनकी गति का ठिकाना नही उन को तो पूजना और तीर्थंकर देव जिन्होंने नि मोक्ष प्राप्त किया उनकी प्रतिष्ठित मूर् का अनादर करना से बढ़ के अज्ञानता ही क्या हो सकती है । प पात का चश्म उतार विचार ो कि न्याय क्या कहता है।

आगे कदम बढाना ही पड़ेगा। र मूर्त्तिपूजा के विषय में मैंने एक ग ग्रन्थ लि । हैं उसमें मूर्त्तिपूजा का इति । , लौंका-शाह पर किन अनार्यों का प्रभाव प । और उन्होंने मूर्त्तिपू । । विरोध क्यों किया, फिर लौं ।शाह के यारि ों ने मूर्त्ति-पूजा क्यों ीकार की, ।गमों की प्रमारि ।, जैनागमों ।दि काल से शाश्वति मूर्त्तियों धर्म की दि का में कृत्रिम मूर्त्तियों और ऐतिहासिक क्षेत्र में मूर्त्तिपूजा का ।ग्रह र नादि नेक विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। इसी ।रण यहाँ मूर्त्ति विषय केवल लौंकाशाह । म्बन्ध ंक्षिप्त से लिख इस प्रकरण को समाप्त कर देता हूँ। ब ।गे के प्रकरण में ौंका-शाह डोरा डाल मुंह पर मुहपती बान्धी थी या नहीं इ । निर्णय किया जायगा पाठक ध्यान पूर्व पढ़ें।



करण—पन्द्रहवां

लौं ाह और ंहपत्ती ा ोरा ।

मेरी शोध एवं ोज से आज पर्यन्त श्रीमान् लौंकाशाह के जी जितने ले कों * के लेख मिले हैं उनमें केवल एक ामि अमोलखर्षिजी के ले कों को अलग रख दिया जाय तो सबके सब लेखकों । एक ही मत है कि लौंकाशाह किसी और किसी भी अवस्था में डोरा मुंह पर मुंहपत्ती नहीं बान्धी थी और यह बात भी यथार्थ है । क्योंकि जब लौंकाशाह जैन यतियों, जैनमन्दिर उपाश्रय के साथ द्वेष के ारण जैनश्रमण, जैनागम, यिक, पौसह, प्रतिक्रमणादि किन्हीं भी धर्म क्रियाओं को ही नहीं मान था इस हालत में डोराडाल मुंहपर ंहपत्ती बांध तो दूर किनारे रहा पर थ में भी मुंहपत्ती र ने की भी ापको जरूरत नहीं थी, और यह बात एक र ि ाले के सम में भी आ ती है कि सामायिकादि ि ा ही नहीं करे उस मनुष्य को ंहपत्ती की क्या ाव है ?

देर लिये हम ऋषिजी का कहना मान भी लें कि लौं ाशाह डोराडाल के मुंहपर ंह ी बान्धी थी, तो सबसे पहले दो पैदा होंगे (१) सब से प्र लौं ाह ने ही मुंहपत्ती न्धी थी तो लौं शाह के पूर्व जैन साधुश्र ाक धर्म क्रिया

---

* देखो प्र ण चौ ।

करते मय मुंहपत्ती हाथ में ही रखते थे, और लौंकाशाह ने ये नयी प्रवृति करी यह सिद्ध होता । (२) दूसरा लौंकाशाह ने मुंहपर मुंहपत्ती बान्धी थी तो लौंकाशाह के अनुयायी लौंकागच्छ के श्री पूज्य-यति और श्रावक हाथ में मुंहपत्ती क्यों रखते हैं ? ौर यह कब से शुरू हुई र्थात लौंकाशाह के बाद कि किस आचार्य ने किस समय मुंहपत्ती । डोरा तोड़ मुंहपत्ती हाथ में रखनी शुरू ी जो आज पर्यन्त लौंकागच्छ के श्री पूज्य-यति और श्रावक मुंहपत्ती हाथ में र ते हैं और लौंकाशाह की मुंहपर मुंहपत्ती बान्धने की प्रवृति को लौंकागच्छ के श्री पूज्यों, यतियों और श्रावको ने तोड़ कर हाथ में रखने की प्रवृति क्यों की ? क्या ऋषिजी के पास इन दो प्रश्नों । उत्तर देने का कुछ प्रमाण है ? छ नहीं।

वास्तव में लौं शाह ने डोराडाल मुंहपर मुंहपत्ती नहीं बान्धी थी। यदि लौंकाशाह ने मुँहपर मुँहपत्ती बान्धी होती तो लौंकाशाह के समसामायिक पं० लावण्यसमय, उ० कम संयम, मुनिजी वीका तथा लौंकागच्छीय यति भानुचन्द्र पने ग्रन्थों में लौंकाशाह की मान्यता के विषय में जैन साधु, जैनागम, सामायि , पौसह, प्रति माणादि की चर्चा और खडन न वि है वे मुंहपत्ती का भी उल्लेख वश्य करते पर उन्होंने मुंहपत्ती विषय ए ब्द त भी उ ार नहीं किया इ से स्पष्ट पाया जाता कि न तो लौंका ाह ंहपर मुंहपत्ती बान्धी थी ौर न उस मय इस बात की चर्चा भो ई थी इतना ही ों पर विक्रम की हवीं शताब्दी के न्तिम चरण लौं मत ें यति शवजी, लौंकामतानुसार बड़े ही विद्वान् ौर वि ,

ए उन्होंने लौंकाशाह की जीवन घटनाओं को ग्रंथित कर एक ि लोका बनाया जिसमें लौंकाशाह, देवपूजा और दान नहीं मानने का उल्ले किया पर मुँहपत्तो डोराडाल मुँहपर दिन भर बन्धी रखने का जिक्र तक भी नहीं है। इन लौंकागच्छीय विद्वान् यतीजी के प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि विक्रम को सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक तो जैनों में कि ी भी समुदाय वाले डोराडाल दिन भर मुँहपर मुँहपत्ती नहीं बान्धते थे अर्थात् क्रिया रते समय हाथ मे मुँहपत्ती रखते थे और बोलते समय मुँह आगे मुँहपत्ती रख यत्ना पूर्वक निर्वद्य भाषा बोलते थे।

लौंकागच्छीय श्री पूज्यों-यत्तियों का स्पष्ट कहना है कि विक्रम की अ ारवीं शताब्दी में यति लवजी को आयोग्य समझ कर श्री पूज्य बजरंगजी ने उसको गच्छ बहार कर दिया था बस उस लवजी ने मुँहपर मुँहपत्ती बांध कर अपना ढूंढिया नामक नया मत निकाला और इनका कुलिंग दे कर इतर लोग भी कहने गे कि—

"धोवा धावा का पाणी पीवे, वात वणावे काली।
मुंहपत्ती बांधियो धर्म हुवे तो, बान्धो ढूंढियो राली"।

आगे चल कर वि० सं १८६५ में मुँहपर मुंहपत्ती बान्धने वाला ामी जेठमलजी हुए। आपने समकित ार नामक ग्रंथ में लौंकाशाह के विषय में प्राचीन चौपाइयों तथा कुछ आपकी ओर से भी लि । है पर लौंकाशाह मुँहपत्ती मुँहपर बान्धने के विषय में जिक्र तक भी नहीं किया। आपके समय तो यही धारणा थी कि शा ों में तो मुँहपत्ती बान्धनी नहीं कही है पर हमेशां उपयोग नहीं रहे और खुले मुँह बोला जाय इसलिये स्वामि-

लवजी ने डोराडाल मुँहपर मुँहपत्ती बान्धली और हम उनकी परम्परा में होने से मुँहपत्ती मुँहपर बान्धते हैं।

इस बीसवीं शताब्दी के ले क श्रीमान् वाड़ीलाल मोतीलाल-शाह ने अपनी ऐतिहासिक नोंध में लौंकाशाह का लम्बा चौड़ा अतिशय युक्ति पूर्ण जीवन लिखा है पर आपने लौंकाशाह को मुँहपर दिन भर मुँहपत्ती बान्धने वाला नहीं बतलाया है और स्वामि मणिलालजी ने जैन धर्मनो प्राचीन संक्षिप्त इतिहास नाम की किताब में भी लौंकाशाह ने मुँहपर मुँहपत्ती बान्धी हो ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं किया है इतना ही क्यों आपने तो लौंकाशाह को तपागच्छीय यति सुमति विजय के पास यति दीक्षा लेना भी लि । है इससे भी निश्चित होता है कि लौंकाशाह मुहपत्ती थ में ही रखता था।

अब आगे चल कर नये विद्वान् श्रीमान् तबालजी इ विषय में क्या फरमाते हैं। आपने हाल ही में "धर्मप्राण लौंका-शाह" नाम की लम्बी चौड़ी ले माला 'जैनप्रकाश' नामक पत्र में प्रकाशित करवाई। उस ले माला में कहीं पर भी लौंकाशाह मुँह पर मुँहपत्ती बान्धने का थोड़ा भी उल्ले नहीं किया इतना ही नहीं बल्कि आपने तो बड़ा ही जोर देकर सिद्ध किया है कि लौंकाशाह ने दीक्षा नहीं ली पर गृहस्थावस्था में ही देहान्त आ। मुँहपती में डोरा डाल कर दिन भर ँह पर बान्धने के बारे में आपने निडर होकर फरमाया कि:—

"मुख बन्धन श्री लाकाशाह ना समय थी सरू थयेल नथी परन्तु त्यार बाद थयेला स्वामिलवजी ना समय थी सरू

थयेल छे अने ओ जरूरीपणं नथी"

जैन ज्योति ० १८-७-२६ पृष्ट १७२ राजपाल मगनलाल बोहरानो लेख।"

इत्यादि लौंकागच्छीय और स्थानकमार्गी विद्वानों का एक ही मत है कि डोरा डाल दिन भर मुँह पर मुँहपत्ती बान्धने की प्रवृति लौंकाशाह से नहीं पर मि लवजी (वि० सं० १७०८) से प्रचलित हुई है और लौंकागच्छीय श्रीपूज्य यति वर्ग और आप के उपासक गृहस्थ ँह बान्धने का सख्त विरोध करते हैं इतना होने पर भी सम में नहीं ाता है कि स्वामी अमोलर्षिजी ने ों घसीठ मारा है कि लौंकाशाह ने मुँह पर ँहपत्तो बान्ध कर दी ा ली थी ? लौंकाशाह की दीक्षा के विषय में ागे चल र हम प्रकरण अठारवाँ में विस्तृत प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर बतलावेंगे कि लौंकाशाह की यति दीक्षा बतलाना बिलकुल मिथ्या कल्पना ही है। जब लौंकाशाह की दी ा ही कल्पित है तो ँह बान्धना तो स्वतः मिथ्या ठहरता है। यदि ग्रामण्य लोगों को भ्रम में ा अपनी जाल में फंसाने के लिये ही ऋषीजी ने यह प्रपंच जाल बना रखी हो तो यह बड़ी भारी भूल है। कारण ब ान भानूं की किरणों का प्र श गामडों की भद्रिक जनता पर भी पड़ने लग गया है दिन भर ँह न्धने से वे लोग नफरत भी करने लग गये हैं यही कारण है कि इस ँह बान्धी समाज से सैकड़ों विद्वान् साधु मिथ्या डोरा का त्याग कर सन जैन धर्म का शरण लिया है वे भी ाधारण नहीं पर स्वामी बुढेरायजी मूलचन्दजी, वृद्धिचंदजी, आर रामजी, विशनचंदजी, र ंदजी, गोर ल ही में कानजी मी, त्रिलोकचंदजी, ज्ञावचन्दजी वगैरह विद्वान् स्थानक

वासी ाधु ों । उदाहरण ापके सामने विद्यमान हैं कि इन महानुभावों ने धोले दिन ोर ाम मैदान में मुँह बान्धना मिथ्या सिद्ध कर डोरा ो स्वयं तोड़ा और हजारों को तोड़ा के द्ध र्ग में लाये इ किताव । ले क भी इसी पंक्तिका है।

लौंकागच्छीय और स्थानकवासी विद्वानों का मत हम ऊपर लिख आये हैं कि डोरा डाल मुँहपर मुँह ी स्वामी लवजी ने सबसे पहले बान्धी थी। आगे हमारे स्वामी अमोल षिंजी की कल्पना लौंकाशाह तक की है पर स्था० पूज्य हुकमीचन्दजी की समुदाय वाले जो कि वे लोग कहते थे कि डोराडाल मुँहपत्ती मुँहपर दिन रात बान्धना सूत्रों में तो नहीं लि । है पर हमारा उपभोग नहीं रहता है इसीलिये डोराडाल मुँहपत्ती मुँहपर न्धी है। आज उनके ही अनुयायी भगवान् ऋषभदेव और तीर्थंकर महावीर के मुँहपर ोराडाल मुँहपती बान्धने के कल्पित चित्र बना के अपनी पु ों में मुद्रित रवाने में भी नहीं चूके हैं। वे भी इतना भद्दा चित्र की तीर्थंकरों का शरीर एक स्कन्धा पर के सिवाय नग्न बनाके मुँहपर डोरावाली मुँहपती बन्धवादी है शायद आपका इरादा ऐसा होगा कि श्वेताम्बरो के अलावा दिगम्बरों को भी मुँह बन्धवादें कारण तीर्थंकर डोराडाल ँहपती ँहपर बान्धते थे तो श्वे० और दिगम्बर सब को मुँहपर डोराडाल दिन रात ँहपत्ती बान्धनी चाहिये ? पर दुः इ त का है कि श्वे० दि० तो । पर इस कुकृत्य ोर मिथ्या प्र पना का स्थानक सी स ज ने भी जोरों के साथ विरोध किया है। ोंकि व मात्र नहीं र ले दिगम्बर ाथ ँहपत्ती र ने ले श्वेता र, तथा लौं च्छीय, ोर ँहपर ँहपत्ती

बान्धने वाले स्थानकमार्गी एवं तेरहपन्थी अर्थात् अखिल जैन समाज की अटल मान्यता है कि भगवान् ऋषभदेव से तीर्थङ्कर महावीर सर्व ावस्था में वस्त्र रहित ही रहते थे मुँहपत्ती और डोरा तो क्या पर सूत का एक तार तक भी नहीं रखते थे फिर म में नहीं आता है कि ऐसे मनचले, निरंकुश स्वच्छन्दी और जैन शा ों के अनभिज्ञ लोग अपनी अज्ञानता का कलंक तीर्थंकर जैसे वीतरागदेवों पर लगाने को क्यों उतारू हुए हैं ? क्या कोई व्यक्ति यह बतलाने का साहस कर सकता है कि किसी शास्त्रीय या ऐतिहासिक प्रमाणो मे स्वामि लवजी के पूर्व किसी जैन तीर्थंकर व श्रमण तथा श्रावक डोराडाल मुँह पर दिनभर मुँहपती बान्धी थी ? हाँ, सोमल नामक ब्राह्मण ने काष्ट की मुँह पती से ँह बांधा पर उसको शा कारों ने मिथ्यात्वी कहा है और देवता के सम ाने पर वह समझ भी गया और उस काष्ठ मुँहपत्ती का त्याग भी कर दिया दूसरा जमाली क्षत्रीकुमार के दी । समय नाई (हजाम) ने आठ पुड वाला कपड़ा से मुँह बांध कर जमाली की हजा बनाई थी पर उसके पास नाई की रचानी थी, इसके सिवाय किसी में भी व परमत में मुँहपर मुँहपती बांधने का अधिकार व रिवाज नहीं था।

जब इनके खिलाफ धर्म ि । करते समय हाथ में मुँहपत्ती रखने का और बोलते समय मुँह के आगे मुँहपत्ती रखने के सैकड़ों प्रमाण मिल सकते हैं। जैसे ओसियों कुंभारियाजी आबू राणकपुर और कापरडाजी के मन्दिरों में जैनाचार्यों की मूर्त्तियों जो व्याख्यान देते ए की बनी हुई हैं। जिन्होके सन्मुख स्थापन जी और हाथ में मुँह वरि का है। इसी भाँति उन आचार्यों के

उपासक साधु सध्वियों श्रावक और श्राविकाओं की मूर्त्तियों जो हाथ में मुख व िका की बनी हुई है इन मूर्त्तियों का स्थापित समय वीर निर्वाण ७० वर्षों से विक्रम की सोलहवीं एवं सत्र वीं शताब्दी का है। इसी प्रकार प्राचीन ल्पसूत्रादि ी हस्तलिखित प्रतियों में भी जैनाचार्यों के हाथ में मुखवि का ते चित्र ंख्यावन्ध मिल क्ते हैं। पूर्वोक्त प्रमाण इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि मि वजी के पूर्व जैनाचार्य-साधु और श्राव मुँ पत्ती हाथ में र ते थे और बोलते समय ँह आगे रख यत्ना पूर्व निर्वद्य भाषा बोलते थे। पर ँहपर डोरा ल मुँ पत्ती ंधने का एक भी चीन प्रमाण नहीं मिलता है। फिर तीर्थंकरों के और प्राचीन मय के महान् मुनिवरों के मुँहपर डोराडाल मुँहपत्ती वाले कल्पित चित्र बना के दुनियाँ में अपनी अज्ञता परिचय करवा के ंसी के पात्र बनने के सिवाय और क्या र्थ होसकता है ? यदि उन महानुभावों से पूछा जाय कि आपने भगवान् ऋषभदेव बाहुबली ब्राह्मी, न्दरी, पांचपांडव, प्रश्नचन्द्रराजर्षि, आदि के मुँहपर डोरावाली मुँहपत्ती के चित्र करवाये यह किस आधार से करवाये हैं ? यदि कोई प्राचीन ाधार नहीं तो इन कल्पित कलेवर की सभ्य समाज में कितनी ीमत हो सकती है ? कुछ भी नहीं।

अन्त में इतना कहकर इस प्र रण को समाप्त कर दूंगा कि मुँहपत्ती चर्चा के विषय में मैंने एक अलग पुस्तक लिखी है जिसमें शास्त्र और पर धर्म के शास्त्रों के लावा ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा युि पुरःसर मुँहपत्ती हाथ में र ना प्रमाणित कर ब ाया है इसलिये यहाँ विशेष वि ार नहीं किया है यहाँ तो

प्रकरण-सोलहवां

लैंकाशाह की विद्वत्ता।

कि ी भी व्यक्ति की विद्वता, उसके द के निर्माण किए हुए ाहित्य पर निर्भर है, या उसके सम-कालीन किसी अन्य विद्वान् ने पने ग्रंथ में इसका प्रतिपादन किया हो कि हमारे मय में अमुक व्यक्ति विद्वान् था, तो हम उसे विद्वान् मान कते हैं। परन्तु जो व्यक्ति आज से चार पांच शताब्दी पूर्व हो गुजरा है, और के विषय में हि के अन्दर उ ी विद्वत्ता का वर्णन तो दूर किनार रहा, ा नामोल्ले त भी न मिले और उसे ि र भ्य माज ामान्य व्यक्ति ी नहीं किन्तु ए दम विद्वान् मानले यह है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में मग्र जैन मा , विशेष र गुर्जर प्रान्तीय जैन माज में विद्वान् ो चुके हैं, और के ए ए सैकड़ों ग्रंथ आज वि हैं। प्रमाण के लि ए देखो गुर्जर व्य ग्रह भाग १-२ जैन ग्रन्थावली, जैन ाहित्य क्षिप्त इतिहास ादि। परन्‍ १६ वीं शताब्दी के ए बड़े भारी, धर्म धार , क्रान्तिकारक, वि न् की विद्वत्ता की प्राचीन साहित्य में गंध त न मिले यह वि आश्चर्य की बात है।

ा त य है वि वि० की ीसवीं दी त तो जैन ौर लौका तथा स्थान र्गी सब को ए यही

धारणा थी कि लौंकाशाह एक साधारण गृहस्थ और लिखाई का काम कर अपनी आजीविका चलाता था। इतना ही नहीं पर ास स्था० साधु जेठमलजी ने भी वि० सं० १८६५ में समकित सार नामक ग्रन्थ में (जो खास मूर्त्ति के खंडन में बनाया है) ७ पर साफ तोर से लिखा है कि लौंकाशाह पहिले नाणावटी धंधा करता था, वाद में पुस्त लिखने का काम करने लगा, फिर समझ में नहीं आता है कि इन जेठमलजी के अनुयायी पने आचार्य के शब्दों को मिथ्या ठहराने को क्यों उतारू ए हैं ? क्या ाज के लिखे पढ़े नये विद्वान् स्थानकमार्गी अपने धर्मस्थाप गुरु लौंकाशाह को सामन्य व्यक्ति नने में शरमाते हैं। क्योंकि इसीसे तो वाडी० मोतीशाह ने पनी ऐतिहासि नोंध में, ाधु मणिलालजी ने अपनी प्रभुवीर पटावली में, धु संतबालजी ने अपनी "धर्म प्राण लौंकाशाह" नाम ले माला में, घसीट मारा है कि लौंकाशाह बड़ा भारी विद्वान् था, यही नहीं किन्तु संतबालजी ने तो यहां तक लिख दिया है, कि लौंकाशाह उस समय भारत की सब भाषाओं का जानकार था, अब संस्कृत और प्राकृत भाषा का तो वह सर्व श्रेष्ठ विद्वान् हो इसमें कहना ही शेष क्या है। पर वास्तव में लौंकाशाह को साधारण गुर्जर भाषा का भी ान था या नहीं, इस बात की पुष्टि मे भी स्वामीजी के स कोई प्रमाण नहीं है। क्योंकि लौंकाशाह की खुद की वनाई हुई एकाध ढाल या चौपाई भी ाज तक नहीं मि ी है। फिर ये लोग किस आधार पर यह ह ई इमारत ड़ी करते हैं। इस बीसवीं सदी में ऐसे प्रमाण शून्य ले ों ी विद्वद् समाज । कीमत करता है ? या तो यह

प ती पुरुषों ो जर । है— थवा ये जान बू के दृष्टि राग के कारण भूलकर धो । । रहे हैं।

लौंकाशा ने जि य पना नया मत नि । होगा डन मए ऽऽत्म चर्चा र ई ोगी, ोंकि प्रमाण प लौंकाशा के प्रतिपक्षियों द्वारा का लि । । ाहित्य ाज हमें उपलब्ध हो र है। तब लौंकाशा विद्वान् होने पर भी चुप चाप कै बैठ गया ? यह ब ी है। यदि कोई यह कहे वि लौंकाशा ंडन की प्रवृत्ति को पसन्द नहीं करता था, इ से प्रत्युत्तर में उसने नहीं लि ा। सोच लो थोड़ी देर के लिए कि उसने इसी छ नहीं लि ा, परन्‍ इ खण्डन के लावा भी हित्य क्षेत्र विस्तृत पड़ा था, त्वि और दा निक विषय तो लौंकाशाह अरुचिकर नहीं प्रतीत ए होंगे, इन पर ही कुछ लि था। परन्तु उसने तो इन भी छ नहीं ि ा। यही ों लौं शाह ने तो । सिद्धान्त बताने को भी दो ागज ा हीं वि ए, ौर इसी ज उनके अनुयायी पग २ पर ठोकरें हैं। लौंका ाह या लवजी थोड़े भी लिखे पढ़े होते तो उनके अनुयायी इतने ज्ञानी नहीं रहते कि वे पनी धर्म क्रि के पाठ को भी द्ध ार न कर के। तथा ४५० र्षों में ए भी ऐसा विद्वान् न हो वि वह ंस्कृत या कृत में ए ध ग्रंथ रच र हि सेवा का सौभाग्य प्त कर । ए विद्वान् का मत है वि "इस ढूँढिया पन्थ में ाज त भी कोई ऐसा विद्वान् नहीं ा, जिसने न्याय, काव्य, या दि के वि य कोई ग्रंथ रचा हो।"

लौंकाशाह की विद्यमानता में ही कडुआशाह हुआ, वह चाहे धुरन्धर विद्वान् हो या न हो, पर अपने मत के नियम और सिद्धांत तो वह भी बना गया, जो आज उपलब्ध हैं। फिर लौंकाशाह ने ही ऐसी चुपकी क्यों साधी थी ? खैर ! जाने दीजिए। लौंकाशाह के जीवन वृत्त का मुख्याऽऽधार वाड़ी मोती शाह कृत ऐतिहासिक नोंध है, और उसमें लिखा है कि लौंकाशाह के विषय में हम कुछ नहीं जानते हैं, तथा यही बात स्वामी मणिलालजी भी दुहराते हैं, फिर न मालूम, संतबालजी किस आधार से यह लिखते हैं कि लौंकाशाह बड़ा भारी विद्वान् था। क्या संतबालजी अपने दूसरे महाव्रत को इस प्रकार बचा सकेंगे ?

जमाना सत्यवाद एवं प्रमाणवाद का है। लेख लिखने के पूर्व लेख को सत्यता के लिए प्रमाण ढूंढने की जरूरत है। केवल कागजी घोड़े दौड़ाने से कोई सफलता नहीं मिल सकती। हम तो आज भी चाहते हैं कि हमारे स्थानकमार्गी भाई इस विषय के प्रमाण जनता के सामने रख अपने लेख की सत्यता सिद्ध करें।

लौंकाशाह केवल स्थानकमार्गियो की ही सम्पत्ति नहीं पर वे जैनाचार्य द्वारा बनाया हुआ एक जैन श्रावक थे। अतः लौंकाशाह विद्वान् हो तो जैन समाज को अप्रसन्नता नहीं किन्तु गौरव है। परन्तु प्रमाण शून्य कल्पित लेखो द्वारा हम लौंकाशाह की हँसी उड़ाना नहीं चाहते हैं।

श्रीमान् लौंकाशाह के समकालीन तथा सम सिद्धान्ती महात्मा कबीर, नानक शाह, रामचरण, कडुआशाह, तारण ामी आदि बहुत हुए, इन साहित्य आज विद्यमान हैं, इतना

ही नहीं पर विदुषी मीरां ई के भी सैकड़ों पद गाये ाते हैं, फिर एक लौंकाशाह ी विद्वत्ता । ही परिचय राने ला थोड़ा सा भी साहित्य न मिले, इ हालत में यह हना ोई नुचित नहीं कि लौं । ाह को साधारण गुर्जर भापा । भी पूरा ज्ञान नहीं था। यदि लौंकाशाह थोड़ा भी बुद्धिमान् होता तो अनार्य संस्कृति का अनुकरण कर जैन धर्म के ग भूत सामायिकादि क्रियाओं का विरोध नहीं रता।

यदि अब कोई यह सवाल करे कि जब लौंकाशाह जरा भी विद्वान् नहीं था तो तब उनका मत कैसे चल गया, और लाखों मनुष्य उनके अनुयायी कैसे बन गए ?। उत्तर में यह लिखना है कि मत चल पड़ना कोई विद्वत्ता की बात नहीं, आप "भारतीय मतोत्पत्ति का इतिहास", उठा कर देखिये ! आपको ऐसे २ अनेक मत मिलेंगे जो नितान्त अनपढ़ों के तथा मू ाऽ- अगण्य शूद्रों तक के निकले हुए हैं। और जिन्हें ला ों मनु मानते हैं। आप दूर क्यों जाते है ? आपके ही अंदर से देरि ये। वि० सं० १८१५ में स्वामी भीखमजी ने तेरह पन्थ नामक मत निकाला। आप भीखमजी को कैसे विद्वान् समझते हैं। जैसे भीषमजी हैं वैसे ही लौंकाशाह होंगे। फिर मत चलाने में विद्वत्ता को कारण क्यों मानते हो। छः कोटि, आठ कोटि, जीव पंथी, अजीव पंथी लोगों का भी यही हाल है। आगे चल कर हम लौंकाशाह के अनुयायियों के बारे में भी लिखेंगे कि लौंकाशाह के लाखों तो क्या पर हजारों भी अनुयायी उनकी मौजूदगी में नहीं थे। बाद में जब लौंकागच्छके यतियों मूर्त्ति पूजा को मान लिया उनकी संख्या बढी। थवा यह भी

मान लो कि जब किसी गाँव में किसी भी गच्छ के आचार्यों का परि बहुत अर्से त न आ हो और वहाँ की जैन जनता यदि अज्ञा श इनके परिभ्रमण को देख इनके चंगुल में फंस गई हो तो इ से क्या मत की सत्यता सिद्ध होती है ? । कदापि नहीं। यदि ऐसा हो, जब तो ए समय संसार का बड़ा भाग वाममार्ग का उपासक था तो क्या आप इसे भी सत्य समझेंगे ? यदि नहीं तो फिर सत्य ी सिद्धि में जन संख्या बताना केवल भ्रम है।

यदि आप मत चलाने के कारण ही यह कल्पना करते हो तो मिथ्या है। कारण मत तो साधारण ादमी भी चला सकता है। फिर बि रे लौंकाशाह की मृत आत्मा पर यह मिथ्या आक्षेप ों कर लाद रहे हो। एक जगह तो संतवालजी के मुँह से लौंका- ाह खुद फरमाते हैं कि:—अरे "हूँ उपदेशक नथी पण एक धारण हीयो छुं. अरे ! मारे जेवा गरीब ाणिया नी शक्ति प ?" लौंकाशाह के इन व ों पर जरा ध्यान लगा कर िचार करें कि लौंकाशाह क्या ह रहा है ? और आप क्या लि रहे हैं ? इन दोनों उदाहरणों ें सत्यांश किसमें है ? अस्तु इसे ज दा नहीं बढ़ाकर अब हम लौं ा ाह ने अपने जीवन में किन्हीं को धर्मोपदेश दिया वा नहीं, इसे त्रहवें प्रकरण में लि ेंगे, इसका खुलासा पाठक वहाँ देखें।

प्रकरण—सत्रहवां

क्या लौं ा हने किसी ो धर्मोपदे दि ा ा?

लौंकाशाह ी विद्वत्ता ा परिचय तो हम पिछले प्रकरण में दे आए हैं। य बताते हैं वि लौं ाशा ने भी भी ि सी को उपदेश दि था वा नहीं। इसके विषय में खुलासा यह है कि लौंकाशाह के मय में जैन आगामों का न तो गुर्जरगिरा में नुवाद आ था ौर न पर भाषा टीका हुई थी। मूल जैनाऽऽगम र्धमागधी में थे और उनकी टीका देववाणी (संस्कृत) में थी। लौंका ह को इन दोनों भाषाओं का तनि भी ान नहीं था। तथापि कई ए

मतदुराग्रह के वश हो यह यः कहा करते हैं कि लौंकाशाह ने लाखों मनुष्यों को उपदे किया था। ऐ ा लि ने लों में प्रथम नंबर ० मो० शाह का है। ाप पनी ऐतिहासि नोंध के पृ ६५ पर लि ते हैं कि लौंकाशाह ी बुलन्द आवाज को भारत ए छोर दूसरे छोर तक पहुँचा दिया था। पृ ६८ पर ाप लिखते हैं कि एकदा पाटण निवासी ल मसी लौंकाशाह के पास आया, लौंकाशाह ने को ऐ मार्मिक उपदेश दिया कि वह तत्क्षण लौंकाशाह का प ा अ- यायी ा। इ आगे ाप ी नोंध के ६९ लि ते हैं कि सूरत, टण, अर वाड़ा इत्यादि चार गाँवों के संघ हमद द में आए। लोग लौंकाशाह उपदेश

सुनने को ते थे। यह त यतियों को मालूम हुई और यति गोगों ंघप यों को कहा कि संघ चें से तंग होगया है। ` ` को ना करना चाहिए, इ पर संघपतियोंने कहा वि भी वर्षा ब त ई है, : जीवोत्पत्ति भी प्रचुर परिमाण हुई है, तदर्थ यहाँ से संघ जा नहीं सकते, इत्यादि। तब यतियों ने हा कि ऐसा धर्म म को किसने बताया, धर्म के कार्य में कुछ सा नहीं गिनी जाती है, इत्यादि। आगे आप लिखते हैं कि—

लौं ाह ने अहमदाबाद में जो उपदे किया था, उसके गेत लौं ह कई सूत्रों को भी बताया था कि श्री भगवतीसूत्र, ाचारांगसूत्र प्रश्नव्याकरणादि किन्हीं सूत्रों में मूर्त्ति पूजा का उल्ले नहीं है। ंद कामदेव आदि बहुत से ाव ए पर किसी भी मूर्ति पूजा नहीं की। इस प्रकार ० मो० शाह ने जो कल्पित उद्धरण अपनी नोंध में रक्खा है उसी का अनु र स्वामी सन्तबालजी ने ी धर्मप्राण लौंका-शा म ले माला में कुछ विशेषों के थ किया है। परन्तु इन ों में सि : पना के और विशेष तथ्य न होने `, किसी ने इन पर विशेष लक्ष्य ही नहीं दिया, तथाच अन्त तो गत मारे स्था० धु मणिलालजी "प्रभुवीर पटावली" लि पूर्वो दोनों ले कों ` ` को मिथ्या ठहरा दिया, वह भी केवल इनकी तरह कल । त्र से ही नहीं अपितु वि० सं० १६३६ के लिखे लौं शाह के जीवन के धार पर, उससे प जाता है कि "लौंकाशाह ने न तो गृहर ा में किसी के पास वि ाऽभ्यास कि और न शास्त्रों पाठन तथा उपदेश र्म ही वि । उनके स न तो लखमसी आया

और लौंकाशा ने उ उपदेश दिया। पाटण सूरत आदि न तो अहमदाबाद गए और न उपदेशार्थ लौंकाशाह सेवा में सम्मिलित हुए। जब ३५० वर्ष पहले के लिखित इति- में जिन बातों गन्ध तक नहीं फिर में नहीं आ कि इन विख्यात विद्वानों (!) ने ऐसा षड्यन्त्र रच बिचारे भोले भाले स्थानकमार्गियों को यह धो । क्यों दिया है ?

प यह भी दे लीजिये कि यं लौंकाशाह के अनुयायी इ विषय में । कहते हैं:—उदाहर ार्थ,

यति भानुचन्द्र लौंकागच्छीय वि० सं० १५७८ ।

"हाटउ वइठो दे उपदेश, सांभली यति गणू करई कलेस।
संघनो लोक पण पाखियो थयो, सा लुं ो तब लींबडीई गयो॥
लखमसी हिव तिहां छइ कारभारी, सा लुंकानो थयो सहचारी।
अमारा राज्यि में उपदेश करो, दया धरम छे सहु थी खरो॥

"दया चौपाई"

यह ० १५७८ र्थात् लौंकाशाह के बाद ४० वर्ष लेख जो ख लौं ाशा के ऽनुयायी । है, इसमें न तो अहमदाबाद पाटण के किसी मसी । लि । है, और न सूरत ादि के चारों घ ए हैं। इ लत में ० मो० । या संतबालजी कहने पर कैसे वि । कि लौं । किन्हीं घपति को उपदे दिया ?। रा सोचिये।

(१) वि० सं० १५७८ की चौपाई में इ बात की गंध तक भी नहीं है कि लौंका के पास चार घ या लखमसी । था ।

(२) वि० सं०१६३६ के लौंका ह के जी न वृत्त में इस बात का जि त भी नहीं है ।

(३) वि० सं १८६५ के स्था० साधु जेठमलजी ने समकितसार में लौंकाशाह की िवन बन्धी चौपाइयें लिखी हैं । में इन ब ों का इ रा त भी नहीं ि । है ।

(४) वि० ० १९७७ में स्था० ।धु मोलखर्षिजी ने । ों रा मीमां पुस्तक में इस त । उल्लेख तक भी नहीं किया ।

(५) वि० सं० १९९२ स्था० साधु मणिलालजी ने ी प्रभुवीर ।वली में भी कहीं पर ऐसा नहीं लिखा है कि लौंकाशाह ने गृहस्थावस्था में किसी को उपदेश दिया था। स्वामीजी ने लौंकाशाह को यति दीक्षा दिल कर ल मसी और संघों की घटना यति लौंका ह के ।थ जोड़ दी क्योंकि ऐसी महत्व की बात को स्वामीजी क्यों जाने दे पर जब लौंकाशाह की दीक्षा की मूल बात ही कल्पनी सिद्ध हो चुकी है दी । लेकर उपदेश करना तो तः कल्पनीक रि होता है ।

अब सोच हिए कि वि म की सो हवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक के ग्रन्थों में जिन तों का ज़ि क्र भी नहीं है उन्हीं बातों को ए ऽध व्यक्ति पक्षपात म हो, बिलकुल निरा-

धार लिखदे, य की ि ी जायगी, या के रा की हुई ग त आत्मा की ौँसी कही जायगी ?

ास बात तो यह है ि ौंका । न तो विद्वान् था ौर उसने किन्हीं को उपदेश दिया था, तथा न ह ावाद ार ंघ ही ए थे। र मी णिल जी प्रभुवीर पटावली ि ते हैं ि लौं ाह ने यतिदीक्षा लेकर अहमदा द चतुर्मास किया। वहाँ ४ संघ ाए। ब सोचना यह कि प्रथम तो चतुर्मास में जैनों ा ंघ निकल ही नहीं। दूसरा हमदाबाद कोई तीर्थ स्थान नहीं ि व ाँ चौमासा में चार ंघ इकट्ठे हों। तीसरा पाटण सुरत ादि सिद्धाचल गिरनार दि जाने मार्ग में हमदाबाद आ ी नहीं है। फिर चौमा ा में चारों संघों का हमदावाद में सम्मिलित होना कैसे ि हो ता है ?

वाड़ी० मोती० शाह तथा संतबालजी को तो येन केन प्रकारेण जैन यति ों की निंदा ी है, इ ीलिए ट यह कल्पना कर डाली ि यतियों ने कहा-धर्म कार्य में हिंसा नहीं गिनी जाती है, पर यह हाँ तक सत्य है कारण ोलहवीं शताब्दी तो यति लोग बड़े ही विद्वान् ि ापात्र एवं धर्मि थे। वे ऐसे निर्दय वचन ह हो नहीं कते हैं। यह तो चल चि स्थानकमार्गियों स्थिर कर के लिए जैनियों की त्र निंदा की गई है। यदि उपर्यु बात सत्य है तो वे प्रब प्रमा पेश रें। अन्यथा इन झूंठी गप्पों में कोई स तत्व नहीं है, य बात तो हमारे स्थ मार्गी विद्वान् यं सोच सकते ि हम इस विषय में जहाँ त गहरे पहुँच स वहाँ तक जाकर तो

प्रकरण—अट्ठारहवाँ

लौंकाशाह ने यति दीक्षा ली थी ?

लौंकाशाह के जीवन संबंधी यत्किञ्चित् वर्णन जिन लेखकों ने लिखा है उन सब के लेखों पर मात्र यही ध्वनि निकलती है कि लौंकाशाह गृहस्थ था और गृहस्थदशा में ही उसने अपनी इह लीला समाप्त की। आज ० माज का विशेष विश्वास ० मो० शाह की ऐतिहासिक नोंधों पर है। इसलिए पहिले उसी का प्रमाण देना उचित है कि उन्होंने इस विषय में क्या लिखा है। वाड़ी० मो० शाह लौंकाशाह के मुख से कहलाते हैं कि :—

"मैं इस समय बिलकुल बूढा और अपंग हूँ, ऐसे शरीर से साधु की कठिन क्रियाओं का साधन होना अशक्य है। मेरे जैसा मनुष्य दीक्षा लेकर जितना उपकार कर सके उससे ज्यादा उपकार संसार में रहकर कर सकता है।"

ऐतिहा० नोंध पृ० ७४—७।

× × ×

श्रीमान् साधु संतबालजी स्था०

"लौंकाशाह खुद गृहस्थ पणां मां रह्या अने ४५ मनुष्यों ने दीक्षा लेवानी अनुमति आपी × × × इसके आगे पर फुटनोट में लिखते हैं कि :—

"कई कई स्थले अेवो पण उल्लेख मले छे के लौंका-

शाह पोते पण दीक्षित थया हता. अने तेथीज तेमनो अनु-यायी वर्ग लौंकामत तरीके पाछलथी ओलखायो ? परन्तु आ वात बहु प्रतिष्ठा पात्र जणाती नथी। आ व वते लौंकाशाहनी वय खूबज वृद्ध थई गई हती। अने १ ४५ दीक्षा थया पछी टुंकज वखत मां तेमनो देहान्त थयो छे। अेटले तेओनी त्याग दशा उत्कृष्ट होवा छतां, गृहस्थ छतां पण सन्यास अेवा र ा, दीक्षा लई सक्या नथी ×××"।

धर्म० प्रा० लौं० ले० जैन प्र० ता० १८-८-३५ पृष्ट ४७५

× × ×

स्था० साधु विनयर्षिजी

"श्रीमान् धर्मप्राण लौंकाशाहनी उमर अे समये मोटी हती, तेओ गृहस्थ वासमां साधु जीवन गालता हता×× ।

"बंबई ाचार ४-४-३६ के लेख से।"

× × ×

इनके लावा ाचार्य विज नन्द सूरि, दि० रत्नानन्दी, सुमतिकीर्ति, तारण स्वामी, लौंकायति, भानुचन्दजी स्था० साधु जेठमलजी आदि ले कों का भी यहीमत है कि श्रीमान् लौंकाशाह ने दीक्षा नहीं ली, पर वे पनी तमाम जिन्दगी भर गृहस्था-ऽवस्था में ही रहे। पं० नि लावण्य मय और उपा० कमल संयम तथा नि वीकाका और षिकेशवजी का भी यही मत है कि लौं ाशाह स्थ ही रहा था।

जब वि० सं० १५४३ से ाज पर्यन्त के लेखकों का एक

` है कि लौंकाशाह गृहस्थ था, और उसके च ाये ए मत को ाी ाज लौंकामत कहते हैं तथा स्थानकमार्गी भी पना लौं शाह ा चलाया मानते हैं। अब जब कभी स्थान मार्गी कहीं द विवाद में खड़े होते हैं, तब प्रतिपक्षियों ाी ओर से हमेशा य ाी कहा जाता है कि तुम्हारा मत तो गृहस्थ ` चलाया हुआ है, तुम्हारे गुरु गृहस्थ लौंका ाह हैं, इत्यादि। परन्तु य बात आजकल के नवशिक्षित दीक्षित स्थानकमार्गी धुओं को कने लगी , और वे इसका बचाव करने के लिए ने युक्तियें गा ाखिर एक कल्पना र पाये हैं— जैसे स्वामी मणिलालजी ने पनी प्रभुवीर ा ाी नामक स्तक के १७० पृष्ट पर लि ा है कि "लौंकाशाह केले टण यति सुमति विजयजी के पास गए और से दीक्षा ग्रहण कर पना नाम लक्ष्मी विजय रक ा। यह दीक्षा भी चा मास में र्थात् वि० ं० १५०९ श्रावण सुदि ११ को ली थी।"

परन्तु यह बात ह रे स्था० धु मोल षिजी को नहीं रुची, ोंकि इतने बड़े समुदाय ा स्वामी केला दीक्षा ` यह ऋषिजी को कैसे च्छी लगे। इसी गरज से ापने पनी शास्त्रोद्धार मीमांसा ृ ५९ में लि दिया कि लौंका ाह १५२ मनुष्यों के साथ दीक्षा ली थी।

कि न्तु दीक्षा के उमेदवार जो ४५ मनुष्य थे उनके लिये ा आ ? कारण ० मो० ा तथा स्वामी ालजी तो लौं ाशाह ो दीक्षित नहीं पर गृ स्थ मानते हैं और ४५ म ों को लौं ह की म्मति ` यति जी (ाचार्य ज्ञानसागर सूरि) के पास दी।

दिला ति खते हैं परन्तु स्वामि मणिलालजी ने लौंकाशाह
को टण में यति दीक्षा दिलादी फिर भी ४५ दीक्षाको वे क्यों
जाने दें। पने प्रभुवीर पटावली पुस्तक के पृष्ठ १७५ पर लिख
दिया कि लौंकाशाह यति दीक्षा लेने के वाद उन ४५ मनुष्यों ने
लौं शाह के पास दीक्षा लेली परन्तु अमोलखऋषिजी ने तो ४५
क्या पर १५२ मनुष्यों के साथ लौंकाशाह दीक्षा ली लिखा दिया,
बाद लौंकाशाह का काल होने पर फिर ऋषिजी को ४५ मनुष्यों
की स्मृति हो आई तो वे भी ४५ दीक्षाको क्यों कब जाने दें
लौंकाशाह का काल हो गया तो क्या हु । आपने अपनी शास्त्रो-
द्धार मीमांसा नामक पुस्तक के पृष्ठ ६६ ऊपर लिख दिया कि वे
४५ वैरागी पुरुष भाणाजी के पास दीक्षित हुए। क्योंकि इस
अपरि समाज में ाण की तो जरूरत ही नहीं है जिसके जी में
आया वह लि मारा। परस्पर विरुद्धता की भी इनको परवाह
नहीं है क्योंकि उन ४५ मनुष्यों के लिये तवालजी तो ज्ञानजी
यतिजी के पास दीक्षा ली लि ते हैं, मणिलालजी यति लौंकाशाह
के पास और अमोलखऋषिजी लौंकाशाह का देहान्त के बाद
भाणाजी के पास दीक्षा लेना लिखते हैं इन तीनों के तीन मत हैं
इसमें झूठा कौन ? यों तो तीनों झूठे मिथ्या दी हैं क्योंकि किसी
स्थान पर ४५ म ष्यों को दीक्षा लेने का उल्लेख नहीं है। सबसे
पहली यह कल्पना वा० मो० शाह ने की है शेष लेखकों ने बिना
सोचे समझे बिना प्रमाण अपने अपने ले ों में नीट मारा है यदि
कोई स्थानकमार्गी समाज का समझदार इन तीनों लेखकों को
पूछे कि आपने उन ४५ मनुष्यों के दीक्षा लेने की बात भिन्न भिन्न
रूप से लि दी है, इसमें झूठा कौन ? और यह बात आप

लोग किस आधार पर लिखते हैं ? इ लत में इन ले ों ी सत्यता । परिचय मिल सकता है पर "अन्धा उद्र थोथा धान, जैसे गुरु वैसे यजम " पूछे कौन ? तभी तो यह पोलमपोल चल रही है।

अब रहा लौंकाशाह के मुंह पर मुंहपत्ती बांधने का ि ाद, सो इसमें वा० मो० शाह, और संतबालजी ने तो लौंका ाह को गृहस्थ करार दे सहज ही में अपना पिण्ड छुड़ा लिया, और इन दोनों महानुभावों ने तो अपने २ ग्रन्थों में मुख वि का की चर्चा तक भी नहीं की है। परन्तु स्वामी मणिलालजी ने लौंकाशाह को यति सुमति विजयजी के पास दीक्षा दिलादी इसमें लौंकाशाह का मुँहपत्ती हाथ में रखना स्वयं सिद्ध हो गया, पर यह बात अमोलखर्षिजी को कब पसन्द आती, उन्होंने लि दिया कि लौं - शाह ने मुँह पर मुंहपत्ती बांध के दीक्षा ली थी। पर इस विषय में स्वामी मणिलालजी यदि यह प्रश्न करें कि लौंकाशाह ने किस स्थान, किस काल, और कि के पास दीक्षा ली जब लौंकाशाह मुखपत्ती बांध के ही दीक्षा ली थी तो यह बतलाना चाहिये कि लौंकाशाह के अनुयायी साधु-यति श्रीपूज्य और गृहस्थ लोग सब के सब मुँहपत्ती हाथ में रखते हैं तो यह हाथ में रखने की प्रवृत्ति लौंकाशाह के अनुयायियों में कब से प्रचलित हुई और लौंकाशाह के अनुयायी यह क्यों कहते हैं कि यति लवजी धर्म-सिंह ने मुँह पर मुँहपत्ती बांध कर तीर्थङ्करों और लौं शाह की आज्ञा का भंग किया अर्थात् लिंग धारण कर उत्सूत्र की प्ररूपना करी, क्या ऋषिजी इस उत्तर दे सकेंगे ? क्योंकि इसके प्रत्युत्तर में श्री मोल र्षिजी के पा कोई प्रमाण नहीं है।

हो कता है अब वे इसके लिए भी कोई नई कल्पना कर लें। क्योंकि झूठ हांकने वाले तथा भूमि पर सोनेवाले के लिए कहीं भी संकुचित स्थल नहीं है। परन्तु स्वामीजी को यह सदा स्मरण र चाहिए कि साधु संतबालजी भी आपकी तरह नई रोशनी के विद्वान् हैं, वे आपकी इन थोथी दलीलों को क्या मानेंगे ? दापि नहीं वे तो इन्हें ए क्षण में नष्ट कर देंगे।

निष्कर्ष रूप लौंकाशाह ने न तो दी । ली, और न उस समय आपका शरीर ही दीक्षा के योग्य था। वे स्वयं संतबाल जी के शरीर में प्रवे कर फरमाते हैं कि मैं बिलकुल बूढा और पंग हूँ; इस हालत में वे कैसे दीक्षा ले कते थे ? अन्यत् लौंकाशाह दी । के काबिल ही नहीं थे, यह तो केवल नई रोशनी के स्थ र्गी अपने पर गृहस्थ गुरु का आक्षेप न हो या इसे दूर करने के लिए ही यह सब मिथ्या प्रपंच रचते हैं, परन्तु ाजकल की जनता इतनी शून्य नहीं है कि प्रमाणशून्य कोरी कल्पनाओं को भी "बाबा वाक्यम् प्रमाणम्" के अनुसार सच्ची समझ लें।

कुछ देर के लिए स्था० साधु मणिलालजी का कहना, स्था० समाज भी मान लें तो मान्यता से ्रंतबालजी और ० मो० शाह लिखा आ इतिहास मिट्टी में मिल जायगा, क्योंकि इन दोनों वि ों की कल । लौंकाशाह की दीक्षा के नितान्त विरोध में हैं। मणिलालजी ने जो कल्पना यति रूपधारी ौंकाशाह के सम्बन्ध में की है वही कल्पना संतबालजी और ० मो० शाह ने गृहस्थ प लौं ह के साथ की है। इन विरुद्ध कल ाओं से दोनों प्रकार के लेखकों पारस्परिक विरोध

ट होता है। भव है बालजी तो इस विभिन्नता को मिटाने के लिए पूर्वेतिहा को बदल कर नये सांचे में भी ढाल दें, परन्तु स्वर्गीय शा जी इतिहास ी ा दुर्दशा होगी ? य विचारणीय है। हमारे याल तो इनकी भी वही हालत ई है ा इस विता प्रकट होती है:—

"उधर कों कुआ इधर को खाई।
जावें जिधर कों है मौत आई" ॥

रांश—यदि वे मणिलालजी ो नें तो शाह ौर -जी ठुकराये जाते हैं और इन युग महात्माओं को मानें तो "मणि माल" विछुड़ प ती है। क्या करें इन झूठी कल । ों ने गजब ढा दिया। ये जगत में छ र तो की नहीं किन्तु स्वयं भी विश्वा योग्य नहीं रही। जै लौंका ह विषय की पूर्वोक्त कल्पनाएँ ोज से मिथ्या ठहरती हैं वैसे ी इनका परिभ्रमण भी धर्म प्रचारार्थ कहीं हुआ हो यह भी मिथ्या है इसका खुलासा, प्र रण उन्नीसवें में, दृष्टिगोचर करें।

प्रकरण उन्नीसवां

। ौं ।शाह ने कहीं भ्रमण वि ।। था ?

लौं शाह े जीवनवृ पर से इ । तो स्पष्ट समझा जा है कि लौंकाशाह ने अपने हृदय की ।वाज ब से पहिले हमदाबाद में व्य की थी । परन्तु जब वहां आपके उस पैगम्बरी हुक्म को कि ी सुना नहीं, किन्तु श्रीसंघ ने । आप ति कार कर आपको मकान से बाहिर र दिया, प वहाँ से े जन्म स्थ लींबड़ी को गए, ौर वहाँ ।पके म्बन्धी श्रीमान् ल मसी ई जो राजकारभारी थे उनकी सहा । े लीं ी में पने पने परिष्कृत विचारों का प्रचार किया र्थात् पने नये मत ी नींव डाली । जिस मय पने े मत शिलान्यास किया, उस समय ।प तिवृद्ध ौर पङ्ग थे । नये मत को स्थापित करने के कुछ काल बाद ही ।प वहीं लींब ी में देहान्त होगया । इस हालत में पका परिभ्रम करना पंगु द्वारा हिमालय लाँघना ही है । हमारी इस बात से हमारे स्थानकमार्गी साधु एवं विद्वान् भी सहमत हैं । देखिये:—

श्रीमान् संतबालजी—

"वि० सं० १५३१ में ौंका ।ह धर्म प्राए हुआ

× × × वि० सं० १५३२ में लौंकाशाह का देहान्त हुआ × × × ।"

धर्मप्राण लौं ० लेख जैन प्र० ता० ८-४-३६ ४७५।

× × ×

श्रीमान् वा० मो० शाह

× × × परन्तु इस समय (वि० सं० १५३१) में लौंकाशाह ने स्वसंपादित ज्ञान को चारों ओर प्रसार करने की योजना तक भी नहीं की थी × × × ।

ऐति० नोंध ७४।

वि० सं० १५३१ तक लौं का भारत भ्रमण तो दूर रहा उनका चिक न्देश भी कहीं नहीं पहुँचा था। ब में वा० मो० शाह की ले नी द्वारा लोंका यं बो रहे हैं वि "इस य तो मैं बिलकुल बूढ़ा ौर ", और फिर वि० ं० १५३२ के नजदी में ही ौंका ह । नश्वर शरीर इस संसार से विदा हो चुका था। ब म में नहीं कि लौं शाह ने फिर भारत भ्रमण ` किया था ?

मी मणिलालजी पनी "प्रभुवीर वली" के पृ १७८ में लि ` हैं कि "लौंका ाह, यति दीक्षा लेने के द घूमते २ एक दिन जयपुर (राजपूताना) पहुँचे वहाँ आप जहर के ोग से मात देहान्त हो गया। इत्यादि"—

परन्तु जब लौंकाशाह दीक्षा लेना भी प्रमाणों से कल्पित ठहर है , दीक्षोपरान्त धर्म ारार्थ लौं । परि-

मण करना तो तः लिपत सि है । तथा लौंकाशाह जिस समय विद्यमान थे, उस मय बसे ए जयपुर की कथा तो दूर रही. किन्तु जयपुर बसाने की मग्री का भी कहीं पता नहीं था । ोंकि लौंकाशाह का मय तो विक्रम की सोलहवीं ताब्दी है ौर जयपुर को महाराज सवाई जयसिंह ने विक्रम ी ठारवीं शताब्दी में ाबाद ि ा था । फिर समझ में नहीं ाता है ि जब लौंका ाह े दो ौ २०० वर्ष बाद जयपुर बसा, तो वहाँ लौंकाशाह देहान्त कैसे हुआ । बस ! आपकी ऐसी "तत्वभरी (!) या निःसार" कल्पनाओं से शिक्षित समुदाय म ता होगा ? स्वयं ोच लें ।

व में सत्य ब यह है ि लौंकाशाह ने अपना नया लींबड़ी ठियावाड़ में स्थापित किया, और उस वक्त आप खूब वृद्ध और पंग थे । तः कहीं भी भ्रमण नहीं कर सके । न्तिम समय में शा० भाणादि ३ मनुष्य आपको आकर मिले, वे गुरु बिना स्वयं वेश धारण कर धु बन गये थे । लौंकाशाह देहान्त हो जाने के बाद भी ३०-४० वर्ष तक उन्होंने काठियावाड़ को नहीं छोड़ा । बाद गुजरात में मूर्ति पूजकों का बड़ा जोर था, तः वहाँ तो भ्रमण कर वे इसका (मूर्ति पूजा का) विरोध कर नहीं सकते थे। तदर्थ लाचार हो जहाँ जैन यतियों ा विशेष आना जाना नहीं था ऐसे शुष्क एवं धर्मोपदेश रहित मारवाड़ादि देशों में उन्होंने पना विषैला प्रचार प्रारम्भ किया, और भोली-भाली भद्रिक जन को स्वचंगुल में फंसाना शुरू किया । इस म से वि० ं० १५७५ में तो लौंकाऽनुयायी वे धु मारव में ए, और वि० सं० १५८० में नागोर के

शाह रूपचन्द राणा को दी । दी । वि० ं० १६३२ ˜
लौंका धु ।वचन्दजी गोड़वाड़ में ।ए, गौर ताराचन्द -
ड़िया ी स यता `, उन्होंने गोड़वाड़ में पना प्रचार कार्य
शुरू ि । । नन्तर मा वा, मेवाड़ दि ी गोर ।गे बढ़े
वहाँ भी जैन यति ों । विहार ।र्यं ब त म । जै` थली
दि निर्जल प्रदेशों में, जैन यतियों तथा स्थान ंगियों
। ण म होने ` मी भी मजी ने । प्रचार किया,
और आ भी कर रहे हैं । वै` ही इन लौंका० धु ों भी
ि या । ोंकि भद्रिक जन । मन हमेशा ` ।र्थी आ
है, उसको भ ।ई का भुलौवा दे र झुकाने ला जि र चाहे
उ ो ही झुका दे है—

"झुक तो जाती है जहां, कोई झुकाने वाला हो ।"

य ी भाव प्रसि नीति विद् विष्णु र्मा कहते हैं:—

"यत् पार्श्व तो वसति तद् परिवेष्टयन्ति"

र्थात्—जि प्रकार वेलें, रि यें तथा राजा लोग, गुणी
नि ंर्गुणी याल छोड के पा जो आता है उ` ही अपना
र्वस्व सौंप देते हैं तद्वत् प्रजा जन भी अप विशेष परिचय ले
ो ङ्गीकार करते हैं । इत्यादि

खैर ! प्र त विवेचन । ।रांश यही है कि लौं शाह
ंबड़ी गौर हमदाबाद के अलावा न्यत्र कहीं भी भ्रमण
नहीं ि । क्योंकि इसके अन्यत्र मण करने के प्रमाणों
ज त नितान्त भाव ही थ लगा है । हाँ ! यह हो सकता
है ि हमारे स्थानकमार्गी भाई यदि " प मण्डू वृत्या"

अ मदाबाद ौर लींबड़ी ो ही ारत ामक के लौंकाशाह का भ्रमण मानते हों तो की बात सत्य सिद्ध हो सकती है। अन्यथा सुज्ञ ज इन लीचर, दलीलें, और कल्पित प्रमाणों की ि ी भर की करता है, यह विज्ञ विचारक जानते ही हैं।

जिस प्र र निबन्ध ` लौंकाशाह का परिभ्रमण मिथ्या ठहरता है उस प्रकार लौंका के नुयायी वर्ग का लक्षाऽधिक संख्या में वताना भी मिथ्या है, इ विस्तृत विवेचन बीसवें प्रकरण में देखने की कृपा करें।



कर बीसवां

लौंकाशा के अनुयायियों की संख्या

किसी भी धर्म का प्रचार, उ धर्म की त्यता तथा प्रधानतः धर्म प्रचार ाधनों पर वलम्बित है, और इन प्रचार के ाधनों में प्रधान । उपदेश , गौर तद्रचित सुन्दर साहित्य हैं । हमारे लौंकाशाह के पास की वि मान में इन दोनों ाधनों पूर्णतया भाव । श्रीमान् तबालजी गौर वाड़ीलाल मोती ाल ाह के मता-ऽनुसार वि० ं० १५३१ में तो लौंकाशाह धर्म- ए, गौर त ाप तिवृ तथा दहीन थे फिर वि० ं० १५३२ में ही ा देहान्त हो गया । इ हालत में तब त तो उनके अनु-यायियों ी संख्या नहीं के बरा ी थी, यदि कुछ होगी भी तो ो पचा दा नहीं; किन्तु ाधुनिक स्थानकमार्गियों के सिवाय न तो किसी प्राचीन ले क ने लौं ाह के नुयायी की त लि ी है गौर न इस वि ई अन्य प्रमा ी मि लता है । लौंकाशाह की मौजूदगी में तो रि ाय ाठियावाड़ विशेष लीं ी इन्हें कोई नता तक भी नहीं । लौंकाशाह जीतेजी कडु ाशाह ए अन्य व्यक्ति पने क आमत नि ा था, उसने वि० ं० १५२४ से १५६४ त लगातार स्थानों घूम कर ने मत को बढ़ाया, जिसके प्रमाण तो मिलते हैं । लौंकाशाह सम्बन्धी कोई भी

प्रमाण नहीं मिलता है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि कडुआशाह ने तो केव जैन यतियों से ही विरोध किया था ोंकि वह जैनाऽगम पञ्चाङ्गी और मन्दिर मूर्ति तथा जैन धर्म की सामायिकादि सब क्रियाएँ यथा विधि विधान मानता था। परन्तु लौंकाशाह ने तो अनार्य संस्कृति के सर के कारण जैन यतियों के साथ २ इन सब को भी मानने से तई इन्कार कर दिया, इसी कारण अहमदाबाद के श्रीसंघ द्वारा लौंकाशाह का तिरस्कार हुआ, और उसे उपाश्रय से भी निकाल दिया गया, ऐ ी दशा में लौंकाशाह के धर्म का पूर्ण प्रचार होना असंभव ही है और प्रमाणाऽभाव से यह बात सत्य भी विदित नहीं होती है। ोंकि जब उसने धर्म के सभी ंग काट दिए तो, सर्वाङ्गहीन धर्म, ह पादादि रहित पिण्डाऽवशेष शरीर के समान किस को प्रिय हो सकता है, तः उसके नये मत का प्रचार सर्वथा रुक ा ही गया।

वर्तमान समय में ई ए लोग व्यापारार्थ भारत के न्य प्रान्तो में जा बसते हैं तो उनमें मूर्तिपूजक, स्थानकमार्गी, तेरहपंथी ादि सब तरह के लोग रहते हैं। शायद इन्हीं बि री हुई प्रजा को भि २ प्रान्तों में देखकर ही नई रोशनी के ानकमार्गी यह कल्पना करते हैं कि हमारे लौंकाशाह के अनुयायियों ी संख्या ला ों तक पहुँच गई थी और वे भारत के चारों ोर ही बसते होंगे। परन्तु यह तो ऐतिहासिक न की अनभि ता का ही प्रदर्शन है। अन्यथा बुद्धिबल से भी तो कुछ विचारना चाहिये कि वास्तव में रहस्य क्या है। किन्तु जिन्हे सच, झूठ की कोई परवाह नहीं केवल अपनी झूठ मूठ

उन्नति की डींगें ारना ही ाता है वे क्या नहीं कते हैं।

मूनार्थ देखि ये:—

श्रीमान् वा० मो० शाह

× × × एक पुरुष थोड़े ही समय में हुआ, जिसने रेल तार डाक आदि के बिना ही भारत के एक भाग से दूसरे भाग तक जैन धर्म । उपदेश फैला दिया × × ।

ऐति० नौंध पृष्ट ६५

और ागे चल र ाप ों लि ते हैं कि:—

"और ४०० वर्ष के भीतर ही भीतर चैत्यवासियों में से ५,००००० पांच लाख से ज्यादा मनुष्यों ो अपने में मिला लिया।"

ऐति ० नौंध ७७।

जब ४०० र्षों में पांच मनुष्यों को पने में मिला ति । माना जाय तब यह लि ना तो बिल ल मिथ्या ही सि । कि लौंका ह पनी जिन्दगी में बिना र डाक भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक धर्म प्रचार किया।

ए ोर तो ाप लिखते हैं कि बिना रेल तारादि के पना धर्म भारत के ए भाग से दूसरे भाग त फैला दिया, और दूसरी ोर लि ते हैं कि ४०० वर्षों में पांच ला (वास्तव में दो ।) चैत्यवासियों को पने अन्दर मिला लिया परन्तु वि म ी १२ वीं शताब्दि े बाद कोई चैत्यवासी था ही नहीं तो फिर वा० मो० ाह ने ५ ला चैत्यवासी हाँ से नि ाले? हाँ!

वा० मो० ने श्वेत र जैनियों को चैत्यवासी या देरावासी लिए ऐसा लि । हो तो वह उनकी ईर्षा भाव का ही फल है वि श्वे० को देरावा ी लि र चैत्य सियों की कोटि में स्थापित र रि त बनवाना। : आगे देखिये—

× × × परन्तु इस समय (वि० सं० १५३१ में) *लौंकाशाह ने अपने सम्पादित ज्ञान को चारों ओर फैलाने के लिए एक खास योजना नहीं की थी* × × × ।

ऐतिहा० नोंध पृष्ठ ७४ ।

वा० मो० ाह को य लिखते मय जरा तो विचार करना था कि वि० ं० १५३१ त तो लौंकाशाह ने कुछ योजना ही नहीं की थी। और उ मय प बिलकुल बूढ़े तथा भी हो गए थे, ौर वि० ं० १५३२ में आपका देहान्त हो गया, फिर वृद्ध और पङ्गाऽवस्था में बिना तार डाक ादि के ए ही वर्ष मे । के चारों ओर ौंकाशाह ने अपने धर्म को कैसे फैला दिया था? ❀ क्या ाह की मान्यता का भारत, लींबड़ी या हमदाबाद की एकाध गली या मुहल्ला तो नहीं था? कि उसमें चारों ोर लौंकाशाह ने सत्वर ही अपने उपदेश की

❀ स्था० मतानुसार लौंकाशाह का तथा देहान्त का समय १ के बीच का पर यह कोई स प्रमाण नहीं कि यह वर्ष बराबर १२ मास ही का था। क्योंकि इन्होंने तो त्र संवत् लिखा है मास तिथि नहीं। इस हिसाब से तो सं० १५३१ चैत्र कृ० ३० और सं० १५३२ शु० १ ये एक दिन की अवधि में हैं परन्तु केवल संवत् से वर्ष के क जान पड़ते हैं अतः विचारणीय ।

। फैला दी। जैन ।गम हि ऐ न्य ।ी ष्टा मिल ते हैं।

"श्री भगवती सूत्र के १५ वें त में गोसा ने वान् महावीर विरोध कर स्वयं तीर्थं र हो । था। परन्तु उसने पनी अन्तिमाऽवस्था में पने अनुयायियों को बुला कर सबके गे सत्य प्रकट कर दिया था कि मैं वस्तुतः तीर्थङ्कर नहीं किन्तु ए श्रमण घाती हूँ। मेरे मरने के बाद मेरे रीर एवं पैरों को मजबूत मूँज र से बाँध इस स्वस्तिका नगरी मुख्य मुख्य रास्तों में मुझको घुमाना और हना कि यह गोसाला तीर्थङ्कर नहीं पर श्रमण घाती दमस्थ है इत्यादि। गोसाला ल करने पर उनके अनुयायियों ने सोचा कि वा व में तो गो ला मिथ्यात्वी है, पर पन लोगों ने तो इन्हें तीर्थङ्कर मान लिया था। अतः व इनके मृत शरीर की बेइज्जती करना, अपने लिए लज्जा की बात है। इस रण उन्होंने उ म न । (जिस गोसाला था) दरवाजा बन्द कर ए ल ी से स्तिका का अवलो न कर उस मकान के अन्दर गो । के हने के ल पैर के र । बाँध घुमाया। ौर धीरे रे ब्दों में वही पूर्व गो । कथित वाक्य कहा। इस प्रकार जैसे गोसाला के ों ए म न में स्तिका नगरी न ली थी, वै ही लौंकाशा के भ ों ने भी एक ही गली को मान लिया हो तो यह त कोई असंभव नहीं।

इसी प्र र श्री० ० मो० ाह का अनुकरण वालजी, णिल ी, मोल ऋषिजी और विनयर्षिजी भी ि ,

और इन लोगों ने लि दिया वि लौंका । ने तो अपना धर्म भारत के चारों ओर फैला दिया ।

बस ! गुरु भक्ति इसी का ही नाम है, चाहे प्रमाण हो या न हो, लोग चाहे इसे नें या इसकी मजा उड़ाएँ पर भक्त लोगों ने तो पना कर्त्तव्य दा कर ही दिया । खैर ! जाने दो, इन भक्तों के तो तमाम ले ों से यही ध्वनि निकलती है कि लौंकाशाह ने लाखों चैत्यवासि ों को दयाधर्मी बनाया । इससे यह तो निर्विवाद सि हो ता है कि लौंकाशाह ने चैत्यवासी धर्मी जैनों को तो ज र धर्मच्युत किया, परन्तु जैनेतर, अन्य धर्मी २-४ मनुष्यों को जैनधर्म उपदेश दे अपना अनुयायी नहीं ाया । कार लौं में यह योग्यता थी ही नहीं, जो पूर्वाचार्यों में सामूहि प से विद्यमान थी । क्योंकि उन्होंने तो उपदे दे देकर ला ों रोड़ों अजैनों को नया जैन बनाया था । ोर लौं शाह ने जो सदसत् कार्य किया वह यह कि निज रक्षित घर में एक विशाल सुरंग रूपी फूट डाल पना एक नया फिरका लग ड़ा किया । यह कुप्रवृत्ति तब से आज तक भी पूर्ववत् वि मान है । उदाहरणार्थः— लौंकाशाह के समकालीन कडुआशाह ने भी लौंका की भांति लोगों को फॉट कह दिया कि भस्मग्रह के उतरने पर कडुआशाह ने धर्म का उद्योत कि ा । इ के ानन्तर लौंकाऽनु-यायी यति धर्मसिंहजी और लवजी ने लौंकामत में भी फूट डाल छ लोगों को अपने उपासक बना दिये, ोर साथ ही घोषणा की कि लवजी ने हजारों ल ों पने अनुयायी बना लिए । तत्पश्चात् स्वामी भी मजी ने भी इसी प्रकार भेद डाल कर धर्म

उद्योत (!) किया। और सैकड़ों, रों जैन तथा स्थानकमार्गियों ो ा यायी बनाकर पना मत जारी किया। बाद में देशी स्थान मार्गियों ने परदे में जाकर पने धर्म ा उद्योत र देशी धु ों के श्रावकों में फूट डाल अपना श्रावक ाना शुरू किया। ौर पर्यन्त भी ए टोले ाधु दूसरे ले मकित वाले को बहका कर पना नुयायी बनाने की कोशिश कर र ा है। इ प्रकार य ना क, धर्म का उद्योत रूपी यन्त्र यथा म । भी चालू है, ौर यथाऽवसर दो चार भ्रान्त श्रावकों ो मिथ्या प्रपञ्च फुस र पना श्रावक बना लेने में ही धर्म उद्योत ौर जैन माज की ति समझ रहा है। लौंक ाह ने भी जैन धर्म का इस बढ़कर कोई भी वा विक उद्योत नहीं किया, यह मानना नि ान्त युक्ति युक्त ौर प्रमाण संगत ही है।

ब जरा फिर इतिहा की ओर दृष्टि पात कीजिये, ौर विचारिये कि ो हवीं शताब्दी का तो इतिहास एकान्त अंधेरे में नहीं है, ौर इ कारण लौंका ह ो भी एक जबर्दस्त घ अंधेरे में नहीं रह ी, फिर भी शायद रह गई होतो, इ के सि य हतभा ौर बदनसीब कोई हो ही नहीं कता।

तत्वतः लौंकाशाह तो एक सामान्य वणि बनिया था, और वह भी बिलकुल बूढ़ा ौर अपंग, उ समय न तो उसमें हस था ौर न थी योग्यता, ौर न कोई उसका सच्चा य ही था। लौं ा के जन की ंख्या रोड़ थी, उनमें यदि लौं ाह सौ पचा ादमियों ो पनी तर ँट दिया तो, में ब ादुरी ी कौन

है ? परन्तु एक दम ` य हना कि उसने भारत के चारों ओर पना धर्म फैला दिया था, यह तो बिना रि र पैरों की केवल एक गप्प ही है। लौंका ाह ने न तो कुछ उल्ले वनीय कार्य स्वयं ि । ौर न किन्हीं अन्य उपदे कों के ारा करवाया वह तो साधन रहित साधारण मनुष्य मात्र था।

लौंकाशाह ने साधन होकर भी वर्ष मास के क्षीण समय में भारत के चारों ोर पना धर्म फैला दिया, यह बात वही म ष्य सच मानेगा जिसने अपनी बुद्धि ` बाजार में बेच डाली मुसलमान बादशाहों ने अपनी सैनिक ि तथा राज सत्ता द्वारा है। नहीं तो सोचना चाहिए कि जब सर्व । सम्पन्न धर्मान्ध ह रों मन्दिर मूर्तिएँ तोड़ डालीं, सैकड़ों पुस्तक-भण्डार जला, ह म गरम किए, अनेकों ों को नार्य बनाया, फिर भी वे ए वर्ष भर में यह दुष्कार्य पूरा नहीं सके, और इस पशुत्व के प्रयोग में उन्हें एक नहीं नेकों वर्ष बीत गए, तब कैसे मान लें कि लौंकाशाह ने ाधन था में भी एक वर्ष में सब कुछ कर दिया। अंग्रेजों के पास इ ी जोरदार वैज्ञानिक शक्ति, अ सत्ता तथा ं ठन बल होने पर भी ए वर्ष में ये भी कुछ नहीं कर सके। मी द नन्द र ी जैसे मूर्त्ति का कट्टर विरोधी साहसी वीर भी एक वर्ष में ा मत नहीं फैला सके। तो फिर बिचारे लौंकाशाह की दु ॅ मृत आत्मा पर इतना बोझा क्यों लादते हो। यदि लौं शाह ने जैन धर्म में फूट का बीजाऽऽरोपण किया, उसी के उपलक्ष्य में यदि सब लि जाता है तब तो स्वामी भी ी को भी न छ ाना चाहिए, क्योंकि यह विषवहि तो उन्हों भी बोई थी।

लौंकाशाह पनी जीविताऽवस्था ेंतो लीं ी ें बाहिर ीं नहीं गए, ौर न उन्होंने ी विशेष नुयायी ं । भी ़ाई। किन्‍ ब वे गए तब ़उनके नाम से ।S-न्य प्रान्तों में कुछ २ ार । । ़परन्‍ इसमें लौंका ाह् के त ी उत्तमता का ोई । रण नहीं था, पितु य भी जैन यतियों का ही प्र प है ि वे । बिहार एकाध प्रं छो े नहीं करते थे जैसा कि ज भी कर रहे हैं, और जहाँ इन्होंने ोई प्रं छोड़ा कि चट वहाँ ौंक । वाले म ष्य पहुँच जाते थे और उन्हें पनी तर गाँठ लेते थे। ौंका त, और तेरह-पन्थियों ी ाज जो कुछ भी संख्या बढ़ी ई जर ती है, उस ार इनके मत की उपादेयता, वा । ोई उपदेश प्रचार आदि नहीं किन्तु जैन यतियों के बिहार व ही है। और आज भी संवेग पक्षी आचार्य ादि ए ही प्रान्त में रह कर लौंका ादिकों अनुयायियों की ंख्या बढ़ाने में हायक हो रहे हैं।

ाधुनि स्थान मार्गियों ने एक नई मर्दुमशुमारी पनी ंख्या, ँच की गिनती र बारों ौर लेखादिकों में प्रकाि त ाई । झूठ बोलना, गप्पें हाँ ना आदि इनके मत का दि े ही अटल सिद्धान्त रहा है। र री मर्दुम मारी से जैनों की संख्या १३००००० की बताई जाती है, जिनमें ६००००० तो दिगम्बरी, े को बताते हैं २००००० तेर पन्थी, ौर ब ाप थनाऽनुसार ५००००० स्थान मार्गी, इस प्र र १३००००० ला ी सं तो. पूरी हो चुकी, जब ेताम्बर

मूर्त्तिपूजकों का तो मानों ारत में नितान्त अभाव ही है ? (क्यों न ?) पने जैन इयों । स्तित्व मिटाने में ही स्थानकमार्गी ई पनी उन्नति समझ बैठे हैं पर यह इनकी भूल है। अब जरा स्थानक र्गियों के ोर मूर्तिपूजकों के वसति पत्रकों की ोर तो देखि ये ।

अहमदा द में ४०००० जैन, बम्बई में ३०००० जैन, और गोड़वाड़ प्रान्त में तथा सिरोही स्टेट में १००००० जैन हैं । गुजरात प्रान्त में तो प्रायः मूर्त्तिपूज जैन ही विशेष हैं । मूर्त्तिपूजक जैनों के लिए तो ऐसे ब त े नगर हैं कि जहाँ मुख्य वस्ती जैनियों की है, पर स्थ मार्गियों े लिए तो ऐसे थोड़े ही शहर होंगे, कि जहाँ मूर्तिपूजकों की वस्ती न हो। जैन श्वेताम्बरों के आज ४०००० मन्दिर हैं, यदि प्रत्येक मन्दिर के कम से कम १५ उपास भी माने जायँ, तो भी ६००००० : लाख की संख्या तो सहज ही में मानी जा स ी है। यदि हिसाब लगाया य तो चार । दिगम्बर, तीन ला स्थानकमार्गी और तेरह-पन्थी तथा शेष छः ला श्वेताम्बर मूर्त्तिपूज समझे जा सकते हैं। इन भी स्थ कमार्गी सौ नब्बे मनुष्य मन्दिर मूर्त्ति को मानने वाले, त्रुञ्जय, केशरियाजी की यात्रा रने वाले हैं, तथा पूर्वाचार्य ोर उनके द्वारा निर्मित ग्रन्थों का सत्कार करनेवाले हैं। पर मूर्त्तिपूजकों में सौ में ५ पाँच दमी भी ऐसे नहीं मिलेंगे जो ढूँढियों के र्ग को च्छा समझते हों ।

स न मार्गी या तेरहपंथी लोगों ने पने उपासकों की जो सं बताई है, वह ब की मूर्त्तिपू ाऽऽचार्यों के बनाए

जैनों की है। इनमें स्थान मार्गी या तेरहपंथी माज की बहादुरी है। वे चाहे मंदिर को नें चाहे स्थानक को। इसमें स्थानकवासियों ो फूलने की ब है। यदि स्थान - सियों में जरा भी हिम्मत है तो वे किसी विधर्मी अजैनों को जैन । पनी योग्यता दि ावें।

जै किसी हूकार से रि ला होकर गुमास्ता जुदा होग ौर, सेठ की बेपरवाही से का माल व दबा ले और उससे पने को बहादुर और व्यवसायी कहे तो, नहीं कहाजा ता, ोंकि वह तो सेठ की कमाई ई ंपत्ति है। उसकी बहादुरी तो तब जानी जा कती है कि जब वह स्वयं पुरुषार्थ से पैसा पैदा रे। यही त यहाँ है। मूर्त्तिपूजकों की बेपरवाही और उनके प्रचार नहीं करने से, स्थानकमार्गियों ने तरात् प्रान्तों ी भद्रिक जैन जनता ो ही अपने मत में घुसेड़ दी है, न कि, जैनों को जैन बना पना उपासक बनाया है। यह जनता तो पूर्वाचार्यों से प्रतिबोधित थी ही इसमें विशेषता की छ बात नहीं है। हाँ! तेरहपन्थी और स्थानकमार्गियों की यह विशेषता तो जरूर ई है कि उन भद्रिक जनता को कृतज्ञ के बदले तघ्नी बना, जिन आचार्यों का और गमों का महान् उपकार मानना था उल्टी की निंदा करना सिखाया है।

शेष में ब हम यही कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार लौंकाऽनुयायियों ने न न्य विषयों में मत भेद ड़ा कर काशाह के जीवन चरित्र में झमेला ड़ा किया है तद्वत् इनके देहान्त । भी भी तक कोई स्थिर मत नहीं हुआ है, उसी निद म गले प्रकर में राएँगे। ठक प्रेम पूर्वक उसे पढ़ें!

करण–इकवीस ।

लौंकाशाह का देहान्त ।

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि कोई भी व्यक्ति जब ... र में जन्म लेता है तो मरता भी अवश्य है । ति ... । भी है:—

"यज्जायते तत् म्रियते ऽवश्यम्"

इसी सिद्धान्ताऽनुसार श्रीमान् लौंकाशाह भी जन्मे और मरे, ... उनके ... नुयायियों की उपेक्षा ... आज उनके जन्म मरण की तिथि ... कोई भी पता नहीं है । इसके विषय में अर्वाचीन वि ... नों ... यत् किञ्चित् कल्पनाएँ ... वश्य की हैं, परन्तु वे ... विश्वासनीय ... । इतिहास की कसौटी पर ... सने लायक नहीं हैं । ... ोंकि ... ि ... २ ले ... कों जो भि ... २ कल्पनाएँ इस बारे में की हैं उनसे ... तः सन्दे ... प्र ... होता है । तथापि यहां निर्ण-यार्थ ... विवे ... किया ज ... । हैं ।

श्रीमान् संतबालजी—

"आप लौंकाशाह के देहान्त का समय वि० सं० १५३? का लिखते हैं ।

ध, प्रा. लौ. हे. जैन, प्र. ता० १८–८–३५ पृष्ठ ४७५ ।

× × ×

लौं० यति भानुचन्द्रजी वि० सं० १५७८

"पनरा सो बत्तीस प्रमाण, सा लुंको पाम्यो निर्वाण ।"

दया धर्म चौपाई ।

लौंकागच्छ के यति केशवजी—

"शत पन्नर तेत्रीश सालई, छप्पन वरसि सुरघर महालई ।"

लौंकाशाह का जन्म वि० सं० १४७७ में हुआ और अपने छप्पन (५६) वर्ष की उमर अर्थात् वि० सं० १५३३ में काल किया, लिखा है ।

"२४ कडी का सिलोका" ।

श्रीमान् वाड़ीलाल मोतीलाल शाह—

"लौंकाशाह का देहान्त विषय बिलकुल मौन है पर १५३१ के बाद जल्दी ही काल करना आपका मत है ।"

× × ×

वीर वंशावली वि० सं० १८०६

लौंकाशाह के देहान्त का समय वि० सं० १५३५ का लिखा है ।

जैन सा० सं० वर्ष ३-३-४९ ।

स्था० साधु अमोलखर्षिजी

आपने लौंकाशाह के देहान्त का समय तो नहीं लिखा है पर इतना अवश्य लिखा है कि यति लौंकाशाह ने अन्तिम समय में पन्द्रह दिन का अनशन कर समाधि पूर्वक काल किया था ।

शास्त्रोद्धार मीमांसा पृष्ठ ६७ ।

स्था० साधु मणिलालजी—

लौंकाशाह के देहान्त का समय वि० सं० १५४१ में एवं जयपुर में होना बताते हैं। पर आप लिखते हैं कि आपका देहान्त जहर के प्रयोग से हुआ था।

प्रभुवीर पटावली पृ० १७८

शेष ले कों ने लौं शाह के देहान्त के वि य में कुछ भी नहीं लि ा है, र्थात् मो त का सेवन किया है।

पूर्वोक्त प्रमाणों में सब से प्राचीन प्रमाण यति भानुचन्द्र का है, तदनुसार लौंकाशाह का देहान्त वि० सं० १५३२ में हुआ होगा। इस मान्यता से स्वामी संतबालजी भी सहमत हैं और वाड़ीलाल मोतीलाल शाह भी इससे मिलते जुलते नजर आते हैं कारण वे १५३१ में लौंकाशाह को बिलकुल बूढ़ा और अपंग बताते हैं। स्था० अमोल षिजी लौंकाशाह को पन्द्रह दिन का नशन करना और समाधि पूर्वक शरीर छोड़ना बताते हैं। ामी मणिलालजी वि० सं १५४१ जयपुर में जहर के प्रयोग से यति लौंकाशाह का देहान्त होना बताते हैं, किन्तु स्वामीजी का यह लि ना बिल्कुल कल्पना मात्र है। कारण न तो लौंकाशाह ने यति दीक्षा ली और न वह जयपुर तक आया और न उस समय जयपुर शहर ही आबाद हुआ था। यदि मणिलालजी कम से कम स्वामी अमोलखर्षिजी त शास्त्रोद्धार मीमांसा नामक पुस्तक पढ़ लेते तो मालूम हो जाता कि लौंकाशाह ने १५ दिन का अनशन किया था। इस हालत में १५ दिन तक तो उन्होंने बिना ाहार किए ही बिता दिये फिर उनको जहर किसने दिया। यदि

मणिलालजी के मताऽनुसार जहर के प्रयोग से ही का देहान्त
। होता तो अमोलखर्षिजी उन्हें समाधि मरण कैसे लिखते?
ारण, जहर खाकर मरनेवालों को समाधिमरण नहीं पर ात्म
घात के कारण बालमरण कह सकते है। यदि स्वामी मणिलाल-
जी जहर का अर्थ उत्सूत्र रूप जहर र दें तो दोनों । मा-
धान हो सकता है। कारण लौंकाशाह उत्सूत्र भाषी था और
उत्सूत्र सहित मरना जहर ाकर मरने से भी अधिक र है।

अद्यावधि लौंकाशाह के जीवन वृत्त विषय में जितने ले कों
ने लिखा है, उनमें यह किसी ने नहीं लि । कि लौं शाह जहर
ाकर मरा था। फिर एक मणिलालजी यह बात कहाँ से ढूँढ
लाए कि उनको जहर दिया गया। जब लौंकाशाह ने यति दीक्षा ली,
जयपुर गए आदि बातें कपोल कल्पित सिद्ध हैं तो का जहर
ाना भी मिथ्या ही है। पर मणिलालजी का ऐसा लि
क्षुद्र आशय "उनको मूर्ति पूजकों ने जहर दिया था" यह ि
के मूर्ति पूजकों को सं र में हेय बताने का है। यह दुर्बुद्धि
मणिलालजी को ही पैदा ई हो सो नहीं किन वा० मो० शा
ने भी अपनी ऐतिहासिक नोंध में लिखा है कि चैत्यवासियों
लौंकाशाह के ए साधु को विष दिला दिया।

शायद मणिलालजी ने यह सोचा होगा कि जब वा० मो०
ाह ने पनी नोंध में साधु को विष प्रयोग का लि दिया है
तो मैं साधु को न लिखकर यं लौंका ाह को ही विष देने का
ों न लि दूँ जिससे जनता पर चै वासियों की नीचता की
छाप तो पड़े। इससे उन्होंने लि दिया कि "प्रति पक्षियों
लौं ाह को जहर दे दिया ौर लौंकाशाह का शरीर छूट

क्योंकि लौकाऽ यायी नहीं स्थान मार्गियों द्वारा किया हुआ मूर्ति-पूज समाज पर यह प्रथम आक्षेप ही नहीं है किन्तु इन लोगों ागे भी इनसे भी घृणि त २ मिथ्या दोषारोपण मूर्ति पूजक समाज पर किये हैं बतौर नमूना के आप देखि ये:—"श्रीमान् वाड़ी, मोती० ाह अपनी ऐतिहासि नोंध पृ० १३६ पर लिखते हैं कि—वजी, भाणाजी, सु ाजी और सोमजी थंडिल गये थे। वहाँ ` पीछे लौटते समय एक मुनि इनमें से पीछे रह गया, उन्हें यति मिले, ये यति रास्ता बतलाने के बहाने उस मुनि को पने मन्दिर में ले गये ौर तलवार से मार कर मुनि के शव को वहीं गाड दिया।" परन्तु स्वामि मणिलालजी ने अपनी पटावली के पृष्ट २०८ में लवजी का जीवन लि ते समय इस घटना को बिल ल छोड़ दी शायद् इसमें और कारण❀ होगा।

इन स `द सज्जनों को यदि यह पुछा जाय कि यह समय तो ढूँ ि यों और लौंकों के ाकटी का था, ौर लौंकागच्छ की उस मय की पटावलियें यति और श्रीपूज्यों के पा विद्यमान हैं। उसमें तो इस बात की गन्ध तक नहीं मिलती है। फिर ४०० वर्षों के बाद स्वच न्दी निरं श ले कों यह बात कहाँ से गढ़ निकाली कि " नि को मार मन्दिर में गाड़ दिया।" रे! सत्यवादियों (!)! म क्या इ बात का प्रमाण दोगे कि उस समय जैन यति तल-रें र `थे, या मन्दिरों में तलवारें सुरक्षित रहती थी; जिससे कि वे ढूँढियों के सा को मन्दिर में ले जा कर तलवार से मार देते। जिस प्रकार यह आक्षेप निराधार है उसी प्रकार लौंकाशाह, लवजी, सोमजी ऋषिको जहर देने की बात भी निरा-

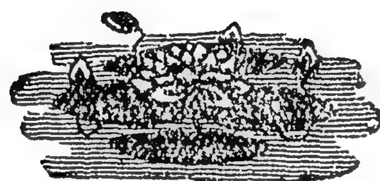
---

❀ कारण देखो ऐतिहासिक नोंध की "ऐतिहासिकता" नामक किताब।

धार है। यह लिखने का स्वामीजी ा शायद य भिप्राय हो ि ऐसी २ निन्दित बातें लिखने ॅ लौंकामत या स्थान गियों के पारस्परिक म्बन्ध में विभिन्नता ाजाय, और वे ए दूसरे को देख हलाहल विष उगलने लगें। तथा पने २ सम्प्रदाय से निकलने नहीं पावें। परन्तु स्वामीजी को यह स्मरण रहे कि, अब वह जमाना नहीं है, लोग लि पढ़ कर, आजकल स्वयं अपने हिताऽहित को सोचते हैं। वे ऐसी प्रमाणशून्य तथा संभव बातों पर हसा विश्वास नहीं रेंगे। ाज तो हरेक बात के लिए सर्व प्रथम प्र ण देने की जरूरत है। कल्पित बातों को मानकर वे पर का ित नहीं करना चाहते, वे तो अपनी बुद्धि गम्य बातों पर ही श्रद्धा र ते हैं।

ामी अमोल षिंजी के मताऽनुसार लौंका न्तिम में अनशन कर प्राण छोड़ने चाहे कि जब १५ दिन ॅ भी प्राण नहीं निकले तब दुः ी हो उसने ज र मंग लिया और सदा के लिए ंसारिक दुः ों से छुट्टी ली हो तो, स्वामी मणिलालजी का कहना स्थानकमार्गी लोग ठी म ॅ हैं। क्योंकि जैन शा ों में तो बिना तिशय ानी के न तो कोई संथारा र के और न ि ी अन्य को भी करा ॅ, किन्तु लौंकाशाह ने इस ज्ञान से नभि होते हुए भी न किया, इसी से उनकी यह दशा ई हो तो कोई बड़ी नहीं है। ऐसा उदाहरण एक रतलाम में भो बना था, वहाँ एक स्थानक र्गी ने संथारा किया, अनन्तर वह क्षुधा पीड़ित हो रात्रि में एक दम चुपचाप वहाँ से चल पड़ा। अनन्तर के बदले में ास साधु धर्मदासजी को आत्म बलिदान देना

पड़ा ❀। इसी तरह यदि लौंकाशाह भी हाल हुआ हो, तो हम तो नहीं जानते, पर यह बात स्वयं स्वामी मणिलालजी ने पनी "प्रभुवीर पटावली" के १७८ में लिखी है उस बात पर जरा गौर से विचार करो। व हम यह बतावेंगे कि स्थानकमार्गी यद्यपि पने को लौंकाशाह के ानुयायी बताते हैं परन्तु वास्तव में ये किनके नुयायी हैं ?



❀ देखो प्रभुवीर पटावलि पृष्ट १७८ पर

प्रकरण बावीसवां

र । कमार्गी ।ौं ।शाह के अनुयायी हैं ?

कितनेक स्थानकमार्गी ई अपने को लौंका ाह के नुयायी होने दम भरते हैं, पर लौंका-शा के सि द्धान्त एवं ाचार व्यव ार का वे पालन नहीं करते हैं। के चार, व्यवहार और स्थानकमार्गियों के चार व्यव ार में ीन ासमान सा अन्तर है। लौंका ह के । नुयायी, स्थानक र्गियों को निन्हव, और उत्सूत्र प्ररूपक म ें हैं, ौर स्थानकमार्गियों के ादि रुष लवजी ादि लौंका ाह के अनुयायियों को ष्टाचारी, शिथिलाचारी और मिथ्यात्वी समझते थे। स्थान मार्गियों दि पुरुष धर्मसिंहजी को लौंकागच्छ वालों ने पने गच्छ के बाहिर कर दिया था। ाण धोलिखि त उद्धृत है:—

"संवत् सोलह पचासिए, अहमदाबाद मंझार।
शिवजी गुरु को छोड़ के, धर्मसिंह हुआ गच्छ बहार॥

ऐति० नोंध ११७

दूसरा आदि पुरुष यति लवजी, जो लौं गच्छीय यति बज-रंगजी । शि था ें गुरु को छोड़ कर ँह पर डोरा ल, मुँहपत्ती बाँध के गुरु आ । को भंग कर अपना लग

मत निकाल गुरु के गेहरें वर्णवाद[1] बोले । इन दोनों धर्मसिंह गौर लवजी का मिलाप सूरत में हुआ । पर मायिक : कोटी, आठ कोटि, के झगड़े के कारण ये एक-दूसरे को जिना ाभञ्जक गौर मिथ्यात्वी कहने लगे । स्थानकमार्गियों के तीसरे गुरु धर्मदासजी थे । इन्होंने धर्मसिंह और लवजी दोनों को ना पसन्द कर दिया । और आप बिना किसी गुरु के खुद ही वेष पहिन के ाधु बन गए । क्या ऐसे स्वच्छन्दाचारी लौंका ाह के अ यायी बन कते हैं ? नहीं !

यदि हम यही बात वा० मो० ाह के लेख से बता दें तो ाप को यह पता चल जायगा कि स्था० मत से जैन समाज और लौंकागच्छ को कित नुकसान हुआ है, और सांप्रत में भी हो रहा है । देखि ये–

श्रीमान् वा० मो० शाह—

× × × इतना इतिहास देखने के बाद म पढ़ने वालों का ध्यान एक बात पर खींचना चाहता हूँ ाकि स्थानकवासी, वा साधु मार्गी, जैन धर्म का जब से पुनर्जन्म हुआ तब से यह धर्म अस्तित्व में आया और आज तक यह जोर शोर में था ही नहीं ! अरे ! इसके तो कुछ नियम भी नहीं थे ।

---

१ श्री मणिलालजी अपनी वीर पट्टावली के पृष्ठ २०५ पर लिखते हैं कि लवजी खंभात में जाकर अपने गुरु की निन्दा की तब लवजी के नाना वीरजी बोहरा ने खंभात के नवाब पर पत्र लिखा कि लवजी को नगर बाहर निकाल देना ।

मतियों से अलग हुए और मूर्ति पूजा को छोड़ा कि ढूंढिया हुए × × × ।"

ऐति० नोंध० पृष्ठ १४२

× × ×

× × × मेरी अल्प वुद्धि के अनुसार इस तरकीब से जैन धर्म का बड़ा भारी नुकशान हुआ, इन तानों के तेरह सौ भेद हुए ।

ऐति० नोंध० पृष्ठ १४१ ।

इस प्रकार स्थानकमार्गियों से हुए जैनधर्म के कसान को स्वी ार करते हुए न: मतमदान्धता से लौंकाशाह के अनुयायियों पर किस र रोष प्रकट करते हैं। जरा यह ध्यान लगा कर न लीजिये। ० मो० शाह ने पनी प पात पूर्ण बुि से अपनी ऐति० नो० में लि । है कि:—

"लवजी ······ इन्होंने साधुता स्वीकार साधुमार्गीयों के अनुयायी बनाये इसी समय से चतुर्विध संघ की जगह पंचविध संघ हुआ अर्थात् साधु साध्वी श्रावक-श्राविका ऐसे संघ के चार अंगों में 'यति' यह अर्ध साधु का एक अंग और शामिल हुआ ।"

ऐ० नो० पृष्ठ १८ ।

लौंकागच्छ वालों के लिए यह । कम अपमान की बात है वि उनकी गिनती चतुर्विध श्री संघ में न हो ? क्या यह ानकमार्गियों का लौं गच्छ के प्रति न्तर्निहित द्वेष, या विद्रोह नहीं है ?। इस दशा में स्थानकमार्गी लौंकाशाह के अनुयायी कैसे हो सकते हैं? क्या लौं गच्छ के यति और श्री पूज्य तथा इनके अनुयायी इ बात को नहीं मझते होंगे ?

ंभव है स्थानकमार्गियों यह विचार हो कि लौंकागच्छ के यति, श्री पूज्य, और श्रावक ोग ँह पर डोराडाल मुँहपत्ती नहीं बाँधते हैं, और जैन मन्दिर मूर्त्तियों ो मान कर पूजन, वन्दन करते हैं. अतः इनका विरोध कर इनकी इस मान्यता को बदल कर पने मे मिला लें। परन्‍ अब लौंकागच्छीय यति श्रीपूज्य और उनके वक वर्ग इतने भोले नहीं कि लौंकाशाह के सिद्धान्त और ाचार व्यवहार के विरु , मत स्थापन करने वालों के फन्दे में फँस कर शास्त्र सम्मत मूर्त्तिपूजा को करना छोड़ दें। और शा विरु डोराडाल र दिन भर मुँहपर मुँ पत्ती बाँध कर एक नयी आपद् मोल लें ? कदापि नहीं।

अब हम हमारे पाठकों को यह बतला देना चाहते हैं कि लौंकाशाह की मान्यता एवं आचरण में, ौर स्थानकमार्गियों की मान्यता ौर ाचरण में ा भेद हैं।

(१) लौंकाशाह के नुयायियों ी ुरु से आज पर्यन्त मान्यता मूल ३२ सूत्र तथा उन पर किये ुए पार्श्वचंद्रसूरि के टब्बे पर हैं और स्थानकमार्गियों ने प र्श्वचंद्र सुरि के टब्बे में बहुत फेर फार किये हैं तो एक मान्यता कैसे समझी जा सके।

(२) लौंकाशाह के यायियों ी ३२ आगमों के धार से मान्यता है कि जैनमन्दिर मूर्त्तियों की द्रव्य भाव से पूजा करना कल्याण का कारण है और ब त से लौंकागच्छ के ाचार्यों ने मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, और उनके उपाश्रय में ाज भी देरासर और मूर्त्तियां स्थापित हैं। किन्तु स्थानकमार्गी लोग मूर्त्तिपूजा को ई स्वीकार नहीं करते हैं।

इतना ही नहीं पर वे तो मूर्त्तिपूजा ो ने ों ी ी पेट निन्दा रते हैं।

(३) लौं ाशाह के नुयायी सा यि , प्रति म ादि क्रिया करते मय र प जी रखते हैं, किन स्थान र्गी लोग हि । स्थापना के, विना देश के ही क्रिया लेते हैं।

(४) लौंकागच्छीय लोग पने त के प्रारंभ से ाज ी मुंह पर डोरा डाल मुँह ी नहीं बांधते हैं, पि बाँधनेवालों का घोर विरोध रते हैं ौर स्थानकमार्गी लोग दिन भर मुंहपर मुंहपत्ती बाँधते हैं।

(५) लौंकागच्छीय यति स्थानान्तर करते मय थवा गमनाऽऽगमन समय हाथ में डंडा ौर कंधे पर मली र ते हैं। तब स्थानकमार्गी लोग छ नहीं रखते, किंतु रखने वालों को बुरा बताते हैं।

(६) लौंकाशाह के अनुयायी गोचरी की ोली हाथ की लाई पर र ते हैं और जीव रक्षा के निमित्त झोली पर पडिलह भी र ते हैं, तथा त्रों में आया हुआ आहार गृहस्थों ो दिखाते नहीं हैं। इनसे विरुद्ध स्थानकमार्गी गोचरी की झोली लटकती हुई हाथ में रखते हैं और उन पर ढकने ो पड़िलह ादि छ नहीं रखते। तथा ाहार पूरित पात्रे कन्दोई की दूकान की तरह गृहस्थों के घर में इधर उधर फैला कर र ते हैं। जिनसे तन्निविष्ट आहार को गृहस्थ दे लेते हैं। कभी कभी तो यहाँ त हो जाता है कि गृहस्थ के घर के नादान ौर बोध बच्चे त्र स्थित लड्डु ों को दे उनके लिए मचल बैठते हैं। ऐसी हालत में ब ों के रोने का प उन्हें लगता है।

(७) लौंका ाह के   यी चोलपटे के दोनों पल्ले खुले र र उन्हें पहिनते हैं, परं स्थान मार्गी दोनों पल्लों की सि ाई कर तहम की तरह धारण करते हैं।

(८) लौंकाशाह के नुयायी चद्दर धार ग करते हैं, पर छाती पर चद्दर की गाँठ नहीं लगाते, जैसे स्थानकमार्गी लोग लगाते हैं।

(९) लौंकाऽनुया ओघा प्रमाणोपेत रखते हैं, परंतु स्थान० प्रमा ऽतिरि लम्बा ोघा र ते हैं।

(१०) लौंकाऽनुयायी पने नाम से स्थानक बना के फिर खुद उसमें नहीं रहते थे किंतु स्थानकमार्गी, ाधुओं के नाम से स्थानक बनते हैं और उसमें वे स्वयं भी निवा ा करते हैं। यद्यपि कई एक लोगों ने भी २ स्थानकों में ठहरना महा पाप समझ कर त्याग किया है, फिर भी उन्हीं स्थान ों पर पौषधशाला का नाम र उनमें ठहर जाते हैं।

(११) लौंकाऽनुयायी चित्त के त्यागी थे, और शुद्ध गरम पानी ते थे, कि स्थानकमार्गी धोवण के पानी को और वह भी लाति मण में पीजाते हैं।

(१२) लौंकाऽऽ यायी बाजारों में घूम कर हलवाइयों के यहां से धोवण लेकर बिचारी मूकगौओं के आड़ नहीं देते हैं, परंतु स्थान ार्गी उल्टे इस कृत्य के रने को आप अपने को उत्कृष्ट समझते हैं। ※

※ हलवाई अपने दुकान का बेसन आदि का धोवण, गौओं की कुंडियों मे डालते हैं जिससे वे अपनी आत्मा को तृप्त करती हैं, परन्तु ये दयाऽवतार तो उन दीन गौओं को यह त्याज्य पानी भी नसीब होने नहीं देते।

(१३) लौंकाऽनुयायी कंद मूल । ाहार ।क- त्र में ।ी नहीं ग्रहण करते थे, ौर स्थान० ंदा (प्याज) लसण दि को भी लेने ॑ बाज नहीं ाते।

(१४) लौंकाऽनुयायी वासी अ , विद्वल ।दि पात्रों में हीं लेते हैं परंतु स्थानक० उन्हें बड़े मजे से हड़प कर जाते हैं।

(१५) लौंकाऽनुयायी ऋतुवती स्त्रियों का बड़ा भारी परहेज रखते हैं किंतु स्थानक० उनके हाथ से बनी हुई रोटी भी ॑ लेते हैं, यही नहीं किंतु स्थानक० ऋतुमती ार्याएं (आर-जियों) सूत्रों को भी पढ़ लेती हैं और गोचरी को चली जाती हैं। इसीलिए तो गृहस्थ लोग जब पापड़, वड़ियें बनाते हैं तब अपना द्वार बंद कर देते हैं। क्योंकि को भय रहता है कि ीं ारजियें ागई तो "पापड़-वड़ी" बिगड़ जावेंगी।

(१६) लौंकाऽनुयायी तीन दिन ॑ धिक दिनों का ाचार ।दि नहीं ाते थे, परंतु स्थानक० सर्वभक्षी हो रहे हैं।

(१७) लौंकाऽनुयायी प्रायः श्रावकों के घरों से ही गोचरी लेते हैं ोंकि वहाँ हार पानी की पूरी द्धता रहती है। इ के विरुद्ध स्थानक० ऐसे घरों से भी भि ा ले लेते हैं, जहाँ न तो जैनाऽऽचार की द्धि रहती है और न साधुओं की महत्ता ा ही खयाल रहता है। इत्यादि—

इन ॑ तिरि भी ऐसी अनेक क्रि ाएँ हैं जो लौंकाशाह के अनुयायी अपनी परम्परा से ही करते आए हैं, उन्हें स्थानक-मार्गी बिल ल नहीं करते हैं। और कई एक ऐसी क्रियाएँ हैं जिन्हें केवल स्थानकमार्गी करते हैं, लौंकानु यी नहीं।

इत्यादि अनेक कारणों से स्थानकमार्गी लौंकाशाह के अनुयायी सिद्ध नहीं होते हैं। हाँ ! यह लौंकाशाह के मत के अंदर ` निकला । एक स्व न्द मत है। देखि ये:—

(१) ध सिं जब संघ के बाहिर हुए तो किसी गुरु के प न जा कर स्वयं साधु वेश परावर्तन करके साधु बन गए।

(२) वजी को जब गच्छ ` अलग किया तो, लवजी ने पने पूर्व गुरु को ही हीनाऽऽचारी समझ स्वयं वेश बदला के साधु बन गया।

(३) धर्मदासजी गृहस्थ होकर भी बिना गुरु के स्वयं वेश पहिन दीक्षि त होगए।

यह प्रवृत्ति (बिना गुरु के स्वयं दीक्षित होने की) इनमें अद्याऽवधि भी पूर्ववत् वर्तमान है।

इस मत (स्थानक०) की नींव प्रारंभ से ही इतनी दुबली थी कि लौंकाशाह के विरुद्ध होने पर भी इनका काम लौंकाशाह के बिना नहीं चल सका ौर ाखिर इनके आगे नत मस्तक होना पड़ा, तथा सांप्रत में भी इनके यति और श्रीपूज्यों से द्वेषाऽऽधिक्य होने पर भी इन (स्थान०) को उनके आगे काम पड़ने पर जबरन झुकना पड़ता है।

अन्त में हम विशेष कुछ न लि यही लिखते हैं कि प्रकृत विषय पर नाना प्रकरणों से हम खुलासा कर चुके। अब शेष प्रकरणों में अविशष्ट विषयों का वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे तदनुसार पाठक इसके गले प्रकरण (२३) में जैन साधुओंका आचार व्यवहार, लौंका ाह के समय मे कैसा था, इसका विवरण पढ़ें।

करण—तेवीसवाँ

जैन ाधु ों का ा र व्य हार

जैन माज, एवं जैनधर्म ा मुख्य उद्देश्य आत्म कल्याण करने का है ौर ात्म-कल्याण साधने वालों की तीन श्रेणियें कही गई हैं। (१) प्रथम तो सम्यग् दृष्टि । (२) दूसरी अणुव्रतधारी श्रावक। ौर (३) तीसरी श्रेणी। सम्यग् दृष्टि ौर श्रावक के लिए उनकी इच्छाऽनु ल नियम रक्खे गए हैं, पर साधुओं के लिए तो कठिन से ठिन नियमों ा विधान है। संसार का कोई भी धर्म, जैनों के ा धर्म की समता नहीं कर सकता। जैन साधुओं के आचार दो प्र ार े कहे गए हैं। प्रथम तो ध्यवसाय ौर दूसरा, क्रियात्म । इनमें भी यदि व्यक्ति गत तौर से दे ा जाय तो ए दूसरे के चारित्र में कोई बराबरी नहीं है। क्योंकि रित्र का पा न करना यह चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर है। जिसको जितना, जितना चारित्रमोहनीय र्म ा क्षयोप म आ है, वह उतना ही आचार का पालन र केगा। इसी ारण ा कारों ने चारित्र के भी कई दर्जे बतलाए हैं जैसे:—

( ) *सामायिक चारित्र, मूल, उत्तरगुण का परिसेवी (दोषों का लगना) या अपरिसेवी (दोषा का अभाव)।*

(२) छेदोपस्थापनीय चारित्र मूला उत्तर, गुण परिसेवी या अपारिसेवी

(३) परिहार विशुद्ध चारित्र अपरिसेवी

(४) सूक्ष्म सपराय चारित्र अपरिसेवी

(५) यथाऽऽख्यात चारित्र अपारिसेवी

इनके अतिरिक्त छः प्रकार के निर्ग्रन्थ बतलाये हैं।

(१) पुलाक निर्ग्रन्थ मूल व उत्तर दोनों का प्रति सेवी।

(२) बकुस निर्ग्रन्थ मूल गुण अपरिसेवी, उत्तर गुण पारिसेवी।

(३) प्रतिसेवना निर्ग्रन्थ मूल, उत्तर गुण परिसेवी

(४) कषाय, कुशील निर्ग्रन्थ अपरिसेवी।

(५) निग्रंथ निर्ग्रन्थ ,,

(६) स्नातक निर्ग्रन्थ ,, इत्यादि

यदि समग्र साधुओं का चारित्र एक सा होता तो पांच ति और छः निग्रन्थ बतलाने की आवश्यकता क्या थी ?। पर ऐसा हो नहीं सकता।

अब आप भगवान् महावीर के समय की बात को ही देखिये—एक सामायिक चारित्र वाला और दूसरा सामायिक चारित्र वाला के चारित्र पर्यव आपस में अनन्त गुण न्यूनाधिक हैं। इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय चारित्र के पर्यव में भी अनन्त गुण हानि वृद्धि होती है। वकुश निग्रन्थ के भी एक-एक के आपस मे अनंत गुण हानि वृद्धि होती है।

जब एक चारित्र । ही ।प में यह हाल है तब यथाख्यात चारित्र की पेक्षा तो छेदोपस्थापनीय चारित्र नन्त गुण हीन है ही। पर यह नहीं कहा ।ता कि इससे छेदोपस्थापनीय को चारित्र ही नहीं समझा जाय।

इस मय के ।धुओं में प्रायः छेदोपस्थापनीय चारि और ब रा निर्ग्रन्थ ही विशेष पाये जाते हैं, जिन । भाव मूलगुण उत्तरगुण प्रति सेवी या प्रति सेवी है।

अध्यवसायों को उत्कृष्ट तथा स्थिर भाव से र ने में जैसे चारित्र मोहनीय । तो योप म है ही, पर ।थ में रीर के संहनन भी हैं। ज्यों ज्यों संहनन की मन्दता है, त्यों त्यों ध्यवसायों की भी अस्थिरता है। भगवान् महावीर के मय में भी छेदोपस्थापनीय चारित्र था। ।ज भी छेदोपस्थापनीय चारित्र है। और भविष्य में पंचम आरा के अन्त त भी छेदोपस्थापनीय चारित्र रहेगा। परन्‍ भगवान् महावीर ` मय के ंहनन आज ` संहनन और पंचम आरा के अन्त के संहनन में तारतम्य अवश्य रहेगा। इस कारण एक एक संयम के असंख्य २ स्थान और अनन्त २ गुण हानि वृद्धि शा कारों ने बतलाई है। तः एक साधु ` चारित्र पर्यव हीन देख, दूसरे साधु को उसकी निंदा न कर प्रिय वचनों से सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। यदि प्रयत्न करने पर भी उस पर असर न हो तो आप को अपनी ।त्मा का संयम रखना जरूरी है। पूर्वाचार्य इन बातों के पूर्ण जानकर थे। उन्होंने चैत्यवास और शिथिलाचार के समय उनको धारने का प्रय किया; परन्तु उनको एक किनारे कर अपना पक्ष दुर्बल करना नहीं चाहा।

सा कि लौं ाह ने किया। प्रथम तो लौंकाशाह जैन शास्त्रों से अनभि था, दूसरा उ समय का ज्ञान नहीं था, तीसरा उसमें इतनी योग्यता भी नहीं थी, कि वह बिगड़ी का सुधार कर सके। इतना ही नहीं पर उसको हानि लाभ का भी विचार नहीं था कि मैं जो कुछ अनर्थ कर रहा हूँ उसका भविष्य में परिणाम कैसा होगा ? इसका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं था। जिस शिथिलाचार को लौंकाशाह दो हजार वर्षों की अनेक परिस्थितियों के अन्त में जो व्यक्तिगत देख रहा था, वही शिथिलाचार आपके अनुयायियो में थोड़े ही समय में सर्व व्यापक हो गया था। उदाहरणार्थ नीचे के कोष्ठक में देखिये।

स्था० कथनानुसार लौंकाशाह के समय में कतिपय जैनयतियों का आचार.	लौंकाशाह के बाद १०० वर्षों में लौंकाशाह के अनुयायियों का आचार
१—उपासरों में स्थिर वास करना।	उपासरों में स्थिर वास करना।
२—गादी तकिया आदि को रखना।	गादी तकिया आदि को रखना।
३—पालखी में बैठना।	पाल ी में बैठना।
४—चमर, छत्र, चपड़ास रखना।	चमर, छत्र, चपड़ास रखना।
५—शिर पर बालों का र ना।	शिर पर बालों का रखना।
६—खमासणे वेहरने जाना।	खमासणे वेहरने जाना।
७—तप तैलादि में पैसा लेना।	तप तैलादि में पैसा लेना।

८—व्याख्यान के अन्त में चन्दा करना।	व्याख्यान के में चंदा करना।
९—रात्रि जागरण रना।	रात्रि जागरण ना।
१०—रुपये पैसे र ना।	रुपये पैसे र ना।
११—फरमान, पटा, परवाना,	रमान, पटा, परवाना र ना।
१२—उपासरों में देरासर ौर मूर्त्तियों का र ना।	उपासरों में देरासर ौर मूर्त्तियों का र ना।
१३—रात्रि में दीपक कर ना।	रात्रि में दीपक करवाना।
१४—छोटे छोटे बालकों को चेला बनाना।	ोटे छोटे ल ों ो चे बना ।
१५—मंत्र यंत्र करना।	मंत्र यंत्र करना।
१६—निमित्त बताना।	निमित्त ब ना।
१७—नगर प्रवेश की गवानी कराना।	नगर प्रवे की वानी कराना।
१८—सात क्षेत्र में धन निकलवाना।*	सातक्षेत्र में निकलवाना।
१९—पुस्तक द्रव्य से ज ना।	पुस्तक द्रव्य से पुज ना।
२०—संघ पूजा करवाना।*	संघ पूजा करवाना।
२१—प्रति कर ना।*	प्रतिष्ठा करवाना।
२२—पर्युषणमें पुस्तक महोत्सव*	पर्युषण में पुस्तक महो ।
२३—सोने चांदी की ठव ी (पुस्तकाधार) र ना।	सोने चांदी की ठवणी (पुस्तकाधार) र ना।
२४—पगवन्दन करते व व पर चलना।	पगवन्दन रते व व पर चलना।

* इन कार्यों का साधु उपदेश दे सकते हैं पर इसमे इन ीं ओट में स्वस्वार्थ साधन करना ज़रूर बुरा है।

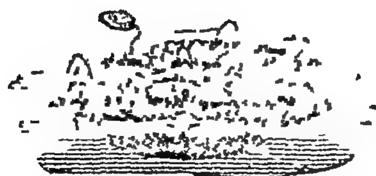
इत्यादि कुच्छ यति आचार शैथिल्य होने पर भी लौंकाशाह के मयमें जैनशासन के अन्दर बहुत से आचार्य और साधु-उग्रविहारी, शुद्धाचारी, महाविद्वान् तथा धर्मनिष्ठा वाले भूमण्डल पर विहार करते थे। परन्तु कई यति लिङ्गधारी तथा उपासरा बद्ध भी थे, जिनके आचार में दोष देख लौंकाशाह ने नया मत निकालने का दुस्परिश्रम किया, परन्तु लौंकाशाह ने जिस कारण को देख जैन शासन का अंगच्छेद किया था, उस कटे ए अंग में भी वही कारण सौ वर्ष के पहिले २ ही आ घुसा, जो उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट विदित होता है। फिर भी लौंकाशाह के समय में जैन यतियों का आचार इतना नष्ट नहीं हुआ था जितना लौंकाशाह के १०० वर्ष बाद लौंकाऽनुयायी यतियों का नष्ट हुआ। इसका कार हमारी बुद्धि से तो कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का अविवेक ही था।

जब लौंकाशाह के अनुयायियों का पतन अपनी चरम सीमा तक पहुँच ग , तब भी इनके अन्दर कोई ऐसा महापुरुष प्रकट नहीं हुआ, जो लौंकाशाह के मूल सिद्धान्तों को समझ कर इस बिगड़ी दशा को सुधारता ? जैसे कि यतियों की शिथिलता । उद्धार पंन्यासजी श्री स विजयजी गणी ने किया।

परन्तु पन्यासजी का किया उद्धार लौंकामत के यति धर्मसिंह लवजी जैसे अ मनुष्यों के सदृश नहीं था क्योंकि धर्मसिंह एवं लवजी ने न र ी जिनाज्ञा ौर न रखी लौंकाशाह की मर्यादा। इत ही नहीं पर उन दोनों यतियों ने तो खास लौंकाशाह के सिद्धा को भी मिथ्या ठहराने की उद्घोषणा करदी और ना मन कल्पित नया मत चलादिया जिसमें भी इन दोनों के न्दर भी विचारभेद, मतभेद, रि न्तभेद था, इतना ही नहीं

पर ए एक को उत्सूत्र प्ररूप मिथ्यात्वी बतलाने में भी नहीं चूकता था तब श्री सत्यविजय पन्या ने गुरु आज्ञा ले कर केवल शिथिलाचार निवारणार्थ कई नियों को साथ लेकर ि या उद्धार कर उग्रविहार करते हुए अनेक भव्यों को उग्रविहारी बनाये। जैसे धर्मसिंहजी और लवजी के विषय में लौंकागच्छियों की पुकार है कि ये दोनों व्यि गच्छ बाहर हैं उत्सूत्र प्ररूपक हैं, निन्हव हैं, इत्यादि पर श्रीमान् पन्यासजी के विषय में उस समय से आजपर्यन्त ि ी ने ऐसा एक शब्द तक भी उच्चारण नहीं किया है बल्कि शिथिलाचारियों ने भी आपका उपकार मान यथा विध करण ही ि । है। अतएव विद्वत्ता पूर्ण शान्ति के साथ ि या उद्धार इसका नाम हो है और पन्यासजी का किया हु । क्रिया उद्धार आज तक उसी रूप में चल भी रहा है।

इतना विवेचन करने के बाद अब हम इस विषय को यहीं विश्रांति दे चौबीसवें प्रकरण में हिंसा, अहिंसा की समालोचना करेंगे, ठ उसकी राह देखें।



करण चौबीसवां

हिं ा ौर अहिंसा की समालोचना ।

जैन ा कारों ने हिंसा तीन तरह को बताई है, (१) अनुबन्ध हिंसा (२) हेतु हिंसा और (३) स्वरूप हिंसा ।

(१) अनुबन्ध हिंसा—चाहे गौत स्वामी जैसा चारित्र पाले, मक्खी की पांख तक को तकलीफ न दें परन्तु वीतराग की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाले, उत्सूत्र भाषण करने वाले और मिथ्यात्व का सेवन करने वाले जीवों को अनुबंध हिंसा के कर्म बंधन होते हैं और वे अनन्त काल तक संसार में परिभ्रम करते हैं। जैसेः—जमाली गौसालादि निह्नव तथा अभव्य जीव भी इसकी गिनती में शामिल हो जाते हैं ।

(२) हे हिंसा—गृहस्थ लोग अपने जीवन के साधनार्थ नाना काम करते हैं, जैसेः—घर हाट करना, रसोई पानी करना, व्यापारादि कार्य करते हुए धन का उपार्जन करना, प्रजा के जान माल की रक्षार्थ संग्राम करना, पंचेन्द्रियों की विषय हेतु हिंसा करना, इत्यादि हिंसा को हेतु हिं कहते हैं। सम्यग् दृष्टि जीव को इन हिंसाओं का प्रति मण प त्ताप रने से इतना कर्म बन्धन नहीं होता है ।

(३) स्वरूप हिंसा—जो भ योगों की प्रवृत्ति करने पर रूप र्थात् दे ने में हिंसा नजर आती है, परन्तु परिणाम

वि द्ध होने से उसके भ कर्म नहीं बँधते हैं:—जैसे गुरुवन्दन, देवपूजा, प्रभावना, स्वामिवत्सलता, दीक्षा महोत्सव आदि ध ार्य करने में अशुभ कर्मों का बन्धन नहीं होता है।

धर्म क्रिया की प्रवृत्ति में हिंसा बतला र उसका विरोध करना यह एक शास्त्रों की अनभिज्ञता ही है। जरा निम्नो शा - कारों के वचनों पर याल करें।

न य किंचि वि पडिसित्तुं, नाणुण्णायं च जिणवरिंदेहिं।
मोत्तं मेहुणभावं, ण तं विणा रागदोसेहिं॥

भावार्थ—एक मैथुन को वर्ज कर किसी में एकान्तत्व नहीं हा है ोकि मैथुन की प्रवृति विना राग द्वेष के हो नहीं ती शेष कार्यों में शुभा भ दोनों प्रकार का अध्यवसाय होता है वास्ते किसी का न तो एकान्त निषेध है ौर न एकान्त ीकार है स्याद्वाद के रहस्य को जरा समझो।

"अप्रमत्तस्य योगनिवन्धनप्राणव्यपरोपणस्य अहिंसात्व-प्रतिपादनार्थं हिंसातो धर्म. इति वचनम्, राग-द्वेष-मोह-तृष्णादि निवन्धनस्य प्राणव्यपरोपणस्य दुःखसवेदनीयफलनिर्वर्तकत्वेन हिसात्वोपपत्तेः" इत्यादि।

"सन्मति तर्क श्री अभयदेवसूरि कृत टीका विभाग ५ पृष्ठ ७३०"

भावार्थ— प्रमादी के योगों से यदि हिंसा भी होती हो तो उसको अहिंसा ही समझना चाहिये। कारण राग द्वेष मोहादि सं प्रमादी के मनादि योग ही हिंसा का कार होते हैं ौर इनसे ातावेदनीय आदि कर्म बंध होता है पर प्रमादी

भ योगों से यदि हिंसा भी होती हो तो सातावेदनीय आदि कर्मों का आगमन होता है क्योंकि वीतरागावस्था में भी हिंसा होने का प्रसंग आता है परन्तु उनके योग शुभ होने से असातावेदनीयादि कर्म बन्ध न होकर सात वेदनीय कर्म बन्धता है वह भी स्वल्प काल का, इसका ही नाम अनेकान्तवाद है।

असुहो जो परिणामो सा हिंसा।

यस्मादिह निश्चयनयतो योऽशुभपरिणामः सा हिंसा ॥

'विशेपावश्यक सूत्र'

भावार्थ—मानसिक अशुभ भावना को ही हिंसा कहते हैं और वा व यह है भी यथार्थ क्योंकि अशुभ योगों की प्रेरणा ही हिंसा का कारण है।

असुहपारिणामहेउ जीवाबाहो त्ति तो मयं हिंसा।

जस्स उ ण सो णिमित्तं संतो वि ण तस्स सा हिंसा

"विशेपावश्यक सूत्र"

भावार्थ—आदि जीव हिंसा अशुभ भावना का कारण बनते हों तो हिंसा कही ज ती है और अ भ भावना का कारण नहीं बनता हो तो वह हिंसा ही अहिंसा समझनी चाहिये। जैसे बहता पानी से साध्वी को निकाल लाना यह देखने में हिंसा है पर भ ावना न होने के कारण वह अहिंसा ही है।

'व्यवस्थितमिदम् प्रमत्त एव हिंसकः नाप्रमत्त इति'

'तत्वार्थ सूत्र टीका आचार्य सिद्धसेन सूरि।'

भावार्थ—प्रमत्तप हिंसा करे तब ही हिंसा कही जाती है प्रमत्तपन को नहीं।

जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा;।

जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा।

आ ंग सूत्र १-४

भावार्थ--जो देखने में आश्रव (कर्मबन्ध) के स्थान हैं पर शुभ भावना होने से वे संवर के ही स्थान कहाजा सकते हैं और जो देखने में संवर (कर्मनिर्जरा) के स्थान है वह अ भ भावना के ारण आश्रव के स्थान बन जाते हैं जैसे प्रन्नचंद्र राजर्षि यमधारी होने पर भी अशुभ भावना से नरक के दलक एकत्र कर लिया था और ऐलापुत्र कुमर ने नाटक करते ए भी भ भावना से केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

"सुहजोग पडूच नो आयारंभा नो परारंभा नो तदुभयारंभा"

श्री भ ती सूत्र श० १-२,

भावार्थ—जहाँ शुभ योगों की प्रवृति है वहाँ न तो आत्मारंभ है न परारम्भ है और न उभयारम्भ है र्थात् भ भावना है वह संवर ही है।

जे जत्तिया य हेउ भवस्स ते चेव तत्तिया मुक्खे।

सर्वएव ये त्रैलोक्योदरविवरवर्त्तिनो भावा रागद्वेषमोहात्मनां पुंसां संसारहेतवो भवन्ति, त एव रागादिरहितानां श्रद्धामताम-ज्ञानपरिहारेण मोक्षहेतवो भवन्ति इति।

'श्री ओघनिर्युक्ति सूत्र'

भावार्थ—तीनों लोक में जो पदार्थ रागद्वेष मोह एवं अ भ वना ला को राग(र्म बन) के कारण हैं वे ही पदार्थ राग

रहित प्रमादी एवं भ भावना वाले जीवों को वैराग्य (कर्म-निर्जरा) का कारण होता है।

इन ास्त्र वाक्यों से प्रत्येक समझदार अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि हिंसा अहिंसा का मूल कारण शुभाशुभभावना ही हैं जब पूजादि धर्म कार्यों में शुभ भावना है तो वहाँ हिंसा हो ही नहीं सकती है जो देखने मात्र की हिंसा है परन्तु वह कर्म निर्जरा और भ कर्मों का हेतु है।

देववन्दन, गुरुवन्दन, आहार, वि र, निहार तथा गुरु ` आगमन समय में सामने जाना, रवाना होते समय पहुँचाने को जाना आदि धर्म कार्यों में शुभ योगों की प्रवृत्ति होने के कारण इन मे हिसा होते हुए भी इसे रूप हिंसा का रूप दे दोषाऽभाव का कारण बताया गया है।

इसी प्रकार पूजा, प्रभावना, स्वामिवात्सल्य, दीक्षा महोत्सव, मृत्यु महोत्सव आदि धार्मिक कृत्यों के लिए भी ामझ लेना चाहिए। और धर्म विधान इन दोनों समुदायों में सदृशतया वर्त्तमान है। तथापि कई एक लोग कीय मत-मोह के कारण आप दया-धर्मी बन दूसरों को हिंसाधर्मी बताते हैं। पर वे प्रत्यक्ष में नहीं आकर या तो ले ों में लि ते हैं या गुप्त रूपेण भोली भाली औरतों के सामने पनी इस निकृ ः विद्वत्ता का दिग्द-र्शन कराते हैं। इस लिए मै आज सर्व साधारण के जानने को यहाँ नीचे सम तुलना कर विस्तृत रूप से यह बता देता हूँ कि वास्तव में हिसा ौर हिंसा की मात्रा किस वर्ग में विशेष है।

मूर्त्ति पूज जैन	स्थान मार्गी ै न
१–बड़े २ मन्दिर बनाते हैं पाठशाला, पींजरापोल बनाते हैं।	आलीशान स्थानक बनाते हैं। पाठशाला, पींजरापोल ब ते हैं।
२–मूर्त्तिएँ बनाते हैं जिसमे पृथ्वीकाय का ारम्भ को भभावना होने से रूप हिसा समझते हैं।	साधुओं की मूर्तियां या फोटू उतराते हैं उसमें पृथ्वीकाय ` संख्यात गुणा धिक ज - काय की हिंसा होती है।
३–मूर्त्तियों तथा साधु ों के फोटुओं के ब्लॉक बना के स्तकों में चित्र देते हैं।	तीर्थङ्करों के, पूज्यों के, ौर साधुओं के फोटो के ब्लॉक ब पुस्तकों मे चित्र देते हैं।
४–व्याख्यान ` लिए मण्डप यार होते हैं।	भाषणों के लिए मण्डप बनवाते है।
५–दीक्षा का महोत्सव धाम धूम ` होता है।	दीक्षा का महोत्सव ठाठपाट से होता है।
६–स्वामि वात्सल्य होता है।	स्वामिवात्सल्य होता है।
७–नारियल ादि की प्र । होती है।	प्रभावना नारियल आदि की होती है।
८–तार्थ त्रार्थ संघ निकाले जाते हैं पर वे शीत उष्णाल में ही जाते हैं। चातुर्मास में नहीं जाते हैं।	पू ों के दर्श र्थ संघ जाते हैं, विशेषता यह है कि चातुर्मास एवं पर्यूषणों में भी संघ की रसोई ` भट्टे जलाए जाते ।

९–बिना संघ भी साधु साध्विएँ तीर्थयात्रा करने को जाती हैं।	साधु साध्वियें शत्रुञ्जय, गिरनार, आबू, रानकपुर, सम्मेत शिखर, भद्रेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा करते हैं।
१०–४५ आगम पञ्चाङ्गी और पूर्वाचार्यों के प्रमाणिक सब ग्रन्थ मान्य रखते हैं।	जैन साहित्य में केवल ३२ सूत्र और उस पर के टब्बे को ही मानते हैं (इतनी संकीर्ण वृत्ति है)।
११–समाचार पत्रों में अपने नाम से ले छपवाते हैं।	अ बारों में अपने नाम से लेख देते हैं।
१२–पु कें छपवाते हैं और उन पर अपना नाम भी लिखते हैं।	अपने नाम से पुस्तकें प्रकाशित कराते हैं। और अपने फोटू भी देते हैं।
१३–आचार्य व धु इरादा पूर्वक अपना फोटो खिचते हैं।	पूज्यजी व साधु स्वेच्छया फोटो खिचवाते हैं।
१४–यात्रा समय साथ में रहने वाले श्रावकों के हाथ से जो रसोई बनाई हुई है उससे आहार लेते हैं।	भ्रमण समय में साथ के गृहस्थ रहते हैं उनकी बनाई हुई रसोई से अपनी गोचरी ले लेते है।
१५–साधुओं के उपदेश से संस्थाएँ खोली जाती हैं।	साधुओं के नाम से निर्दिष्ट संस्थाएँ स्कूल आदि खुलवाते हैं।
१६–पुस्तकों के भण्डार रखते हैं।	पुस्तक भण्डार रखते हैं।

१७–साधु सम्मेलनादि में और शासन कार्यों में हजारों ला ों रुपयों का खर्चा होता है।

१८–जैनों मे धर्म की और धर्मानुकूल समाज व जाति की उन्नति के लिए कार्य किया जाता है। उसमें अनेक प्रकार की हिंसा होती है, जिसे स्वरूप हिं । मानते हैं। इससे शुभ कर्म और शुभगति प्राप्त होती है। और साधुओं का विहार, नदी से पार उतरना, गोचरी प्रति लेखन, थंडिल वन्दन करने ादि में भी रूप हि होती है।

१९–साधुओं का मृत्यु महोत्सव।

२०–तीन दिन के बाद आचार नहीं ाते हैं क्योंकि उसमें संख्य जीवोत्पत्ति होती है।

२१–रांधा हुआ वासी अन्न नही खाते हैं। जिसमें अन्न ` साथ पाणी रहा हो उसे वासी कहते हैं, ऐसे

ाधु सम्मेलनादि कार्यों में ारंभ और ला ों रुपयों का र्चा होता है।

धर्म, समाज, जाति ादि भ ों में हिंसा होती है। उसे ये लोग, मन्दबुद्धि ौर बोध बीज का ना होना मझते हैं फिर भी गुरुकुल बोर्डिंग लवाते हैं। साधुओं की गोचरी, थंडिला, विहार, नदी उतरना, नाव में बैठना, पूंजन, प्रतिले न, गुरु-वन्दन आदि कार्यों ` जो हिसा होती है, उसे अनुबंध हिंसा म वे हैं।

साधु ों का मृत्यु महोत्सव।

तीन दिन के बाद का भी ाचार । लेते हैं। भले ही में असंख्य जीवोत्पत्ति हो।

वासी पड़ा ` आ रांधा आ अ भी खा लेते हैं। जिस पर भी पने को उत्कृष्ट समझते हैं। ऐसे में चाहे

वासी अन्न में संख्य जीव पैदा हो जावे हैं।	भले ही त्रसजीव पैदा हो, उनकी इन्हें परवाह नहीं।
२२—विद्दल—कच्चा दही, स में ले ए मूंग, मोठ, चिणा, चौला दि के कच्चे या रांधे पदार्थों के मिश्रित को विद्दल कहते हैं उसमें भी संख्य जीवोत्पत्ति होती है जिसे वैज्ञानिको ने सिद्ध करके बताया है। इसे पदार्थ ग्रहण नहीं करते हैं।	कई एक लोग तो अभी, जैन कहलाते हुए भी इस पदार्थ को परिभाषिक रूप में नहीं जानते हैं। और जो जानते है वे भी लालुपता के कारण विद्दल खाते हैं और टालने वालों की उल्टी निंदा रते हैं। तथा अपना कर्म बंधन बाँधते हैं।
२३—प्रायः गरम पानी ठंडा कर के पीते हैं।	धोवण पीते हैं और उनमें भी ालातिक्रम का खयाल नहीं रखते है।
२४—तपस्या में भी गरम पानी ही पीते हैं।	धोवण तथा छास (घोल) भी तपस्या में पीलेते हैं।
२५—कपड़ा धोते है।	कई एक तो कपड़ा धोते हैं और कई एक जूंओं के शय्यास्तर (सेजातर) बनते हैं।
२६—रात्रि में चूना ल कर पानी र ते हैं और जब रात्रि में टट्टी या पेशाब	कई लोग अब गुप्त पानी रखने लगे हैं। पर कई एक अभी तक भी रात में पानी नहीं

। काम पड़ जाय तो उस पानी से शुद्धि कर लेते हैं।	रखते हैं। शौचादि । काम पड़ने पर...काम में लेते हैं।
२७—मुँहपती (हत्थग्गं) पाठानुसार वे हाथ में रखते हैं और बोलते व मुँह के आगे र लेते हैं।	मुँहपत्ती दिन भर डोराडाल मुँह ऊपर बाँध के रखते हैं। मौन करने पर या रात्रि में निद्रावश होने पर भी वह मुंह पर बँधी रहती है। जिसमें असंख्य जीवों की हिंसा होती हैं।

पाठ , इस तालिका से यं विचार कर सकते हैं कि हिंसा की मात्रा किस समुदाय में विशेष है। स्थानकमार्गियों का विशेष कहना मन्दिरों मे अष्टद्रव्य से पूजा कर विषय में है कि जो पूजा प्राचीन समय से प्रत्येक तीर्थंकर की होती थी। फिर भी यह कहना उस समय था कि जब स्थानकमार्गियो में ाडम्बर नहीं था। पूज्यों के दर्शनार्थ जाने में पाप सम ते थे। पर आज तो इनके यहां भी पूज्यजी और उनके शिष्य इन स्थानकमार्गियों ो उपदे देते हैं कि, वर्ष मे एक वार तो पूज्यजी के दर्शन करने ही चाहिएँ, तदनुसार जब पर्युषण आते हैं तो हजारों भ पूज्यजी के दर्शनार्थ यत्र तत्र एकत्रित होते हैं, और वहां आत्मकल्याण को भूल कर पा पक नादि निमित्त बड़ी बड़ी भट्टियें जलाते हैं, वि ीं रसोइये चाँवलों का गरमा गरम पानी भूमि पर ते हैं, जि ीड़ों मकोड़ों । तो ीवन्न

न्त होता ही है ! पर पाक बनाने वाले जब भट्टियों के अंदर जीलण फूलण वाले छाँणे (कण्डे) और लकड़िएं जलाते हैं, तब उनके अन्दर रहे हुए जीवों का भी परमकल्याण (!) हो जाता है ! फिर तुम्हे क्या अधिकार है ? कि आप स्वयं इतनी हिंसा करते हुएभी जब श्रावक गण भगवान् के गले में एकाध पुष्पों की माला पहिनावें तब उसको हिसा हिंसा शब्दों से चिल्ला हमें दोषी ब ते हो। क्या तीर्थंकर के समोशरण में पंचवर्णी फूलों की ढेर न होती थी ? तुम्हारे यहाँ भी सभाओ में सभापतियों के गलों को चोसरों (पुष्पहारों) से ढक देते हैं तथा रात में प्रकाशार्थ गैस बत्तीयों को जला लाखों पतंगों का होम किया करते है। क्या यह पाप नही है ? । फिर किस मुँह से कहते हो कि हम धर्मात्मा और तुम पापी हो ! एवं भगवान् को स्नान कराने के लिए खर्च ि ए हुये एक कलश जल से झट आग बबूला होकर हम को हिंसा-समर्थक साबित करते हो। जरा तो शरमाओ ! अपने घर के कुकृत्यो को तो पहिले सुधारो ! फिर हमें कहो ! अन्यथा ाप लोगो पर भी वही उक्ति चरितार्थ होगी जो हिन्दी साहित्य सम्राट् एक महात्मा ने कही है, यथाः—

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, इत्यादि ।"

अस्तु ! किसी भी समुदाय में सब मनुष्य उपयोग वाले नहीं होते हैं जैसे पूज्यों की भक्ति करने में अनेक आदमियों की त्रुटिएँ रह जाती है इतना ही क्यों पर मूल्य की अभक्ष मिठाई, आलू का शाक भुजिया ाकर दया पालने वालों और सामायिक पौसह करने वालो में भी उपयोग की शून्यता कम दिखाई नहीं

देती है। किन्तु जब एक मत-पक्षी को दूसरे निरदोष मुदाय की निंदा ही करना है तो वह स्व-पर गुणाऽगुण का विचार क्यों करेगा ? वह तो दूसरे की निंदा ही करेगा जैसा कि नीतिज्ञों का वचन है कि:—

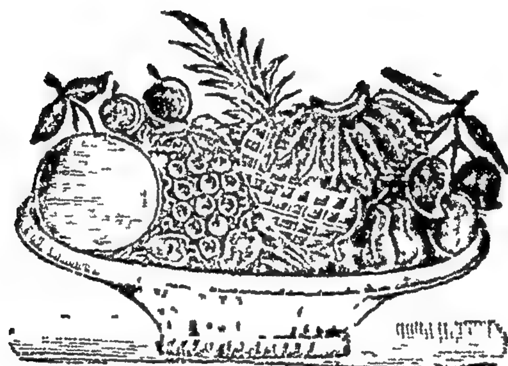
"खलः सर्पप मात्राणि, पर छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो विल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥

अर्थात्—दुष्ट व्यक्ति अपने विपक्षी के सरसों जितने वगुण भी देख सकता है और खुद के बेल-फल जितने बड़े भी अवगुण दे ता हुआ भी नहीं देखता है। किन्तु शा - कार ऐसे अधमों को मिथ्या दृष्टि कहते हैं, और आज कल के सुज्ञ माज में भी उनकी मात्र भर्त्सना ही होती है।

इसी मय मूर्त्तिपूजक माज में तो एक तरह की जागृति हो रही है और मन्दिरों में उपयोग र ने की निरन्तर कार होती रहती है, जिससे अनेक जगह तो आशातीत सुधारा हुआ है और अन्यत् सब जगह भी शीघ्र ही सुधारा होने की संभा-वना है। किन हमारे स्थानकमार्गी भाई तो हर व दया दया ी पुकार करते हुए इतने आडम्बर प्रिय हो गए हैं कि जिनका कुछ ठि ना ही नहीं है। जहाँ आडम्बर है वहाँ हिंसा वश्य है। इसे देख बहुत से समझदार स्थानकमार्गी तो अब पब्लि में पुकार करने लगे हैं कि हम में और मूर्त्तिपूजकों में कोई अन्तर नहीं है। मूर्त्तिपूजक आडम्बर कर अपनी उन्नति समझते हैं तो स्थानकमार्गी आडम्बर कर उन्नति होने की पुकार करते हैं और चलते फिरते पूज्यजी जब एक नगर से दूसरे नगर

पधारते हैं तो आठ दिन में ही सैकड़ों हजारों का धुआँ कर देते हैं। और इस कार्य मे भाग लेने वालों को कोटिशः धन्यवाद और धर्मिष्ट भाग्यशाली बताया जाता है।

शेष में हम और कुछ विशेप न लिख उपसंहार रूप में इस ारे विवेचन का सारांश "लौंकाशाह ने क्या किया ?" लिखेंगे जिसके लिए पाठक पचीसवें प्रकरण की राह देखें।



प्रकरण पच्चीसवां

श्री ान् लौंकाशाह ने क्या किया ?

संसार मे मनुष्य दो प्रकार से प्रसिद्धि को पाता है, एक तो अच्छे कार्य करने से, या जगत् ा भला करने से, तथा दूसरा बुरा कार्य करने से अर्थात् जगत का अहित करने से। अब देखना यह है कि हमारे चरित्र नायक श्रीमान् लौंकाशाह किस कोटि में थे और उन्होंने दुनियां ा भला किया या बुरा ? लौंका ाह की अधिक से अधि पुकार शिथिलता को थी, परन्तु वास्तव में यह पुकार अपमान के कारण बुद्धि का विकार ही था। कारण उस समय केवल शिथिलाचार ही नहीं पर ब त से धर्मधुरंधर जैनाचार्य उग्रविहारी भी विद्यम थे। यत् किंचित् शिथिलाचारी होगा तो भी लौंकाशाह की इ मिथ्या पुकार से उनका थोड़ा भी धार नहीं आ। यदि शिथिलाचार का ही कारण सम ा जाय तो फिर लौंकाशाह ने जैन साधु, जैनाऽऽगम, सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्र ख्यान दान और देव पूजा को बुरा क्यों समझा और उसका विरोध ों वि ा था ? परन् आपका वह पक्ष भी निर्बल रहा, कारण ाप द्वारा विरोध ी हुई ये सब बातें पुनः सब को स्वी ार रनी पड़ी।

लौं शाह के स जैन माज का संगठन बल भी बड़ा मजबूत था। सा जि और धार्मिक डोर प्रायः श्रीपूज्यों के थ में थी ौर ि की मशीन द्वारा अजैनों को जैन भी बनाया जाता था। बस ! लौंकाशाह ने सब से पहिला म तो यह कि ि जैन संगठन के टुकड़े र कर, क्या ओसवाल, क्या पोरव ,

क्या श्रीमाल, सब जातियों में फूट, कुसम्प और अशान्ति फैलाई। वह भी इतनी कि एक पिता के पुत्र होने पर भी वे दुश्मन की ँति एक एक को हलका दिखाने में और नुकसान पहुँचाने में बहादुरी समझने लगे, और लौंकाशाह के संकुचित विचार, मलीन क्रियाएँ और मर्यादा के बाहिर की दया ने शुद्धि की मशीन को तो बिल ल बन्द ही कर डाली। अर्थात् वि० सं० १५२५ तक तो अजैनों को जैन बनाने का इतिहास मिलता है। पर बाद में लौंकाशाह के पूर्वोक्त आचरणों और ग्रहकलेश से किसी भी अजैन को जैन बनाने का इतिहास नहीं मिलता है। इस तरह लौंकाशाह ने जैन समाज में फूट, सम्प व अशान्ति पैदा कर, नये जैन बन े के दरवाजे को बन्द करने के अलावा कुछ भी महत्व का कार्य नहीं किया। विशेष में हम पिछले २४ प्रकरणों में विस्तृत रूप से लि आए हैं जैसे कि:—

(१) स्थानकमार्गियों की प्राचीन समय से मान्यता थी कि लौंकाशाह एक साधारण गृहस्थ और पुस्तक लिखने वाला लहीया था।

(२) तपागच्छीय यति कान्तिविजय के नाम से दो पन्ने कल्पित ।ए वे स्था० मत से भी मिथ्या ठहरते हैं।

(३) लौंकाशाह के इतिहास के लिए स्थानकवासी समाज के प प्रमाणो का अभाव ही है।

(४) लौंकाशाह के विषय जो कुछ प्रमाण मिलते हैं उनकी सूची।

(५) लौंकाशाह का समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के न्तिम चरण से सोलहवीं श ब्दी का पूर्वार्द्ध है।

(६) लौं शाह । जन्म स्थान लींबड़ी और वंश ीमाली था।

(७) लौंकाशाह का व्यवसाय नाणावटी (कोड़ी, टकों की कोथली ले के वै ।) और पुस्तक लि ने । था।

(८) लौंकाशाह का ज्ञान—साधारण गुजराती भाषा । ज्ञान था।

(९) लौंकाशाह ने अपने लिए ३२ सूत्र तो क्या पर एक भी सूत्र नहीं लिखा था।

(१०) लौंकाशाह के समय—जैन समाज की परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि जिसमें परिवर्त्तन की आवश्यकता हो।

(११) लौंकाशाह पर भ ग्रह का न्तिम प्रभाव अवश्य पड़ा था।

(१२) लौंकाशाह को नया मत नि ालने का कारण उसके खुद का अपमान ही था।

(१३) लौंकाशाह का कोई करर सि ान्त नहीं था। वह प-मान ारण गुस्से में आकर जैन ाधु, जैनागम, मारि , पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान ौर देव पूजा का विरोध कर प्रत्येक कार्य में पाप-पाप-हिंसा-हिंसा और दया दया ही करता था, बाद में उनके अनुयायियों ने जैन-धर्म की कई ए क्रियायों को और ३२ सूत्रों को माने थे।

(१४) लौंका ाह और मूर्तिपूजा—मूर्तिपूजा विश्वव्यापी है।

(१५) लौंकाशाह डोराडाल मुँहपर हपत्ती नहीं बाँधता था।

(१६) लौं शाह में किसी विषय की विद्वत्ता नहीं थी।

। ाग्रही था।

(१७) लौंकाशाह ने लींवड़ी जैसे अज्ञातक्षेत्र में कई लोगों को अर्थ शून्य दया दया का उपदेश दिया पर वह वृढ़ा अपंग के कारण लींवड़ी के बाहिर जा नहीं सका।

(१८) लौंकाशाह ने दीक्षा नहीं ली पर उसका गृहस्थाऽवस्था में ही देहान्त हुआ था। जो हाल दीक्षा की कल्पना की गई है वह अपने पर गृहस्थ गुरु का आक्षेप मिटाने के लिए की है।

(१९) लौंकाशाह ने अहमदाबाद और लींबड़ी के अलावा कहीं भी भ्रमण किया हो ऐसा प्रमा नहीं मिलता है।

(२०) लौंकाशाह के अनुयायियों की संख्या लौंकाशाह की मौजूदगी में ७ करोड़ जैनों में से सौ पचास मनुष्यों की शायद ही हुई हो।

(२१) लौंकाशाह का देहान्त का स्थान निश्चय नहीं है पर अ मान से लींबड़ी ही प्रतीत होता है।

(२२) लौंकागच्छ और स्थानकमार्गियों की श्रद्धा, मान्यता एवं आचार व्यवहार जमीन आसमान सा अन्तर है। अर्थात् स्थानकमार्गी लौंकाशाह के अनुयायी नहीं किन्तु लौंकागच्छीय यति श्रीपूजों से तस्कृत किये हुए यतिलवजी और धर्मसिंहजी के अनुयायी है।

(२३) जैन साधुओं के आचार व्यवहार की आलोचना।

(२४) हिंसा और अहिंसा ा स्वरूप तथा उनकी समालोचना।

(२५) लौंकाशाह ने क्या किया ?

श्रीमान लौंकाशाह ने क्या किया ? इस विषय में हमारे प्रिय मित्र श्रीमान् बालजीने 'जैन प्र श' पत्र के कई अंको में प्रश्न

किये थे। उनके उत्तर वे खुद लिखने की बजाय ोई अन्य सज्जन लिखें तो अच्छा रहे। किसी ने नहीं लिखा उस हालत में मुझे लि ना पड़ा है कि लौंकाशाह ने निम्नलिखित कार्य किये हैं।

(१) भगवान महावीर ने फरमाया कि पाँचवें आरा में २१००० वर्ष तक हमारा शासन अर्थात् "साधु साध्वी श्रावक और श्राविका" अविच्छिन्न रहेगा। तब लौंकाशाह ने केवल २००० वर्षों में ही जैन साधु संस्था का स्तित्व मिटा दिया और भाणादि को बि । गुरुवेश पहना दिया। लौंका ाह ने यह प्रथम काम किया।

(२) जैन शासन के आधारस्तंभ रूप जैनागमों को लौंकाशाह ने अ ीकार कर शासन का उन्मूलन करना चाहा फिर भी पीछे से लौंको के अनुयायियों ने ३२ सूत्र माने। लौंकाशाह ने यह दूसरा काम किया।

(३) आचार्य भद्रबा जैसे चतुर्दश पूर्वधरों ने सूत्रों पर निर्युि वगैरह रचकर जैन सूत्रों को विस्तृत अर्थ वाले बनाए। उन पञ्चाङ्गी को मानने से इन्कार कर दिया। यह लौंकाशाह ने तीसरा काम किया।

(४) जैनधर्म में श्रावकों करने योग्य नित्य क्रिया सामायि , पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और दान जैसी क्रियाओं का निषेध कर बिचारे भद्रिक जीवो को आत्मकल्याण करने से बन्द किया। यह लौंकाशाह ने चौथा काम किया।

(५) जैनधर्म में प्राचीन समय से जिनागमप्रमाण सिद्ध, जैन मन्दिर मूर्तियों की मान्यता है और चतुर्विध श्रीसंघ, इस निमित्त कारण से र्थात् प्रभु पूजा, सेवा, भि कर, स्व पर का कल्या

करते थे और धर्म पर पूरा इष्ट रखते थे, पर लौंकाशाह ने ज्ञानता के वश हो हिंसा और दया के भेद को सम्यग्तया न सम विचारे भद्रिक जीवों को इष्ट से भ्रष्ट बना मूर्ति पूजा छुड़वाई। यह लौंका ाह ने पाँचवां काम किया।

(६) जिसमें देव का गुण या देव की आकृति न हो ऐसे लौकिक देवों को नमस्कार नहीं करने की जैनधर्मोपासकों की दृढ़ प्रतिज्ञा थी, पर लौंकाशाह ने संसार खात बतला के अपने अनुयायियों को छूट दी जिससे वे जहाँ मांस, मदिरा चढ़ता है वहाँ जा कर शिर झुका देते हैं। फिर भी उनको जैन मन्दिर मूर्तियों की सेवा करने में पाप समझाया यह लौंकाशाह ने छट्ठा काम किया।

(७) जैनों में प्रत्येक मास में पर्व है और पर्व के दिन विशेष धर्म कार्य करना बतलाया है। उसको छुड़ा के मिथ्यात्वी पर्व के लिए छूट देदी जिससे आज जैनों में मिथ्यात्वी पर्व का प्रचार प्रचुरता से देखने मे आता है। लौंकाशाह ने यह सातवाँ काम किया।

(८) लौंकाशाह और आपके अनुयायी वर्ग ने सूत्रों का झूठा अर्थ कर जैन मन्दिर मूर्त्तियों की निन्दा के साथ पूर्वाचार्यों का अवगुणद बोलना सि ल । और विचारे भद्रिक जीवों को दीर्घ संसार के पात्र बनाने का प्रयत्न किया। इतना ही नही पर जिनाचार्यों ने राजपूतों को मांस मदरादि का सेवन छुड़वा कर जैन, ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल आदि महाजन बनाए, पर साथ में उन आचार्यों ने मन्दिर मूर्त्तियों की भी प्रतिष्ठा करवाई। इससे लौंकाशाह ने चार्यों का नाम व उपकार भुला कर अपने

श्रावकों को कृतघ्नी बना दिया। यह लौंकाशाह ने आठवाँ काम किया।

(९) श्री संघ को शक्ति एवं संगठन रूप वज्र किल्ला को तोड़ र अर्थात् उसके टुकड़े टुकड़े कर अनेक विभागों में विभ कर दिया और उसकी शक्ति का सत्यानाश कर दिया। यह लौंकाशाह ने नौवाँ काम किया।

(१०) जैनजातियों के जाति सम्बन्धी नियम इतने तो सुदृढ़ और इतने सुन्दर थे कि अन्याय अत्याचार को स्थान तक नहीं मिलता था, परन्तु लौंकाशाह के नये मत से आपस की फूट और कुसम्प के कारण कन्याविक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह वरविक्रय आदि हानिकारक प्रथाएँ भी जैन जातियों में आ घुसी। इतना ही नहीं पर वे तो घर कर बैठ गई। यद्यपि इनको निकालने का बहुत प्रयत्न किया जा रहा है, परन्तु संगठन के भाव से सब प्रयत्न निष्फल होते हैं। यह लौंकाशाह ने दशवाँ काम किया।

(११) जैनों में झूठ बोलना, विश्वासघात करना, किसी ो धोखा देना ये महान् पाप समझे जाते थे।। पर लौंकाशाह जैसों ने हठ, कदाग्रह कर असत्य को अपने हृदय में स्थान देकर नया मत चलाया, और उसको पुष्ट करने को आपके अनुयायियों ने ास वीतराग के वचन, पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों को झूठ बताने की धृष्टता कर डाली, इसी कारण झूठ बोलने की जो प्रतिज्ञा थी, उस वज्र पाप े लोगों को जो डर था, वह हृदय से निकल गया। ाज तो अन्य लोगों से भी इस समाजमें इन बा ें की विशे ता दि ाई दे रही है। यह लौंकाशाह ने ग्यारहवाँ काम वि ।

(१२) जैन धर्म में वासी, विद्वल, अनन्तकाय, (आलू-कांदा इत्यादि) तीन दिन के बाद का आचार ाने की सखत मना, और महान् पाप सम । जाता था, * पर लौंकाशाह तथा स्थानक मार्गियों ने इनका परहेज नहीं रख । और सर्वभक्षी बन आप और आपके भक्तों तथा सम्बन्धी पड़ोसियों को पाप के भागी बनाये । यह लौंकाशाह ने बारहवाँ काम किया ।

(१३) ऋतुधर्म का जैनों में बड़ा भारी परहेज रखना बतलाया है, परन्तु लौंकाशाह और स्थानकमार्गियों के मत में इसका परहेज नहीं रखने से कई अज्ञ लोग जैन धर्म से घृणा करने लग गए इतना ही नहीं पर तेरह० स्था० आरजियों ऋतुमती होने पर भी शा को छू लेती हैं, और कई भिक्षार्थ भी भ्रमण

---

* जैन समाज तो प्रारम्भ से ही शासनभंजक लौंकामत को घृणा की दृष्टि से देखता था पर वे लोग विचारा भोले भाले जैनेतर लोगों को भ्रमित कर साधु का वेश पहना देते थे जब लौंकाशाह जैनाचार व्यवहार से अज्ञाता था तो जिन जैनेतरों के जन्म से ही सर्वभक्षी संस्कार थे वे जैनाचार में । समझे और कैसे पाल सके इधर सर्वप्रकार की छूट भी थी अतएव वह परम्परागत संस्कार आज पर्यन्त भी इन लोगों में विद्यमान है फिर भी जमाना बदलने से और कुछ ज्ञान का प्रचार होने से जो लोग गन्धे रहने में उत्कृष्टता समझते थे वे अब साफ रहना पसन्द करते हैं ऋतुधर्म नहीं पालते थे वे भी इस प्रवृत्ति को बुरी समझते हैं भक्षाभक्ष का भी कुछ खयाल होने लगा है फिर भी हम चाहते है कि शासनदेव उन लोगों को सद्बुद्धि प्रधान करे कि वे जैनधर्म का पवित्र आचार पालन करे जिससे विधर्मियों को ऐसा मोका न मिले की वे जैन धर्म पर आक्षेप कर सके

करती है। इसी कारण पापड़, वडियों करने वाली श्राविकाएँ पने घर । द्वार बन्द रखती हैं उनको इस बात का भय रहता है कि दाचित् ऋतुमती आर्या घर में न घुस जाय ? इत्यादि। यह लौंकाशाह ने तेरहवाँ काम ि या।

(१४) जैनधर्म में सूवा सूतक (जन्म मरण वाले) घर । आहार लेने की सख्त मनाई होने पर भी तेरह० स्था० ऐसे घरों का ाहार पानी और जापा के लड्डू तक भी बहर लेते हैं। इससे जैन लोग जैन धर्म की निन्दा करते हैं। यह लौंकाशाह ने चौदहवाँ काम किया।

(१५) जैनाचार्यों ने अजैनों की द्धि र जैन बनाने की एक ऐसी मशीन कायम की कि जिसके जरिये दो हजार वर्षों में रोड़ों मनुष्यों की शुद्धि कर जैन बना लिये । पर लौंकाशाह सं चित विचार, मलीन क्रिया, रूक्ष दया तथा गृह क्लेश के रण यह मशीन (मिशन) बिल ल बन्द होगई। यह लौंकाशाह ने पन्द्रहवाँ काम किया।

(१६) लौंकाशाह के नुयायियों या स्था० की मलीन क्रिया का जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जो लोग जैन साधुओं को बड़े आदर सत्कार की दृष्टि से देखते थे वे ही ढूंढियो को दे कर कहने लगे:—

"लम्बी लकड़ी लम्बी डोर, आया ढूँढिया पक्का चोर।"

र्थात्—लौं० स्था० ने जैनों का महात्म्य घटा दिया। जैनाचार्यों ने अपने उपदेश रूपी चमत्कारों से राजा महाराजाओं से सम्मान प्राप्त किया था। पर भी इन लोगों ने पड़दा डाल दिया। य लौं शाह सोलहवाँ ाम किया।

(१७) लौंकाशाह ने जैन धर्म की दया के स्वरूप को ठीक नहीं समझ कर हरेक कार्य में पाप-पाप, हिंसा-हिंसा करके श्रावकों के शौर्य पर कुठाराऽऽघात कर उनको डरपोक, कायर, कमजोर बना दिया। जिससे वे दीवानी, फौजदारी इत्यादि अफसरी पद से उतर गये और अब अपने तन जन की रक्षा करने मे भी असमर्थ बन दूसरों का मुँह ताकने लगे। यह लौंकाशाह ने सत्तरहवाँ काम किया ।

(१८) जैन धर्म में तीर्थ भूमि की पवित्रता और वहाँ के दर्शन, स्पर्शन से आत्म-कल्याण होना बतलाया है। क्योंकि यहाँ असंख्य मुनि मोक्ष प्राप्त करते हुए अन्तिम अध्यवसाय के परमाणु छोड़ गए हैं। वे यात्रार्थ जाने वाले महाऽनुभावों के हृदयों को स्वच्छ, निर्मल और पवित्र बना देते हैं। यह अनुभव सिद्ध बात है। इसी कारण पूर्व जमाना में एक-एक व्यक्ति ने लाखों करोड़ों द्रव्य का व्यय कर संघ निकाल तीर्थ-यात्रा की और आज भी अनेकों लोग कर रहे हैं। इस कार्य में संसार से निवृत्ति, ब्रह्मचर्य का पालन, व्रत, पच्चक्खाण का करना, धर्मियों का समागम, गुरु-सेवा, तीर्थ-दर्शन और द्रव्य का सदुपयोग आदि अनेक लाभ होने पर भी लौंका० स्थान० बिना सोचे समझे विचारे भद्रिक लोगों को भ्रम में डाल उनको इस पवित्र कार्य से वंचित रख महान् अन्तराय कर्म बांधा है। यह लौंकाशाह ने अट्ठारहवाँ काम किया।

(१९) जैन धर्म में (साधर्मिक) स्वामि-वात्सल्य प्रभावनादि उदार कार्यों को सब से उच्चासन दिया है। क्योंकि इन पवित्र कार्यों से जीव सुलभ बोधित्व प्राप्त कर सकते है। परन्तु

विना मझे लौं० स्था० इस विरोध र ासन का मूलोच्छेदन करने का लौंकाशाह ने उन्नीसवाँ कार्य किया।

(२०) जैन धर्म में समवसरण, वरघोड़ा महोत्सवादि पवित्र के कार्यों से तीर्थङ्कर त्र बन्धना बतलाया है। क्योंकि इन जनरल कार्यों से जैनों लावा अजैनों पर भी धर्म । बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है जिससे म्यक्त्व की प्राप्ति होती है। प्राय: ऐसे महोत्सव दानोत्व वीरता और मन हुला से ही होते हैं। पर अ ात लौंका० ने इ का भी निषेध कर कंजूसों की भरती बढ़ाकर अजैन कर्मोपाजन करने । यह बीसवाँ ाम किया।

(२१) जिन प्रतिमा और मन्दिरों प्राचीन शिला ले ोंसे जैन-धर्म की प्राचीनता सिद्ध ती है, परन्तु प्रतिमा । निषेध र शिलाले ादि प्राचीन ाधनों को छोड़ कर जैन धर्म की ची । पर चर्डा फिराना चाहा। लौंकाशाह ने यह जैनधर्म का इतिहा का द्रोह रने का ए ी वाँ काम किया।

इत्यादि—ऐ र ने कार्य हैं जिनका लौंकाशाह ने बिना ोचे समझे विरोध कर जैन धर्म अन्दर एक उत्पात ड़ा दिया।..................

फिर भी प्रसन्नता ो बात है कि लौंकाशाह बाद आपके अनुयायियों में कई लोग संशोधक भी हुए कि जिन्होंने जैनागमों का अवलोकन कर असत्य मार्ग को त्याग सत्य मार्ग ो ेकार किया जिसमें पूज्य मेघजी, पूज्य श्रीपालजी, पूज्य आनन्दजी ादि सैकड़ों साधुओं का नाम मशहूर है इसी कारण स्वामि लवजी धर्मसिंहजी के अनुयायियों (ढूंढियों) में भी वीर बुटे-

रायजी मूलचन्दजी, वृद्धि चन्दजी, आत्मारामजी, दादा शांतिविजयजी रत्नविजयजी अजीतसागरजी चारित्रविजयजी (कच्छी) पद्म-विजयजी आदि सैकड़ों स्थानकवासी साधु ढूँढिया धर्म का त्याग कर शुद्ध जैनधर्म में (संवेगपक्षीय समुदाय में) दीक्षित हुये । इतना ही नहीं पर इस ग्रन्थ का लेखक और आपके गुरुवर्य एवं आपके कइ शिष्य भी इसी पंथ का पांथिक है अगर लौंका गच्छ और स्थानकमार्गियों से जो साधु निकल कर संवेगी पक्ष में आये हैं जिनों की नामावली लिखी जाय तो एक वृहद् ग्रन्थ बन जाता है पर ४५० वर्षों का इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है कि कोई भी संवेग पक्षीय साधु या यति, ढूँढिया हुआ है यह जैन संवेग पक्षीय समुदाय की सत्यता का उज्वल वादयुक्त उदाहरण है ।

अन्त में मैं यह स्पष्ट जाहिर कर देना समुचित समझता हूँ कि "श्रीमान् लौंकाशाह के जीवन पर ऐतिहासिक प्रकाश" लिखने में न तो लौंकाशाह प्रति मेरा किंचित् द्वेष है न किसी का दिल दुःखाने की इच्छा ही है पर इस कार्य मे श्रीमान् स्वामि सन्तबालजी ने "श्रीमान् धर्मप्राण लौंकाशाह" नाम की लेख-माल लिख मेरी आत्मा मे शक्ति प्रेरणा की तदर्थ मैं स्वामि संत-बालजी का विशेष उपकार मानता हुआ इतना ही कहूँगा कि इस किताब के लिखने मे जो कारण हैं तो सब से पहिले आप श्रीमान् ही हैं बस इतना कह कर मैं मेरी लेखनी को विश्रांति देता हूँ ।

॥ ॐ शान्ति ३ ॥



ि . १

[पण्डित ि ी लावण्यसमयकृत सिद्धान्त ौपाई]

(वि० स० १५४३ कार्तिक क्ल अष्टमी)

—: दोहा :—

सकल जिणंदह पय नमुं, हियडई हरि अपार ।
अक्षर जोई बोलसिउ, साचउ विचार ॥ १ ॥
सेविअ सरस्वति ामिणी, मि गुरु पसाउ ।
णि भविय वीर जिण, पामिउ शिवपुर उ ॥ २ ॥
णीस वरिस थयां, पणयाली प्रसिद्ध ।
रे पच्छी लुं हुउ, असमंज तिणई किद्ध ॥ ३ ॥
लुंका ामिउ मुहंतलु, हुउ ए उ गामि ।
आवि खोटीं विदुपरि, भागु रम विरामि ॥ ४ ॥
रलई पइ खीजई घणु, हाथि न लग्गइ काम ।
तिणि आदरिउ फेरवी, करम लीहानुं ाम ॥ ५ ॥
आ म अरथ अजाणतु, मंडइ अनरथ मूलि ।
जिनवर वाणी अवगणी, आप करिउं जग धूलि ॥ ६ ॥
रुठउ देव किसिउं करइ, वदनि चपेट न देइ ।
किसी बुद्धि तिसी दीइ, जिणि बहु काल रुलेइ ॥ ७ ॥

देव अवंतीमइं सुणिउ, तिहा मंडपगढ जोइ।
तिहां वछीआती आविआ, मिल्या लखमसी सोइ ॥ ८ ॥
लुंकइ द्रव्य अपावि करि, लोभइं कीधउ अंध।
लुंकाम लेवा भणि, पारखि ओडिउं खंध ॥ ९ ॥
पार्र हुउ कुपारिखी, जोइ रचिउ कुधर्म।
पारखि किंपि न परिखिउं, रयण रूप जिनधर्म ॥ १० ॥

चुपइ

लुंकइ वात प्रकासी इसि, तेहनुं सीस हुउ लखमसी,
तीणइं बोल उथाप्या घणा, ते घला जिनशासन तणा. ११
धन धन जिनशासन रि ार, जिनभाषित सिद्धांत विचार,
जास प्रतापिइं लहीइ मांन, मती कोइ न काढइ कांन धन० १२
मति थोडी नइ थोडुं ान, महीयलि वडूं न माने दांन,
पोसह पडिकमणुं पचखा , नवि माने ए इस्या अजाण. ध० १३
जिनपूजा करवा मति टली, अष्टापद बहु तीरथ वली,
नवि माने प्रतिमा प्रासाद, ते मती सिउं केहु वाद. ध० १४
मति रि करतां वात, निश्चें लागे मिथ्यात,
जिनशासने मंडिउ ताप, ऊवेषिइं अधिकेरुं पाप. ध० १५

१ लौंकागच्छीय यति भानुचन्द्र तथा यति केशवजीके ग्रन्थों से भी यही सिद्ध होता है कि लौंकाशाहने प्रारंभ में जैनागम सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दांन और देवपूजा मानने से इन्कार करदिया था।

जिनमति वली न माने जेअ, आवो उत्तर आपुं तेअ,
चिहुं दिशि चुपट मंडिओ वाद, ऊतारिसु कुमतिनो नाद. १६
धुरि नवि मानउ देवुं दानं, इण वाते लहिसिउ अपमान,
आचारांगमांहि मति आणि, संवत्सरी दान तूं जाणि. १७
पोरसिमांहि जिनवर वीर. वरिसइ सोवन सहसधीर,
एक कोडि अड लख एतलूं, वरसि दिवसि हुइ केतलूं. १८
त्रिणि सइं तिम अ ासी कोडि, लाख असी तिहां सरिसा जोडि,
छठे अंगे छि जिन वली, इण परि दान दिउं मनि रली.१९
परदेशी राउ सत्रूकार, रायपसे ी मांहि विचार,
चित्र सारथि छे ास धान, चिहुं पर्वी पोसह ऋषिदानं. २०
पुनरपि सुणज्यो भगवइ अंगि, तुंगीया नयरी श्रावक रंगि,
नितु दें दान सुपरि ते तिसी, एक जीभ परि बोलूं किसी. २१
जिम अविरल जलहर जलधार, वहे अवारी तिम अनिवार,
मनवंछित जाचक दिए अन्न, त्रिभुवनि ते श्रावक धन धन्न. २२
कल्पसूत्र णतां आणंद, - षभ ेमि जय पास जिणंद,
वीर तणी परि संवत्सरी, दीधा मयगल मलपत तुरी. २३
धण कणि मणि मुक्ताफल बहू, आज लगे ते जाणे सहू,
साते क्षेत्रे देवुं दान, भत्तपयन्ना मांहि धान. २४

---

१ दांन का निषेध केवल स्वामि भिखमजीने ही नहि किया परं सबसे पहिला तो लौंकाशाहने ही किया था तब ही तो पं. लावण्यसमय को इतने आगमों के प्रमाण देकर दान को सिद्ध करना पड़ा है ।

रे कुमती ! तुझ मनि संदेह, मइं नव निश्चे प्रीछिओ तेह,
दानिइं तु वाधे संसार, किम पामिजे मोक्ष दूआर ? २५

जाण जीव कुमतीने नटे, हाहा ए सहू साचुं घटे,
तु कहु जे तीर्थंकर भया, देइ दान शिवपुरि किम गया ? २६

ठालु घडु घणुं जल हलइ, द्रव्यहीण इतर झालफलइं,
पोतइ पहिरणि नहि पोतीउं, वंछइ पट्टकूल घोतीउं. २७

तिम नवि जाणे आगम मर्म, जाणे खरुं प्रकासउं धर्म,
ए एतली न जाणे वात, दानिइं कर्म तणउ उपघात. २८

दानिइं जु घट पापि भराइ, तु तुम्हे भिक्षा मागु कांइ,
वचन तणो हठ छे अति घणो, परमारथ प्रीछिउ तुम्ह तणो. २९

छेदग्रंथमाहि संग्रहिउ, कल्पसूत्र सविशेषह कहिउ,
दीवाली दिनि उत्सव सार, लिइ पोसह तव राय अढार. ३०

भगवइ अंगे अमावस तणा, आठमि चऊदिसि पूनिमि घणा,
तुंगीया नयरी श्रावक तेइ, पोसह लेता भाव धरेइ. ३१

नंदि सूत्र जोयो उत्साहि, वलि विशेषावश्यकमांहि,
द्वार अछे अनुयोगह ठाम, चऊविह संघ तणां तिहां नाम. ३२

---

१ जैनयतियों और उपाश्रय के द्वेष के कारण लौकाशाहने सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमणादि धर्मक्रियाओं से रोष करता हुआ एवं विरुद्ध करने के कारण पं. लावण्यसमयजीने सूत्रों के प्रमाण देकर पोसह आदि धर्मक्रियाओं की सिद्धि कर बतलाई है ।

तिहां थाप ठणहारी तणी, व रवा भणी,
उभय डिकमणुं ही, बोलिउं छे भ ध्यानिइं रही. ३३
पांच समिति हिअडइ धरे, त्रिणि गुपति सरिसी आदरे,
इम आवस्यक उच्चार, करि भवि भूति र. ३४
भगवइ अंग अने णांग, तिहां दीठा अ र चंग,
आवश्यकि बोल्या पचखा , दसे प्रकारे जाणे जा . ३५
मति बोले कूडो मर्म, जिनपूजा ां हीं धर्म,
पूजा करतां हिंसा हवइ, एहवी व अ हित लवइ. ३६
श्री आवश्य अति अभिराम, जिहां चउविसत्थानुं म,
श्रावक पूजाने अधिकारि, ते गाथा हीइ विचारि. ३७
पूजा कर ां हुइ व्यापार, टले प जिम ूप प्रकार,
कूप खणंतां कादव थाइ, कचरे गे शिर खरडाइ. धन० ३८
निर्मल नीरि भरिउ ते जिसिइं, विमल देह त्रस भाजइ तिसिइं,
घणा जीव पामे संतोष, त्रिषा रूप नासे मनि रोष. ३९
कूप णे दृष्टांते कही, द्रव्य पूजा श्रावकने ही,
यति श्रावक मारग नही एक, अंग उपासकमांहि विवेक. ४०

---

१ स्थापनाचार्य और प्रतिक्रमण भी लौकाशाह नही मानता। तब ही तो पण्डितजी को सूत्रों के प्रमाण देकर इस बात को सिद्ध करनी पडी हैं। २ लौकाशाह प्रत्याख्यान भी नही मानता था कि भगवतीसूत्रादि के प्रमाण देने की आवश्यकता हुई हैं। ३ पूजा के बारा में तो प्रसिद्ध ही हैं।

बि मारग आवश्यक ठामि, धुरि सुश्रामण(सुविहित)सुश्रावक नामि,
संविग्नपाक्षिक त्रीजा जोइ, मुनिवर पूजा भाव जि होइ. ४१
पंच महाव्रत आदिइं जाणि, दशविध यतिनुं धर्म वखाणि,
भाव द्रव्य पूजा व्रत बार, धुरि समकित श्रावय कुलि सार. ४२
राय प्रदेसी केसी पासि, जिनमत जाणिउं मन उल्लासि,
पुहुतइं आयु दिवंगत भयु, सूरिआभ नामिइं सुर थयुं. ४३
सतरभेदि जिन पूजा करि, आविउ वीर पासे संचरी,
चउद सहस मुनिवर मनि धरूं, देव कहुं तु नाटक करूं. धन० ४४
वीर न बोले अनुमति हुइ, तु तिणि परि मंडी जूजूइ,
पहिरियां सुर सरिखा सिणगार, पय घम घम घुघर घमकार. ४५
दुंदुभि गयणंगणि गडगडी, सरमंडल भूंगल दउ दडी,
धप मप धों धों मद्दल साद, आलविउ तिणइं अनुपम नाद. ४६
नवल छंदि नवि चुक्कु ताल, रंज्या इंद्र चंद्र भूपाल,
तव जिन वीर मौन परिहरइ, साते पदे प्रशंसा करइ. ४७
द्रव्य पूजानी जाणे सही, ऋषिने अनुमति देवी कही,
ए अक्षर बोल्या छे किहां, जोयो रायपसेणी जिहां. ४८
कुसुमादिक लेइ मनरंगि, सतरे भेदे छठइ अंगि,
दोमइ सयंवर मंडप ठाणि, जिन पूज्या मोटे मंडाणि. ४९
जीवाभिगम मांहि छे तथा, विजयदेव पूजानी कथा,
जिनपूजा उथापि जिहां, रे कुमति ते अक्षर किहां ? ५०
तीरथ अष्टापद गिरनार, नंदीसर शत्रुंजय सार,
भगवइ अंगि कह्या छे वली, कइ मुनिवर कइ जिन केवली. ५१

ए एकइं वंघा वि सही, असुर तिइं ऊंची ति नही,
गति जां ोहम्मु हइ, तीरथ नहीं तु इम कां हइ ? ५२
जंघा विद्याचारण होइ, सुरगिरि नंदीश्वर तूं जोइ,
अष्टापदि जइ आवइ इहां, वंदइ चैत्य वली हुइ जिहां. ५३
भगवइ अंगि जिसि वीससइ, ए अ र नुमइ उद्दिसइ,
श्री आवश्यकि वली विशेषि, हृदय कमलि तस आणि देखि.५४
रिषभ तणी वाणी मनि धरी, थापी भरति भली परि करी,
जिणहर जिण प्रतिमा चउवीस, अष्टापदि मूं निसिदीस.५५
जीवि घणे इहां सिवपद लिहिउं, सिद्धिखेत्र तिणि कारणि कहिउं,
इक थूभ कराव्यां जोइ, जिम भूचलणि न चंपइ कोइ. ५६
एक बोल ए काढिउ मथी, प्रतिमा भराविवी कही नथी,
घडतां लागइ पातक घणुं, पाथरमांहि किसिउं जिनपणुं ? ५७
इस्यां वचन दूरिइ परिहरु, एहनुं उत्तर छइ पाधरुं,
आज लगइ जोउ बहु ठामि, चंपानगरी ीवत सामि. ५८
सोपारइ पट्ठणे छइ जेअ, आदिनाथनी तिमा तेअ,
विस्तर हितां लागइ बार. तिणि कारणि कहुं बो विच्यार. ५९
राउ उदायने जगि जयवं , प्रभावती राणीनु कंत,
वीभइ पाटणि विलसइ राज, लाधुं घोड सरिआं सवि ाज. ६०
विज्जुअमालि णी मोकली, गोसीरष चंदनी भली,
जी प्रतिमा वीरह तणी, गटी पेषि नमइ नरधणी. ६१
जेहनइं मनि देह लगार, जोज्यो दसमइ अंगि विचार,
वली अपूरव बोलुं वा , चेला ग णउ जे तात. ६२

प्रतिमा देषि हुइ प्रतिबुद्ध, तिणि लीधुं चारित्र विशुद्ध,
दशवैकालिकनुं रणहार, सिज्जभव गिरुउ गणधार. ६३
मांहे देषि, समकितनुं अलावउ पेषि,
श्रावक सरिसु आणंद, लिइं मकित दिइ वीर जिणंद. ६४
परतीरथि जिन प्रति ग्रही, आज पछी ते वंदुं नहीं,
इणि क्षरि जाणइ जिनमती, जिनप्रतिमा सही आगइ हती. ६५
छेदग्रंथ अति होइ, कल्पसूत्र सविशेषु जोइ,
तिहां बहु सुख बोल्यां सोहिला, पणि दसण जण दर्शन दोहिला. ६६
धुरि तीर्थंकर जाणे सही, छेहटइ जिनवर प्रतिमा कही,
आठ वचन जे विचिलां अछइ, भविअण पूछी लेज्यो पछइ. ६७
ए दशनु परमारथ सुणउ, दीठइं लाभ हुइ अति घणउं,
प्रतिमा पेषी आर्द्रकुमार, क्रमि क्रमि पामिउ मोषं दुआर. ६८
लेषी पुतली देषी भीति, रागवसइ रागीनइ चींति,
जिम जिनप्रतिमा पय मन वसइ, तिम समकित अधिकुं उल्लसइ. ६९
छेदसूत्र अक्षर अभिनवा, जिनप्रासाद करावइ नवा,
ते सुरलो जिहां बारमुं, हुइ सुरपति कइ सुरपति समु. ७०
मू सूत्र आवश्य सार, अंग उपासकमांहि विचार,
ामि मि अक्षर छइ घणा, जिनप्रासाद करावा तणा. ७१
छइ णि पयन्नूं जिहां, जिनपूजानां महुरत तिहां,
इ इम बोल्या जिनराज, ते कुमती नवि मानइ आज. ७२
जंबूदीवपनंत्ति णि, देविंदत्थु पयन्न वषाणि,
त्रीजइ अंगि ी अवलोइ, ाभिगम भली परि जोइ. ७३

१ ख के स्थान ष का प्रयोग किया हे ।

देवलोकि बारे विचारि, पर्वत कूट तणइ अधिकारि,
श्व जिनसंष्या णि जाण, बोल्या जि ासाद . ४
मोटा प्रतिष्ठा , तीरथ जिनयात्रादि घणां,
डाहु मुनि जु तेडिउ जाइ, घणउ ाभ भइ तिणि इ. ५
यात्रा तणी घणी छइ साषि, नवि कीजइ ते अक्षर दाषि,
रथयात्रा राउ ति तणी, बीजी अवर हुई अति घणी. ६
मुनि नइं चैत्य भगति एवडी, बोली छइ सुणज्यो जेवडी,
गामि नगरि पहुतु किणि ठाय, दीठुं चैत्य न वउली जाय.
षइठउ जिनप्रासाद मझारि, देषइ आशातना अपारि,
भमरी दिर झाझां जाल, कालिआ चउसा . ७८
ते ऊवेषी जाइ कि वारि, प्रायश्चित गुरु च्यारि,
जउ फेडइ लहुआं जाणि, चैत्य भगति करतां सी काणि? ७९
जिनतीरथ रथयात्रा ही, चैत्य भगति मुनिवर नइं सही,
छेदग्रंथि ए अक्षर इ ा, ते मझ हिअडइ गाढा वस्या. ८०
रिषिनइं पूजानुं उपदे , देतां दोष नहीं लवलेस,
भद्रबाहु जे श्रुतकेवली, तिणि आवश्यकि बोलिउं व ी. ८१
वयरसामि परि कीधी किसी, जोज्यो हृदय वि ी तिसी,
नगरी ाहेश्वरी मझारि, संघ भणइ सहि रु अवधारि. ८२
आविउ पर्व पजूस आज, ौद्धमती राजानुं राज,
तिणि राषी मालिनी कोडि, श्वेतांबर नइं इ खोडि. ८३
जाणी फूल मूकिउं एक, वइर ि मनि धरइ विवे ,
दमद्रहि हरिष्या हीइ, क्ष्मीदेवि म रि दीइं. ८४

पंथि हु ाशन वन अभिराम, आपइ यक्ष कुसुम बहु ताम,
कुसुम म आप्यां संघनइ, जिणहरि जिण पूज्या इक मनइ. ८५
स्नात्र महोत्सव केरा जंग, करतां ह्रिअडइ धरिज्यो रंग,
जिनवर जनम समय जब होइ, अच्युत इंद्र तणी परि जोइ. ८६
मेरु शिखरि जिन लेइ जाइ, चउसठि इंद्र मिलइ तिणि ठाइ,
आणइ कमल सहस पांखडी, जोतां सुख पामइ आंखडी. ८७
भरिआ क सला निर्मल नीर, न्हवीउं जिनवर साहस धीर,
जंबूदीवपनंत्ती जिहां, ए आलावउ विगतिइं तिहां. ८८
हुआ जे तीर्थंकर हुसिइ, जनम समयपरि एहजि तिसिइ,
इणि उठइ जिनवरनां स्नात्र, करिज्यो जिम निर्मल हुइ गात्र. ८९
जिहां जिन बोलइ तिहां सिउ वाद, धुरि उत्सर्ग अनइं अपवाद,
एकजि जीवदया यति तणइ, ए उत्सर्ग सहूको भणइ. ९०
द्रव्य क्षेत्र नइ ाल जि भाव, ते ऊपरि तुम्हे धरिज्यो भाव,
जे पद छइ अपवादह तनुं, लाभ छेहानुं कारण घणुं. ९१
ऋषिनइं विराधना जल तणी, तिम बीजी वरजी छइ घणी,
कल्पसूत्रमइं मन उल्लासि, सुणिउ सुललित सहिगुरु पासि. ९२
वीरतणु तिहि वचनविलास, सुणी एकइं ऊणा पंचास,
आलावा बोल्या जिनराज, रिषिनइं सामाचारी काज. ९३
तिहिं विहरिवा तणइ अधिकारि, ते अलावउ हीइ विचारि,
कही कुणाला नामइं किसी, इंद्र तणइ नहीं नगरी इसी. ९४
अैरावती नदी तसु तीरि, गाऊ अढइ वहइ नितु निरि,
इसीउ पहट उल्लंघी वेगि, आगइ मुनि जाता संवेगि. ९५

एक पयजलि भीतरि थलि एक, इणिपरि जइ आवता अनेक,
दोष रहित भिक्षानइं काजि, न गणि विराधना रिषि राजि. ९६
इम अपवाद तणा पद जोइ, निश्चइं भंगि भलां फल होइ,
केवलि वात प्रकासइ इसी, ते मानता विमासण किसी? ९७
त्रिणि उक्काला वलि आ पषइ, फासु नीर कहइ ते झषइ,
चाउल धोअणनूं जल्ल जेउ, बि घड़ी पूंठि फासि तेउ. ९८
ग्लान महारिषि सहि गुरु तणी, उपधि विधिइ सिंउ धोवी भणी,
ए त्रिणिइं तिहि बोली उक्ति, जोज्यो पिंडतणी निर्युक्ति. ९९
यतिनइं रोगि चिकित्सा कही, चउमासी पडिकमणुं सही,
सूतिकर्म तीर्थंकर तणा, अठाइ दिनि उत्सव घणा. १००
थानक वीस कह्यां छइ सही, जेह विण तीर्थंकर पद नहीं,
छठ अनइं अठम तप जेउं, वली विशेषत जाणे तेउ. १०१
शत्रुंजय तीरथ गिरनार, सिद्धखेत्र थापना विचार,
छठइ अंगि अनइ आठमइ, ए छ बोल कह्या मझ गमइ. १०२
गहिला गामठ मूढ गमार, पभणइ श्री सिद्धांत विचार,
योग अनइ उपधान विहीन, जाते दिनि ते थासिइ दीन. १०३
भाव हुइ जु दीक्षा तणउ, छ जीवणी लगइ तु भणउ,
योग वह्या विण आवउ सही, श्री सिद्धांत भणाइ नहीं. १०४
सीकी पडिलेहण अति खरी, लेवा काल अवधि परिहरी,
त्रिहुत्तिरि बोल भला मनि वसइ, तु समकित शुद्धं उल्लसइ. १०५
जसु घरि झाझां माणस जिमइ, ते उद्देशिक म कहु किमइ ?
हरिकेसी रिषि लिइ आहार, नवि लागइ तसु दोष लगार. १०६

हरिकेसी ाभिइ ', पामी दोष हूउ मुनि चंग,
इ दिनि विहरंतु संचरइ, यक्ष तणइ देउलि ऊतरइ. १०७
तिहि आसनूं यर विशाल, कौसल नामि भलु भूपाल,
बेटी छइ भद्रा नामि, यक्ष प्रतिइं नितु जाइ प्रणामि. १०८
तिणि दिणि यक्ष वनि गइ जाम, रिषि रहीउ तु काउसगि ताम,
पेखी दूबल आधार, कुंअरी कीधउ घूघूकार. १०९
कुपिउ य तव 'अरि छली, धूजंती धर मंडलि ढली,
मात तात मिलिउं परिवार, नवि लागइ ऊषध उपचार. ११०
भूत ` वरि व्यंतर कोइ, भणइ भूप कुण वलगु होइ,
थइ ते कारण कहुं, जिम मनवंछित बिमणां लहु. १११
जि घृत वैश्वानरि धडहडिउ, भणइ यक्ष तिम कोपिइं चडिउ,
सुणज्यो बो अम्हारुं कहिउ, अम्ह देउलि रिषि आवी रहिउ. ११२
क्षमावंत ते महामुनि णी, कीधी कुंवरि अवन्या घणी,
हासइं बोल्या बोल ोल, मुनि मूंकिउ अवगणी निटोल. ११३
नहीं साखुं एहनुं अन्याउ, सिउं करिसिइ रीसाविउ राय,
तु मूंकुं जु रिषिनइं वरइ, नहीं तरी कुंअरी निश्चइं मरइ. ११४
इसिउं वचन राजा संभजइ, कुंअरी दूखि घणुं टलवलइ,
वेदन टालि भणइ नरनाह, करिसिउं रिषिसरि सुवीह्याह. ११५
ततखिणि आणि उ सवि समुदाय, कुंअरी चेत वालिउ तिणि ठाय,
यक्ष महारिषि ि रि अवतरी, तिणि वेलां ते कुंअरि वरी. ११६
रिषि प्रभाती चालिउं सज थइ, कुंअरी पिता तणइ घरि गइ,
भूपति भणइ अम्हारइ राजि, रिषि रमणी नवी आवइ काजि. ११७

यज्ञ जाण इ जिहां, रिषि णी ते आपी तिहां,
केते दिनि अंतरि लही लाग, ब्राह्मण मंडइ ोटउ याग. ११८
वर्ग्ग मिलिउ तिहि बहू, हुइ किपि ते सुणज्यो ,
राज ंअरि परणीती जेणि, ते रिषि आविउ भिक्षा लेणि. ११९
सिरि इलु पणि मति ऊजली, हाथिइं दंड कंधि कांबली,
यज्ञ पाटि जइ ऊभउ रहइ, धर्म भ रिकेसी कहइ. १२०
तव बइठा बंभण खलभलइ, के त्रासइ के अलगा टलइ,
के ऊतावलि ऊंचा चडइ, ए वरतीउ रखे आभडइ. १२१
यागमांहि जे बंभण वडा, ते बोलइ रहिआ इक डा,
धांन अम्हारइ अछइ अबोट, जां नहीं रि कइ पामिसि चोट. १२२
ऊठ्या लुंटउकेवि अतिचंड, मेल्हइ साट सरीसा दंड,
के हासइं रुणा छोकरा, लहकई सेउ ंखइ कांकरा. १२३
राजकुंअरि ते रिषि ओलखइ, चिंतइ लोक किसिउं ए झखइ,
हासूं छाजइ जेहसिउं ाड, ए रिषि हसतां भांजइ हाड. १२४
ंअरी बोलइ सहुको सुणउ, ए निवरतु हिमा घणउ,
जइ ए रिझिनइ ऊवेखिरि उ, तु फिरतां देउल देखिसिउ. १२५
एहनूं हासूं अम्हनइं फलिउं, राजारिद्धि सुख सगलुं टलिउं,
जिम जिम कुंअरि निवारइ फिरइ, तिम उपसर्ग घणेरा करइ. १२६
रिषिनइं वेदन जाणी वणी, आविउ यक्ष सखायत भणी,
इसिउं पेखि कोपिइं धमध इ, पडीआ विप्र मुखि लोही वमइ. १२७
कुंअरि भणई हिव किम ऊठिसिउ, संकष्ट दोहिला छूटिसिउ,
ए ऊ ाणूं साचउ होइ, विण भाट नइ कोइ कोइ. १२८

तुम्हे मंडिउ गिरि नखि भेदिवा, तरु मंडिउ मूलिइं छेदिवा,
तुम्हनइं रीस करुं हिव किसी, सवि कुबुद्धि तुम्ह हिअडइ वसी. १२९
भि जणिउं इणि सिउ थाइसिइ, ए कूटिउ वाइं जाइसिइ,
एहना चर   रण हिव लीउ, ए पाधरसी नहीं वरतीउ. १३०
तव बंभण बोलइ करजोडि, देव दया करि अम्हनइं छोडि,
छोरु होइ कुछोरु कदा, ायबापि सांसहिवुं सदा.   १३१
ए उत्तमना घरनी रीति, कुवचन किसिउ न चुहटइ चीति,
गुण मणि रयणायर छउ तुम्हे, एक वरांसु लहिणउ अम्हे. १३२
विनय वचनि नि रंजिउ य , तव मूक्यां माणसना लक्ष,
गयुं यक्ष जइ बइठउ ठामि, उठ्या विप्र सवे सिरनामि. १३३
भणइ विप्र हो रिषि धन धन्न, कृपा करु लिउ खपतूं अन्न,
यज्ञ भणी झाझा परहूणा, अम्ह मंदिरि आव्या छइ घणा. १३४
केरइ पारणइ, गया विप्रनइं घर बारणइ,
सरस गविल विहरावइ पा , कूर दालि घृत झाझां शाक. १३५
विहरइ मुनिवर पती खीर, घोल घणुं नइं फासू नीर,
भाव सहित इम भिक्षा देइ, वंदइ बंभण भाव धरेइ.   १३६
दान पुण्य महिमा विस्तरइ, कुसुमवृष्टि तिहि सुरवर करइ,
खिणि विप्र तणइ अंगणइ, सोवनवृष्टि हुइ सहू भणइ. १३७
र करी मुनि वहठउ जिसिइ, ब्राम्हण वंदणि आव्या तिसिइ,
धर्म तणइ उपदेसिइं करी, प्रतिबोध्या बंभण कुंअरी.   १३८
हरिकेसी रिषि विहरिउं इम, ऊद्देसिक नवि लागु तिम,
श्री उत्तराध्ययन छइ सार, ए सवलु तिहि करिहिउ विचार. १३९

वीर सामि अतिशय परवरिया, ते नावइ वइसी उतरिया,
मारगि गंगा नदी प्रवाहि, ए अक्षर आवश्यकमांहि. १४०
श्री इन्नकापूत्र सूरिंद, वइठा वेडी मनि आणंद,
लोक तणउ मिलीउ बहू वर्ग, वयरी देव करइ उपसर्ग. १४१
जिहां वइसइ सहि गुरुराय, तिहां तिहां वेडी नीची जाइ,
गंगा नदी महाजलि भरी, लोके गुरु नांख्या करि धरी. १४२
तिणि अवसरि ते सुर प्रतिकूल, पडतां हेठलि धरइ त्रिशूल,
सिर वींधाणइ शोणित झिरइ, सहिगुरु हीइ विमासण करइ. १४३
मझ सिरि लोही खारुं हुसिइ, जलना जीव मरण पामिसिइ,
सवि कहइ ऊपरि समता धरइ, शुभ ध्यानि केवल सिरि वरइ. १४४
वइठा वेडी इस्या सुमेध, किम थाइ तेहनुं निषेध ?
जमली साखि समयनी देखि, संथारग सुयन्नूं पेखि. १४५
श्रीमुखि अरथ कहइ अरिहंत, रचइ सूत्र गणधर गुणवंत,
प्रतेकबुद्ध नइं श्रुतकेवली, दस पूरवधर बोल्या वली. १४६
एहनु भाखिउ आगम होइ, जिनशासनि जयवंतु सोइ,
तासु पक्ष मइं अंगी कीध, रे कुमती तुम्ह उत्तर दीध. १४
जे पूछवुं हुइ ते कहु, कांइ अणबोल्या थइ रहु,
सुगुरु पसाइं त्रिभुवनि सार, जाणूं आगम अरथ विचार. १ ८
तेज पुंज जां सोहइ भाण, तां खजुआनूं किसिउ पराण ?
जां हुइ चिंतामणिनु व्याप, तां काकरनुं किसिउ पाधन. १४९
जां सुरगिरि तां सरिसव किसिउ? मृ पति आगलि जंबु जिसिउ,
तिम आगमि जु एहवूं हिउं, बोलवूं म्हारुं रहिउं. १५०

जिनवरि भाषि जिनमत जाणि, लुंकट मत फोकट म वषाणि,
जिन ए अंतर घणउ, सावधान थइ सहु को सुणउ. १५१

दुहा.

मदि झिरतु किहां, किहां आरडतूं ऊंट ?
पुन्यवंत किहां, किहां अधमाधम खूंट ? १५२
राजहंस वाय किहां, भूपति किहां दास ?
भूमि मंदिर किहां, किहां उडवलेवास ? १५३
धुरा गोद किहां लवण, किहां सोनूं किहां लोह ?
किहां सुरत किहां कयरडु, किहां उपशम किहां कोह ? १५४
किहां उलि हार वर, किहां कणयरनी माल ?
शीतल विमल मल किहां, किहां दावानल झाल ? १५५
भोगी भिक्षाचर किहां, किहां लहिवूं किहां हाणि ?
जिन लुंकट मत प्रतिइ, एवड अंतर जाणि. १५६
आविइ इणि दूसम समइ, जिन मत मानइं आज,
ते नर पुरुषोत्तम हुसिइ, लहिसिइ शिवपुर राज. १५७

अथ चुपइ.

लुंकट मतनु किसिउ विचार, जे पुण न करइ शौचाचार,
शौच विहुणउ श्री सिद्धांत, पढतां गुणतां दोष अनंत।धन० १५८
फणगर देखी उंदिर डरइ, निसासा डचका जिम करइ,
राति दिवस एहनइं परि एह, परनिंदा नवि लाभइ छेह. १५९
पातक भय देखाडइ घणउ, बहु आरंभ करइ घर तणु,
कूट कपट मायाना घणी, जाते दिनि थासिउ रेवणी. १६०

गुरु नवि मानु ए अति भलूं, तु तुम्हि किम जाणिउं एतलूं ?
शास्त्र पढ़ावी कीधी मया, तेहाजि गुरुनइं साम्हा थया. १६१
जे लुंकट मति गाढा ग्रहिया, ते केता भिक्षाचर थया ?
नवा वेप तसु नवली रीति, नवि त्रइसइ भविअणनइं चींति. १६२
इच्छां हींडइ इच्छां जिमइ, नरभव लाधउ मुहिआ गमइ,
मुह मचकोडइ मंडइ वात, अलविइं बोलइ रिषिनी घात. १६३
श्री सिद्धांत रचिउ चउपइ, बालाबोध णी परि जूइ,
विण व्याकरणिइं गाढा रलइ, सूत्र अरथ सूधां नवि मिलइ. १६४
जे जिनवचन ऊथापइ किम, ते नव निश्चइं निन्हव सीम,
निन्हव संगति जे नर करइ, पापइं पिंड सदा ते भरइ. १६५
मातापिता सहोदर कोई, जइ ए मतनइं मिलीउ होइ,
रे भविअण मझ वारिउं करे, तसु संगति दूरिइं परिहरे. १६६
कुमति केरा सुणीइ बोल, तु जाइ जिन धर्म निटोल,
ते सोनानइं केहूं मांन, जीणइं सोनइ त्रूटइ कांन. १६
कहु केथउ कीजइ ते पूत्र, जीणइ भाजइ घरनूं सूत्र,
लुंकट मतनूं किसिउं प्रमाण, जिहां लोपाइ जिनवर आण.१६८
जे मइं थापिउं सभा मझारि, ते पुण आगमनइं आधारि,
आगम सूत्र कह्यां छइं सार, ते सवि हुं धुरि अंग अग्यार.१६९
बार उपांग पयन्ना दसइ, छेद ग्रंथ नि वसइं,
मूलसूत्र बोल्या छइ च्यार, नंदिसूत्र अनुयोगद्वार. १७०

ए अकेकां अति सुविशाल, आगम सूत्र कह्यां पणयाल,
तिहां भाषिउं तिम्म चित्ति सुहाइ, तु ए बोल न मानुं कांइ. १७१
सुणज्यो भविअण केरी कोडि, लुंकट मतनइं लागी खोडि,
"डिउ वाद थया । धीर, पण त्रिभुवनि ऊतरिउं नीर. १७२
साचउ धर्म तिहां जय होइ, एह वात जाणइ सहू कोइ,
हारिउं लुंके गयुं सकार, जिनशासनि वरतइ जयकार. १७३
क्रोध नथी पोषिउ मइं रती, वात कही छइ सघळी छती,
बोलिउ श्री सिद्धांत विचार, तिहां निंदानु सिउ अधिकार? १७४
जीव सवे बं व ।, पडिइ वरांसइ धरिज्यो क्षमा,
जे जिम जाणइ ते ति करुं, पणि जिनधर्म खरुं आदरु. १७५
अम्ह गुरु श्री सोमसुंदर सूरि, जासु पसाइ दुरिआं दूरि,
तपगछनायक सुगुण निधांन, लक्ष्मीसागर सूरि प्रधान. १७६
श्री सोमजय सूरिंद सुजाण, जसु महिमा जगि मेरु समाण,
अहनिस हरषइ प्रणमुं पाय, सुमतिसाधु सूरि तपगछराय. १७७
गुणमंडित पंडित जयवंत, समयरत्न गिरुआ गुणवंत,
तसु पयकमलि भमर जिम रमूं, इणिपरि भगतिइं दिन नीगमूं. १७८
जसु महिअलि रुअडउ जसवाउ, ते सहि गुरुनु लही पसाउ,
एं चउपइ रची अभिगम, लुंकट वदन चपेटा नाम. १७९
संवच्छर दहपंच विशाल, त्रिताला वरषे चउसाल,
काती शुदि आठमि शुभवार, रची चउपइ बहुत विचार. १८०

नरनारी एकमनां थइ, भणइ गुणइ जे ए चउपइ,
मुनि लावण्यसमय[1] इम कहइ, ते मनवंछित लीला लहइ. १८१

इति श्री सिद्धांतचतुःप्पदी ॥ लुंकटवदनचपेटाभिधाना ॥ लिखिता परोपकाराय ॥ शुभं भवतु । लेखकपाठकयोः ॥ श्री ॥*



---

१ श्रीमान् पं. मुनिश्री लावण्यसमयकी दीक्षा वि० स० १९१९ में हुइ थी अतएव आपश्री लौंकाशाह के समसामायिक थे इस लिये आपका ग्रंथ में लौंकाशाह की मान्यता का खण्डन किया है वह यथार्थ ही हैं क्यों कि आवेशमें आया हुआ लौंकाशाह जैनागम जैनश्रमण, सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान औंर देवपूजा का उस समय निषेध करताथा। इस लिये ही आपने इतना विस्तारसे उसी समय यह शास्त्र प्रमाणोंद्वारा चौपाई बनाइ थी।

* इस चौपाई की प्राचीन प्रति पाटण का ज्ञान भंडार में विद्यमान है। श्रीमान् मोहनलाल दलीचंद देसाईने इसे प्राप्त कर वि. सं. १९८६ का जैनयुग मासिक पत्र का अंक ९–१० का पृष्ठ ३४० पर छपवाई थी उस परसे हिन्दी टाइपो में उसी रूप में यहां छपाइ गई है।

।६ । ी ंयमकृ सिद्धान्त सारोद्धार

[चौपाइ]

[रतरगच्छीय जिनहर्षसूरि के शिष्य उ० कमलसंयमने]
वि० ं० १५४४ में उत्तराध्ययन सूत्रपर टीका रची है

[ऐं० ॐ अर्हच्चैत्येभ्यो नमः]

वीर जिणेसर प मिय पाय, समरिय गोयम गणहर राय,
कुमत निवारण कहउं संखेवि, एकमना थइनइ सुणउ हेवि ।१।
संवत् प र अ ेतरउ जाणि, लुंकु लेहउ मूलि निखाणी,
साधु निंदा अहनिसि करई, धर्म्म धडावंध ढीलउ धरई ॥२॥
तेहनई शिष्य मिलिइ लषमसी, तेहनी बुद्धि हीआथी खिसी,
टालइ जिनप्रतिमानइ मान, दया दया करि टालई दान ॥३॥
टालइ विनय विवेक विचार, टालई सामायिक उच्चार,
पडिकमणानउं टालई नाम, भामई पडिया घणा तिणि गाम ॥४॥
संवत् पनरत्रु त्रीसइ कालि, प्रगट्या वेषधार समकालि,
दया दया पोकारइ धर्म्म, प्रतिमा निंदी बांधइ कर्म्म ॥ ५ ॥
एहवई हूउ पीरोजजिखान, तेहनइ पातसाह दिइ मान,
पाडइ देहरा नइ पोसाल, जिनमत पीडइ दुखमा काल ॥ ६ ॥
लुंकानइ ते मिलिउ संयोग, ताव माहि जिम सीसक रोग,
डगमगि पडीउ सघलउ लोक, पोसालइ आवइ पणि फोक ।७।
जोउ हीआ संघातिइं काई, बूडउ लोको कुमती थाई,
एक अक्षर ऊथापई जेउ, छेह न आवइ दुखनई तेउ ॥ ८ ॥

हिंसा धर्म्म दयाइ धर्म, कुमती पूछइ न लहइ मर्म,
श्रावक सहूई पाणी गलइ, धर्म्म भणी किम हिंसा टलइ? ॥ ९ ॥
नदी ऊतरवी जिणवरि कही, कहउ तुम्हि हिंसा तिहा किम नही,
करिइ कराविइ सरीखउं पाप, बोलई वीतराग जगबाप ॥ १०
घोडे हाथी वइठा जाई, जिणवर वंदणि धर्म्म स थाई,
कहउ तेहनई हिंसा न हुइ धर्म्म, कांई ऊथापी बांधउ कर्म ॥११॥
एवं कारइ कउं केतलउं, ताणउ भाइउ तुम्हि एतलउं,
जिनशासननउ एहजि मर्म्म, वीतरागनी आज्ञा धर्म्म ॥१२॥
एणि उपदेसि दूहवाइ जेउ, पाग लागी खमावउं तेउ,
जीव सविहुस्यूं मैत्रीकार, जिनशासननउं एहजि सार ॥ १३

—इति चउपइ समाप्त (छ) *



---

* इसकी पुराणी प्रति पाटण ज्ञानभंडार में तथा श्रीमान् फूलचंदजी झाबक फलोदी वालो के पास है। ईन चौपाइ के अलावा लौंकाशाह का पूर्वोक्त उत्सूत्र प्रवृतिका खण्डन के लिये बहुत आगमों के पाठ भी दिये हुए हैं। इससे सिद्ध होता हैं कि लौंकाशाह सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान, देवपूजा, साधु और शास्त्रों को नही मानता था।

ि वीकाकृत सूत्रनिराकरण बत्रीशी.

वीर जिणेसर मुगति हिं गया, सइं ओगणीस वरस जव थयां,
पणयालीस अधिक ाजनइ, प्रागवाट पहिलइ साजनइ. १

लूंका लीहानी उत्पत्ति, शिष्या बोल दस वीसनी छित्ति,
मति आपणी करिउ विचार, मूलि कषाय वधारण हार. २

अनुवइ हऊओ सीह, जिणवर तणी तीणं लोपी लीह,
चउप्पदी कीधउ सिद्धांत, रिउ सतां संसार अनंत. ३

वि व्याकरणि हिं बालाबोध, सूत्र वात बे अरथ विविध),
री चउपडाज ज दया, लोक तणा तीणं भाव जि गया. ४

घर खूणइ ते करइं वखां , छांडइ पडिकमणुं पच्चखाण,
छांडी पूजा छांडिउं दान, जिन पडिमा कीधउं अपमान. ५

पांचमी आठमी पाखी नथी, मा छांडीनइं माही इच्छी,
विनय विवेक तिजिउ आचार, चारित्रीयां नइं कहइं(. .)खाधार.

मुग्ध स्वाभावी जे गुणवंत, ते भोलवीया एणं अनंत,
नालक नालकि त्रस बहू कहइं, तीणं वात भवियण लहिवइं. ७

स्वामी तो नवि बोलइ इस, आपण पूजा कीजइ कीम ?
अचित प्रदेशि सचित किम चडइ, इणं बोलिइं सहू संशय पडइ. ८

ज्ञाताधर्म्म कथा जे अंग, तेहनुं एहे कीधउ भंग,
दोवइ सइंवर मंडप ठाणि, जिन पूज्या जिणहर संठाणि. ९

उपपातिकनइं राज श्रेणि, जी भिगम सुत्त मज्झेणि,
अष्टपगारी पूजा खरी, सूरियाभ देविइ तिहां करी. १०

ी आवश्यकि बोलिउं सही, ना ठवण द्रव्य भाव जि कही,
चिहु भेदे बोल्या जिनराज, कुत्सित ती न मानइं आज. ११

अ पद णि दीठउ कहइं, ंदीसर वर नवि सांसहइं,
मेरु चूलां जे जिनि प्रासाद, ते उथापइं करइं कुवाद. १२

भुवनाधिप व्यंतर माहि जेउ, देवलोकि जोतिष बिहु लेउ,
जिणहर पडिमा सासइ बहू, ते तवाले लोपिउं सहु. १३

समवसरण जे समइ प्रसिद्ध, तेह णउ ए करइं नषिद्ध,
पूजा द्रव्य भाव बिहुं तणा, ठामि ठामि अक्षर छइ घ ा. १४

एक वचन तीर्थंकर तणुं, जम्मालिइं उथापिउं घणुं,
ीणुं कीधइं बहू काल जि रलिउ, एहू म तेह नइं जइ मिलिउ १५

अर्थ प्ररूपइं श्री अरिहंत, सूत्र रचइं धर गुणवंत,
चऊद अनइं दश पूरवधार, सूत्र रचइं बिन्हइ विचार. १६

प्रत्येकबुद्ध विरचइं ते सही, एह बात जिन आगमि ही,
सूत्र न मानइं ते कुहु किस्या, आराधकनइं मनि किम त्रस्या? १७

वि मारग श्री जिनवरि कहिया, भव्य जीव तेहे तें ग्रहिया,
धुरि सुश्रमण सुश्रावक पछइ, संविग पाखिक त्रीजा अछइं. १८

महाव्रत अणुव्रत छांडी बेउ, तीहं टलतु बोलइं जेउ,
बेडी तां सिलां ते चडइं, भवसागरि ते निश्चिइं पडइं. १९

सुंदर बुद्धि विमासइं घणुं, रुडउं विचारिउं तु हुइ आपणुं,
जिनवाणी जे बहू अवगणइं, तेहनइं पात्र मूरख वली भणइं. २०

षडावश्यक जे जिनवरि भण्या, एहेते सवळां अवगण्यां,
अणुव्रत सामाइक उच्चार, पोषंध प्रतिमा नहीं विवहार. २१

थापइं जीव दयामइ धर्म्म, सूक्षम बादर न लहइं मर्म्म,
सन्नि असन्नी जे आतमा, एकेंद्री पंचेंद्री किम होवे समा. २२

भव्य अभव्य जे हवइ, वीतराग द ना डंसवइ,
खांडइ पीसइं छेदइं सदा, प्राशुक विधि नवि मानइं कदा. २३

पूजा टालइं हिंसा भणी, वरि भीते हुं घणी,
सर्वादरि ंडइं व्यवसाय, धन मेलइं बहू करी उपाय. २४

अ थकी नवि इ, मन गमतू भोजन नित जिमइ,
ते मनि मानेइ तेहजि ही, धर्म्मध्यानथी वात जि रही. २५

नीसा साड च ा दिइं घणा, परनिंदानी नही कांइ मणा,
राग दोस बे महुवडि करिया, क्रोधादि किम दिछइं परिव्ररिया. २६

टींटहुडी ऊंचउ करइ, आभ पडंतां ठाढण धरइ,
तिम जाणइं अम्हे तारक अछुं, पात्रपणुं सघलइ अम्ह पछुं. २७

नवा वेष नवला आचार, भणइं गुणइं विण शौचाचार,
ज्ञान विराधइं मूरखपणइं, जाण शिरोमणि तेहनइं भणइं. २८

ाम छेहा नवि जाणइं भेउ, उत्सर्ग अपवाद न मानइं बेउ,
निश्चय नइं व्यवहार जि किसिउ, स्वामी बोल न बो...उ. २९

द्रव्य क्षेत्रनइ काल जि भाव, तेह ऊपरि छइ अ।,
मूलोत्तर गुण जे छइं घणा, ते लोप्या जिनशास . ३०
निण्हवि आगइ बोल्या बोल, आ तो सिवहुं माहि निटोल,
निन्हव संगति जे नर करइं, काल अनंत संसारि जि फिरइं. ३१
इम जाणी ंगति मत करउ, आपणपूं आपिहिं धरउ,
ए बत्री ी लूंका तणी, साधु शिरोमणि वीकइं भणी. ३२

—इति असूत्र निराकरण बत्रीशी* समाप्ता. छ.

श्री. पत्र १ पं. १५ गोकुळभाई नानजीनो संग्रह राजकोट में यह प्रति विद्यमान है।

—इसकी नकल जैन युग मासिक सं. १९८५ अंक १-२-३ पृष्ट ९९ में श्री मो० द० देसाइद्वारा मुद्रित हो चूकी हैं।

---

* मुनि वीका ने इस बत्तीसी में अपना समय नही लिखा है पर आपकी अन्य कृतियों (देववन्दन स्तव) में वि. सं. १५२७ का उल्लेख किया हैं अतएव इस समय के आसपाश यह बत्तीसी वनाई होगा और उससमय लौकाशाह जेनागम जैनश्रमण सामायिक पौसह प्रति मण प्रत्याख्यान दान और देवपूजा नहीं मानता होगा उनके प्रतिकार में आपने यह बत्तीसी बनाइ होगा।

परिशिष्ट नं. २

लौंकागच्छीय विद्वानों का लिखा हुआ लौंकाशाह का जीवन

लौंकागच्छीय यति भानुचन्द्रकृत

दयाधर्म चौपाई*

वीर जिणेसर पणमि पाय, सुगुरु तणु लह्यो सुपसाय ।
भस्मग्रहनो रोष अपार, जइन धरम पड़ियो अन्धकार ॥१॥

दुय सहस वरसि अंतरे इस्युं, जिं जिं वरत्यूं कहिइ किस्युं ।
दया धरमनी थइ झांकी ज्योत, सालुंकइ किधउ उद्योत ॥२॥

सोरठ देसे लींबडी गामई, दसाश्रीमाली डुंगर नामई ।
धरणी चूड़ा चित्त उदारी, दीकरो जायो हरष अपारी ॥३॥

चौदसय ब्यासी वइसाखई, वद चौदस नाम लुंको राखइ ।
आठ वरिसनो लुंको थयो, सा डुंगर परलोकइं गयो ॥४॥

लखमसी फुइनो दीकरउ, द्रव्य लुंकानुं तेणइ हरउं ।
उमर वरिस सोलहनी थई, चूड़ा माता सरगि गई ॥५॥

---

* इस चौपाई का एक पन्ना यतिवर्य्य लाभसुन्दरजी का ज्ञानभंडार से मिला था, उसको ज्योंका त्यों यहां मुद्रित करवाया हैं ॥

आवइ अमदावाद मझार, नाणावटीनो करइ व्यापार ।
धर्म्म सुणवा जावइ पोसाल, पूजा सामायिक करइ त्रि ॥६॥
सांभलइ यति तणु आचार, पण नवि पेखइ यतिहिं लगार ।
कहइ लुंको तमे पभणो खरउ, वीर आणाथी चालो परउ ॥७॥
कहइ यति अम्हथी रहे धरम, तमे किम जाणो तेहनो मर्म ?
पांच आश्रव सेवता म्हे, सिखामण देवी सही गमे ॥८॥
सा लुंका कहे दयाइ धर्म, तमे तो थापिओ हिं ा अधर्म ।
फट भुंडा किहां हिंसा जोइं, यति सम दया पालइ कोइं ॥९॥
सा लुंका आ मानइ अपमान, पोसालइ जावा पच्चक्खाण ।
ठाम ठाम दयाइ धर्म कह्यो, साचो भेद आज अम्हि लह्यो ॥१०॥
हाटउ बइठो दे देश, ांभली यतिगण करइ लेस ।
संघनो लोक पण पा यो थयो, सा. लुंका व लींबडी यो ॥११॥
ल सी ते तिहां इ कारभारी, सा. लुंकानो थयो हचारी ।
अमारा राजिमां उपदेश करो, दयाधर्म छइ सहुथी खरो ॥१२॥
दयाधर्मी थयो बहु ोग, एहवि ल्यो भाणानो ंयोग ।
घरडउं लुंको नवि दीक्षा हिं, पि भा ो पोते वेष ग्रही ॥१३॥
दया धर्म जहहलती ज्यो , सा. लुंके किधुउ उद्यो ।
पनरसय वती उ प्रमाण, ा. लुंको पाम्यो निरवा ॥ १४ ॥
दयाधर्म जय ंो दीसइं, कुमति घणुं निंदे खींसइ ।
कह्यो लुंको मति मानज्यो यति, ामायिक पण कांणे कथी ॥१५॥

पोसह पडिक्कमणु पच्चखाण, जिन पूजा नहीं मानइ दांन ।
रे कुमति ! किम बोलइं इस्युं, सा. लुंके उत्थाप्यु किस्युं ॥१६॥

सामाइक टालइं बे वार, पर्व परे पोसह परिहार ।
पडिक्कमणुं विन व्रत न करइं, पच्चखांणइ किम आगार धरइं ॥१७॥

टालइ असंयति नइं दान, भाव पूजाथी रूडउ ज्ञान ।
द्रव्य पूजा नवि कही जिनराज, धर्म नामइं हिंसाइ अकाज ॥१८॥

सूत्र बतीस साचा सद्दह्या, समता भावे साधु कह्या ।
सिरि लुंकानो साचो धर्म, भ्रमे पड़िया न लहइ मर्म ॥ १९ ॥

निंदइ कुमति करइ हटवाद, वींछी करड्यो कपि उन्माद ।
मूसा बोलइ बांधई कर्म, किम जाणइ ते साचोउ मर्म ॥ २० ॥

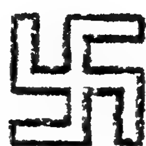
जयणाइ धर्म ने समताइ धर्म, ते टालि किम बांधीउ कर्म ?
जे निंदे ते संचइ पाप, समता विण सहु धर्म पलाप ॥ २१ ॥

दया धर्म श्री जिनवरे कह्यो, सा. लुंके तहने संग्रह्यो ।
तेहीज आज्ञा पाली अम्हे, शुं खोटउ लागइं छइं तम्हें ॥२२॥

शुं दयामां तम्हे मान्यो पाप, किम मांड्यो एटलो विरूलाप ?
सूत्रनी साखीं ल्यो तुमे जोय, दयाविहुणो धर्म न होय ॥२३॥

जे जिण आणा पालइं शुद्धि, तेहने नमवा होउ मुझ बुद्धि ।
दुहवाणुं मन परनुं जउ, मिच्छमि दुक्कडं मुझने हउ ॥ २४ ॥

पनरसय अठ्योतर जाणउं, माघ शुद्धि सातम प्रमाणउं ।
भानुचंद यति मति उल्लसउ, दया धर्म लुंके विलसउं ॥ २५ ॥



---

१ इस चौपाई का कर्ता वि. सं. १५७८ मे यति भानुचन्द्रने लौकाशाह का जीवन पर ठीक प्रकाश डाला हैं। यति भानुचन्द्र का समय भी लौकाशाह के वाद ३७ या ४६ वर्ष का होने से इस पर विश्वास भी हों सक्ता हैं। यति भानुचन्द्र के समय तक तो जैनयति, लौकाशाह के अनुयायियों पर यह आक्षेप किया करते थे कि लौकाशाहने सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान, देवपूजा और आगम मानना अस्विकार किया था परन्तु भानुचन्द्र के समय शायद् लौकाशाह के मूल सिद्धान्त में थोड़ा बहुत सुधार हुआ हों—जैसे सामायिक दो काल (सांम सुवह) में ही हो सक्ती हैं, पौसह पर्व दिन मे, प्रतिक्रमण व्रतधारी को, पच्चखाण विना आगार ही हो सके, दान असंयति को न देना और द्रव्यपूजा नही पर भावपूजा करना तथा जैनागमों में ३२ सूत्र मानना। यह मान्यता भानुचन्द्र के समय थी वाद तो इस में भी सुधारा होता गया और आज नागोरी लूंकागच्छ विगेरह में सब प्रवृति जैनियों के सदृश ही दृष्टिगोचर होती हैं।

लो गच्छी ति केशवऋषिकृत—
ौं ।शाह का ।सिलोको।

वीर जि ंदना प्र मी थ, समरी सरसती भगवती माय;
गुरु प्र मी कगइं रि लोको, इक मनी करी सुणज्यो लोको. १
चरम जिनेश्वर श्री वर्धमान, गणधर एकादश गुणखाण,
पाटपरंपरा तेहनी कहीइं, भ तां गणतां शिवसुख लहीइं. २
पांच ं गणधर सोह साम, जंबुस्वामी प्रभव गुणधाम;
सीज्जंभव जसभद्रा नामी, संभुती भद्रबाहुस्वामी. ३
स्थूलभद्र प रना त्यागी, महगीरी सुहस्ती वडुभागी;
बहुलनी जोडी स्वाती स्वामी, कानिक सूरि स्कंदील स्वामी. ४
आर्यसमुद्र श्री मंगु धर्म, भद्रगुप्त नेइं स्वामी वजर;
सींहगुरु धनगुरुना शिष, वजरस्वामीजी धुरी जगीश. ५
वयरसेन श्रीचंद्र सुनंदा, संमतभद्रजी स्वामी मुनींदा;
सीतपट दीगपट ..पाय, वन महीं करइ तप ऋषिराय. ६
मल्लवादी वृद्धवादी ज्ञानी, सिद्धसेन नय न्याय प्रमाणी;
वादी देव ने हे सूरींद, परवशीं प्रगट्या मुनींद. ७
इम अने निपती मोटा, पाटपरंपरइ कर्मइ छोटा;
जगिइचंद्र रुषी तप रा, विजयचंद गुरु पावन पुरा. ८
खीमा कीरतजी हे ी स्वामी, यशोभद्र रत्नाकर नामी;
रत्न प्र भीवर मुनि शे र, धर्मदेव अने ज्ञानी सूरीश्वर. ९

इण कालइ सौराष्ट्र धरामइं, नागनेरा टिनी गामइ;
हरीचंद श्रेष्ठी तीहां वसइ, मउंघीबाइ घरणी शील लसंइ. १०
पुनम गच्छंइ गुरुसेवनथी, शैयदना आशीष वचनथी;
पुत्र सगुण थयो लखु हरखीं, शत चउदे तसीतर वर्षी. ११
ज्ञानसमुद्र गुरुसेवा रतां, भणी गणी लहीउं वन्यो तत्र त्यां;
द्रम्म कमाणी श्रुतनी भक्ति. वधइ रंगइ धर्मनी शक्ति. १२
आगम लखइ मनमां शंकइ, आगम साखी दान न दीसइ;
प्रतिमा पूजा न पडिक्कमणुं, सामायिकं पोसह पी कमणुं. १३
श्रेणिक कुणिक राय देशी, तुंगीया श्रावक तत्त्व गवेषी;
किणइ पडिक्कमणुं नवी कीधुं, किणइ परने दान न दीधुं. १
सामायिक पूजा छइ ठोल, जती चलाइ इण विध पोल;
प्रतिमा पूजा वड्ड संताप, तो अम्हि करीइ धर्मनी थाप. १५
अविधि लुंपइ लुंपक नाम, लखुको नामइ लउको नाम;
नही संयत पीण यतीथी अधिकुं, लोकोंइ मत परखीउं लउ . १६
संवतु पन्नर(१५)सत(००)अडवरषि(८),सिद्धपुरीइ शिवपद हरषी;
खोली थापीउं जिनमत शुद्ध, लुंकउ गच्छ हुओ परसिद्ध. १
पातशाही महमुद सयाण, मानी इ लुंकाम परम ;
सुबा सेव सउको मानइ, लखु गुरु चरणि शीश नामइ. १८
हिव सोरठइ लीवडी गाम, कामदार अछे मशी ;
लुंका गुरुनो ग्रही उपदेश, धर्म पसारओ देश विदेश. १९
इणमत विपथि मंडइवाद, न्यायाधीश करइ पक्षपात;
शत पन्नर तेत्री (१५३३)सालइ, छप्पन वरसि रघर हालइ.२०
शत पन्नर तेत्रीशनी सालइ[१५३३] भाणजीने ते दीक्खा आलइ;
भाणजी रीखी फेलावइ, जीवदयानुं तत्त्व त्वइ. २१

वधर्माननी पेठीं एकी, विचरइ देश विदेशी छेकी;
पाटपरंपरा चालइं शुद्धि, पाटे भद्ररूपि सुबुद्धि. २२
लवण रूषि भीमाजी स्वामी, जगमाला रूषि सरवा स्वामी;
बीजो नीकल्यो कुमति पापी, तेणइं वली जिनप्रतिमा थापी. २३
रूपजी जीवाजी कुंवरजी, वीहरइ श्रीमलजी रूषीवरजी;
प्रणमीं पूज्य तणंइ वरपाया, गावइ केशव नीत गुरुराया. २४

इति चतुर्वीशी समाप्त*

[बंबई समाचार दैनिक अखबार ता. १८-७-३६ के अंक में एक 'जैन' का नाम से प्रकाशित लेख की नकल]

---

* यह कविता खास लौंकागच्छीय केशवजी ऋषिकी है और आप के लिखने से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि लौंकाशाह देवपूजा दान आदि को नही मानता था। केशवजी ऋषि का समय यति भानुचन्द के बाद का होना चाहिये। लौंकागच्छ की पटावलि में एक नानी पक्ष के स्थापक केशवजी ऋषि हुए हैं, पर वे लोंकाशाह के पन्द्रहवे पाटपर हुए है तब इस कविता के कर्त्ता केशवजीरूषि पूज्य श्रीमल्लजीकों अपने गुरु बताते है और श्रीमलजी लोंकाशाह के आठवे पाट जीवाजीर्षि के तीन शिष्योंमें एक थे यदि केशवजीर्षि श्रीमल्लजी के ही शिष्य हैं तो आपका समय वि. सं. १६०० के आसपासका ही समझना चाहिये जो लौंकागच्छीय यति भानुचन्द्र के करीबन् २९-३० वर्षो बाद हुए हैं और इन दोनो की मान्यता भी मिलती झूलती है अतएव इन दोनों के समय तक लोंकों की मान्यता वही थी कि दान और देव पूजादि धर्मक्रियाओं वे लोग नही मानते थे।



इस े अलावा वि म की सत्रहवीं शताब्दी े इस विषय और भी कई ग्रन्थ मिलते हैं गौर कई मेरे पास भी विद्यमान हैं पर वे लौंका ाह के बाद के हैं और य ाँ ऐतिहासि प्रमा रूप लौंका ाह के म सामयिक या आपके आस पास के समय के प्रमाणि ग्रन्थों को ही स्थान दिया गया है और इन प्रमाणों से ही ध्वनी निकली है कि लौंकाशाह ने अपने अपमान के कार न्दिर उपाश्रयों से वि ला हो जैनश्रम , जैनागम, सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान, और देवपूजा को मानने के लिये इन्कार किया था, साथमें एक और भी निप रा हो जाताहै वि लौंकाशाह ने पने जीवन में किसी समय मुँहपत्ती में डोराडाल दिनभर मुँहपर कभी बांधी थी, इस बात की चर्चा लौंकाशाह े जीवन में कहीं भी नहीं मि ती है। इतना ही क्यों पर लौंकाशाह े बाद २०० वर्षों तक भी न तो किसी ने डोर ाल ँहपर मुँहपत्ती बाँधी थी गौर न इस बात का उस समय के साहित्य े न मण्डन ही आ है। इससे स्प पाया जाता है कि ँहपर दिनभर मुंहपत्ती बाँधने की प्रथा वि म की अठारहवीं ब्दी े प्रारंभ ई है और इस प्रथा ो चलाने वाले मि वजी ही थे ! यह ब हाल इस किताब के ोपान्त पढ़ने े पाठक यं जान सकेंगे ज्यादा । ॥ भम् ॥

परिशि नम्बर ३
लौंकामत और थानकमार्गियों से आए हुए प्रसिद्ध विद्वान साधुओं की
संक्षिप्त परिचय

लौंकाशाह एक साधारण व्यक्ति होने पर भी वह क्रूर प्रकृति व ।था। विक्रम को सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में एक ओर तो भस्मग्रह की अन्तिम फटकार और दूसरी ओर धूम्रकेतु नामक विकराल ग्रह का संघ की राशिपर संक्रमण इत्यादि कारणों से इधर तो लौंकाशाह का जैन यतियों या जैन संघ द्वारा अपमान और उधर यवन लेखक शैयद के सयोग का होना बस इसी कारण लौंकाशाह ने एक नया मत निकाला। पर इस मत की नींव बहुत कमजोर थी, कारण लौंकाशाह जैनश्रमण, जैनागम, सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान और देवपूजा से बिलकुल खिलाफ होगया था। उस हालत में मत का चलना असम्भव नहीं पर कठिन जरूर था। पर भवितव्यता के कारण भाणा आदि तीन मनुष्य लौंकाशाह को अपनी अन्तिम अवस्था में मिल गए और उन्होंने स्वयं साधुवेश पहिन के लौंकाशाह के देहान्त के बाद इस मत को चलाया और जहाँ जैन यतियों के विहार का अभाव था वहाँ भद्रिक जनता को सत्यधर्म से पतित बना अपना वाड़ा बढ़ाया, और धीरे-धीरे लौंकाशाह से छोड़ी हुई धर्म क्रियाओं को भी फिरसे पने मत स्थान देते गए, परन्तु जब जैनाचार्यों का न्यान्य प्रान्तों विहार शुरू हुआ तो लौंका मत वालों के किल्ले दीवार टूट २ कर गिरने लगी जिसका संक्षिप्त परिचय प ों को यहाँ । हैं।



लौंकामत एवं स्थानकवासी समुदाय के विद्वान नामाङ्कित साधुओं ने शास्त्रों का गहरा अभ्यास करने के पश्चात् वे आत्मार्थी मुमुक्षु उन्मार्ग का त्याग कर शुद्ध सन न जैन ध की दीक्षा ग्रहण कर स्वपर का कल्याण किया और कर रहे उन महानुभावों का चित्रों के साथ संक्षिप्त परिचय करवा देते हैं।



जैनाचर्य श्री हेमविमलसूरीश्वरजी

और

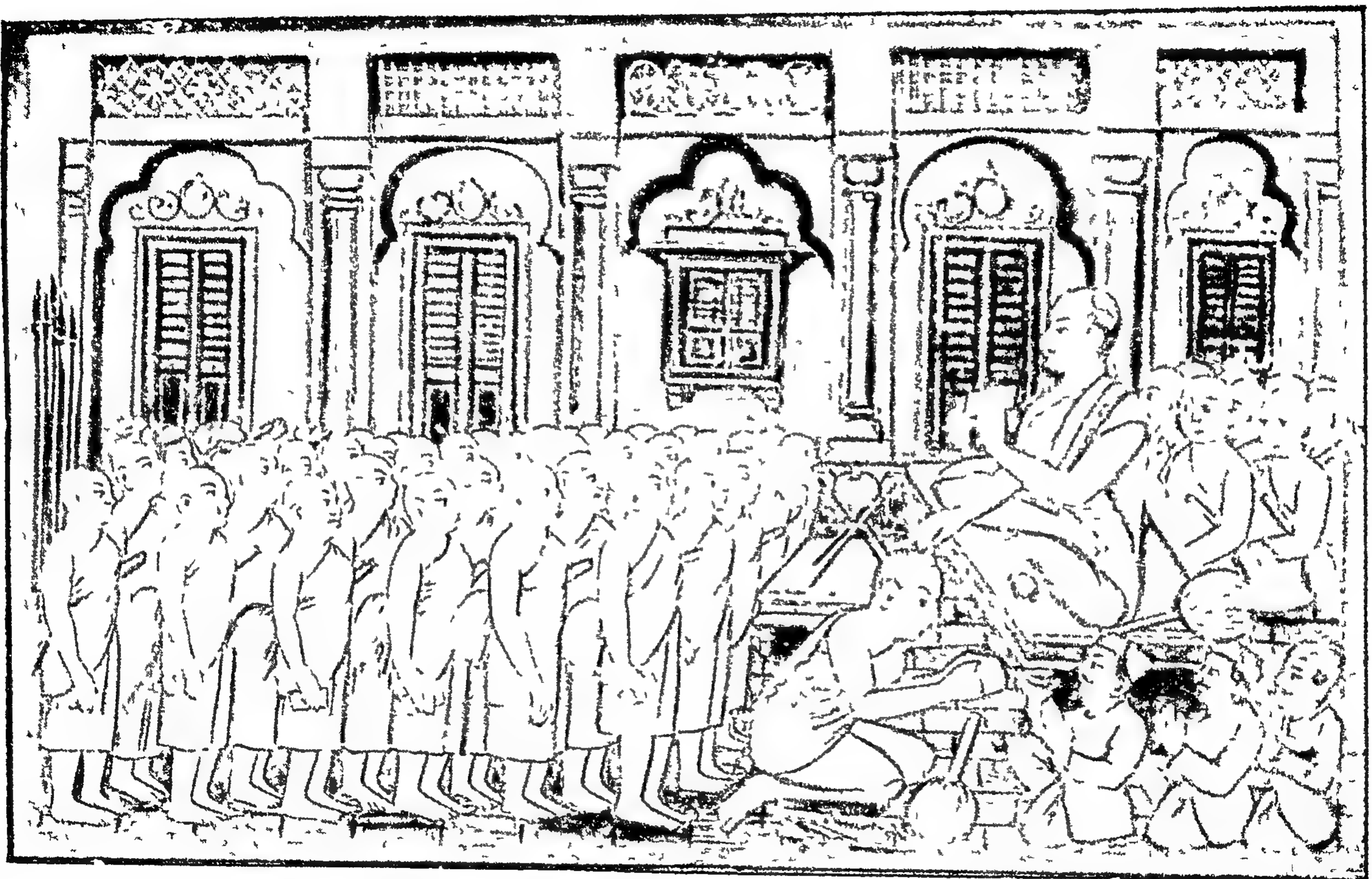
लौंकामत के साधु

ऋ० हाना, ऋ० श्रीपति, ऋषि गणपति प्रमुख लुङ्कामत पास्य श्री हेमविमलसूरि पार्श्वे प्रव्रज्य तन्निश्रया । चारित्र भागो वभूवांस"

"पट्टावली समुचय पृष्ट ६८"

आचार्य हेमविमल सूरि का समय लौंकाशाह के देहान्त के बाद ४०-४२ वर्ष का ही है पर इस नये मत मे सब जातियों को दीक्षा देने की छूट होने से अथवा योगोद्वहनादि विशेष क्रिया न होने से और इन वर्षों में एकाध दुष्काल पड़नेसे इस नूतन मत में साधुओं की संख्या ५०-६० के करीब पहुँच गई थी, पर आचार्य श्री हेमविमलसूरीश्वरजी के सदुपदेश का डङ्का बजते ही ऋषि हाना, ऋषि श्रीपति, ऋषि गणपति आदि साधुओं ने आचार्य श्री के स अपनी भ्रान्ति दूर कर पुनः दीक्षा स्वीकार की, इन ब सा ओं की संख्या ३७ कही जाती है।

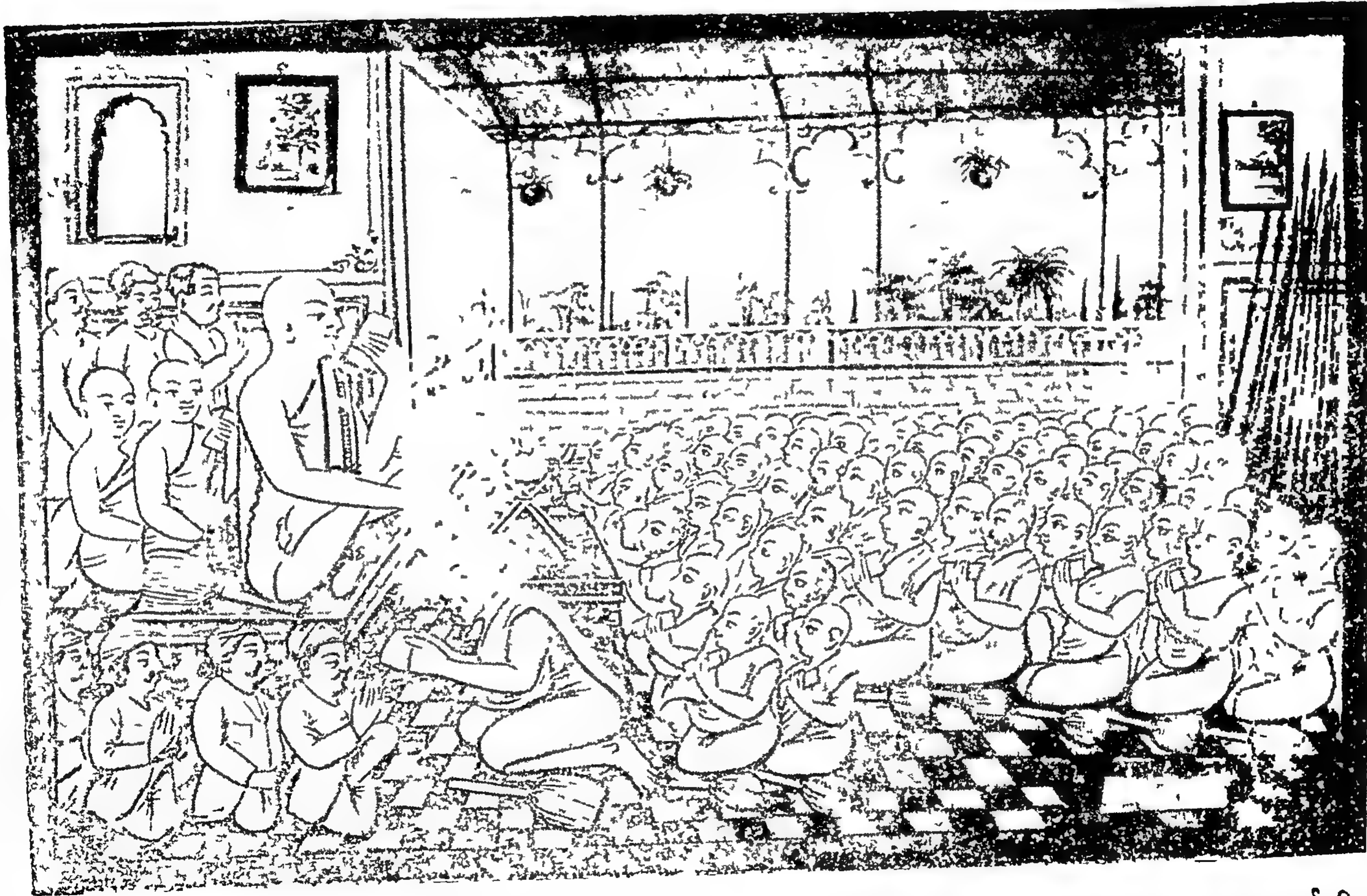
हा भा क जैनाचार्य श्रीहे वि लसूरि (स य वि० सं० १५७२ तक)



लौंकामत के पूज्य हानार्षि, श्रीपतिऋषि, गणपतिऋषि, आदि शिष्यसमुदायसह लौंकामतका त्याग कर आचार्यश्री के पास जैनविधि अनुसार वासक्षेप पूर्वक, पुनः जैन दीक्षा धारण कर रहे हैं ।

संवेगरंगी, उग्रविहारी प्रकाण्डतपस्वी महान्प्रभाविक

जैनाचार्यश्रीआनन्दविमलसूरि और महोपाध्याय श्रीविद्यासागरजी (सं० १५९७)



लौंकामत के पूज्य आनन्दर्षि भोजर्षि बालऋषि आदि अपने शिष्यो के साथ लौंकामतको छोडकर आचार्यश्री के समीप पुनः जैन दीक्षा स्वीकार कर रहे है गणि विद्यासागरजी ने भी कई लौंकामतियो को जैनदीक्षा दी थी

हा वि

चार्यश्री आनन्दविमल सूरी रजी

और

लौंकामत के साधु

"मेवात देशे च वीजामाती प्रभृ।ी ेमोख्या दौ × × × लुङ्कादीन् प्रतिबोध्य सम्यक्त्व वी ेसदने धा द्धि मुषागत मद्याऽि प्रती े"

'पट्टावली समुच्चय ७०'

मरुधरादि प्रान्तों में नी के अभाव के ारण ई धुओं की काल मृत्यु ेने से आचार्य ेमप्रभसूरि ।धुओं का विहार ही बन्द करवा दिया, इस कारण उन प्रान्तों में लौंकादि ।धुओं को अपना धर्म प्रचार र की ए सुन्दर सुविधा मि गई पर ।चार्य ।नन्दविमलसूरि महाप्रभाविक उग्र विहारी कठोर तपस्वी और श ों के मर्मज्ञ होने से उन्होंने भू भ्रमण कर लौंकामत े ने साधुओं और गृहस्थों को सन्मार्ग पर ला र अ े शि बनाये। ।प े ।सन में महोपाध्या विद्यासागर गणि जो ठ तप का पार । रते थे, और स्थूलिभद्र के सदृ चारी थे, उन्होंने मेवाड़ मारवाड़ आदि प्रान्तों में विहार र अन्य मतों के सदृश लौंकामत वालों को ो य और प्रव्रज्या दे जैन धर्म में दीक्षि त किया, जि की ७८ बतलाई ती है।

द् र प्रतिबोधक

आचार्य विजयहीर सूरीश्वरजी और लौंकामत के साधु

"तथाऽहम्मदाबाद नगरे लुङ्का मताऽधिपतिः ऋषिमेघजी । कीय म ऽऽधिपत्यं दुर्गतिहेतुरिति मत्वा रज इव परि-ज्य पञ्चविं ति निभिः सह सकल राजाऽधिराज पातिशाहि श्री कब्बर राजा । पूर्वकं तदीयाऽऽतोद्य वादनादिना महा मह पुरस्सरं प्रव्रज्य यदीय पादाऽम्भोज सेवा परायणो जात"

पटावली समुच्चय पृष्ट ७२

× × × ×

अहीं थी फुट फाट रू थई मेघजी नामना एक स्थविर ने कोई कारण थी २७ ठाणा सहित गच्छ बहार करवामां आव्या, तेथी तेओ हीरविजयसूरि पासे गया अने तेमना गच्छ मां मल्या

स्था० स्वामि मणिलालजी कृत

वीर पट्टावली १८१ पृष्ट पर

× × × ×

"इसी समय से फूटफाट चली, मेघजी नाम के एक स्थविर को किसी मे ५०० ठाणा सहित गच्छ बाहिर कर दिया, इससे वे हीरविजय सू के पास गये और उनके गच्छ में मिल गए" ।

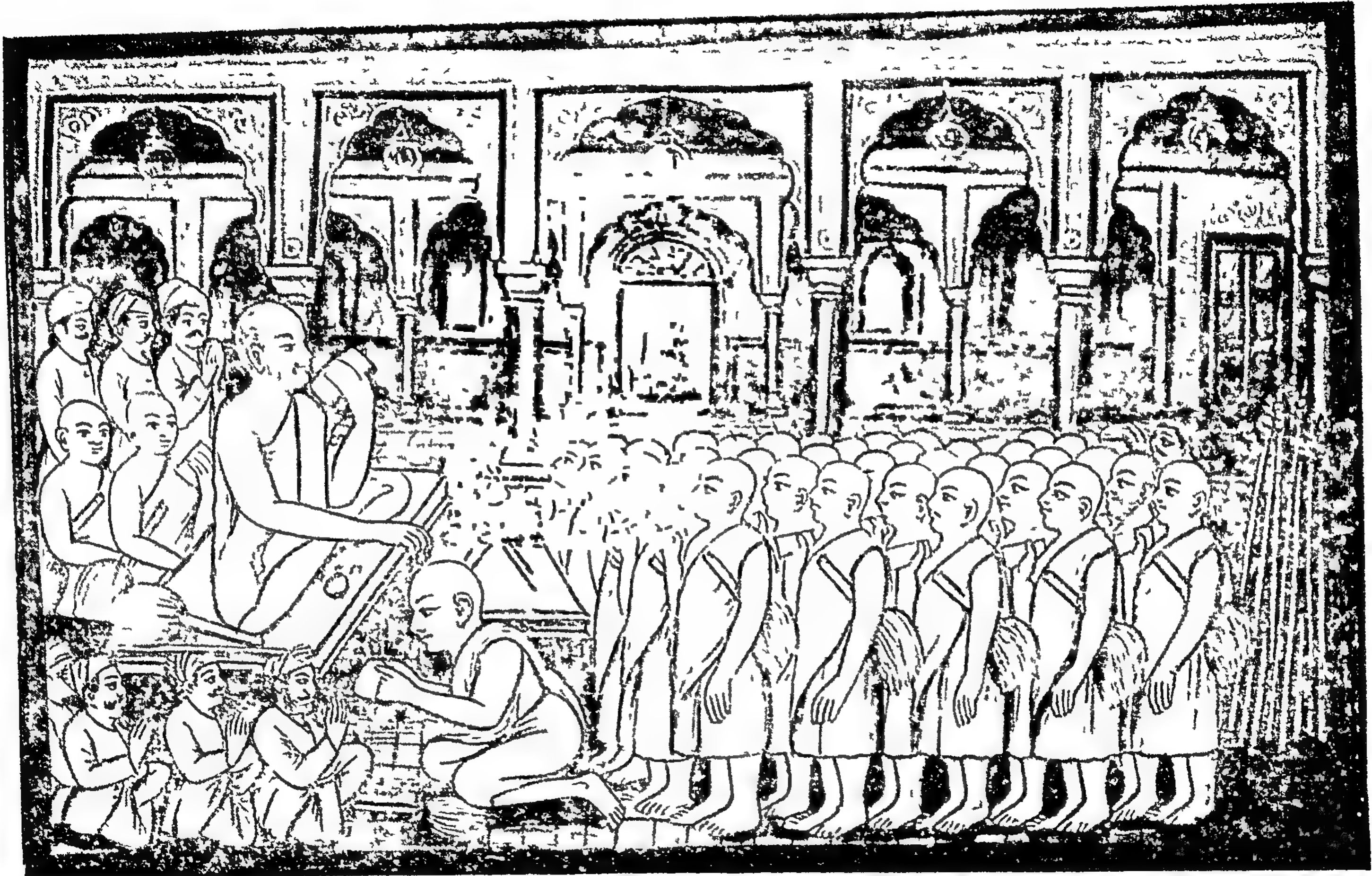
स्था० श्री ान् वाडीलाल मोतीलाल शाह कृत

ऐतिहासिक नोंध पृष्ट ९०

× × × ×

अन्यान्य कों ने पृथक २ समय साधुओं की अलग २ सख्या लिखी वाडी मे लाल शाह ने सबको शामिल कर ५०० साधु लिखा घ में यह ठीक ही है । क्योंकि असत्यमत में रह कर आत्मार्थी कब करेंगे ?

सम्राट् अकबर प्रतिबोधक—जगत्गुरु जै ाचार्य श्रीविजयहीर सूरीश्वरजी हाराज



लौंकामताधिपति पूज्य मेघजीस्वामी अपने शिष्य समुदाय के साथ लौंकामतका परित्यागकर आचार्यश्री के चरण-कमलो मे पुनः जैन दीक्षा ग्रहण कर रहे है। इस समय तक लौंकामत के सब साधु मुहपत्ती हाथ में ही रखते थे।

पंजाब के साधुमार्गी साधु श्रीबुटेरायजी ने वि० सं० १९०३ में मुहपत्ती का डोरा तोड़ा और वि० सं० १९१२ में गणिवर श्रीमणिविजयजी म० के पास जैनदीक्षाली



गणिवर श्रीबुद्धिविजयजी महाराज। आपके परिवार में करीबन् ४०० साधु और सैकड़ों साध्वियां विद्यमान है।

पूज्यपाद गणिवर बुद्धिविजयजी महाराज

(स्था० ंजाबी साधु बूँटेरायजी)

ाप पंजाब की वीर भूमि में जन्म लेकर जननी जन्म भूमि का उद्धार करने के लिए वि. सं. १९०३ में साधु-माग पन्थ को त्याग कर अर्थात मुँहपत्ती । डोरा तोड़ पंजाब में भूली भटकी जनता को सद् उपदेश देकर पुनः जैन-धर्म ` त्य पथ पर लाने लगे और बाद में गुजरात ` जाकर पूज्य गरि श्रीमान् मणिविजयजी के पास जैन दीक्षा ीकार की, और मूर्त्तिभंजकों ा माया जा को दूर कर धर्म में ूब प्रचार किया। आपकी परम्परा में आज करीबन ४५० साधु और सैकड़ों ाध्विएं विद्यमान हैं। यों तो प ` पहिले भी पूज्य मेघजी के बाद कई स्था० साधुओं ने मुँहपत्ती का डोरातोड़ जैन-धर्म की दीक्षा ली थी, पर ापने विशेष नामवरी इस कारण म की कि आप पंजाव जैसे ाधुमार्गियों ` साम्राज्य में प्रायः म हुए मूर्तिपूजक धर्म को नः प्रतिष्ठित करने में मर्थ हुए।

‘को ः वन्द ो ऐसे सद्गुरु ो’

१ पूज्य द णिवर   रि वि नयजी महाराज ।

(पंजा ी साधु ार्गी   धु मूलचन्दजी)

आप श्री का जन्म भी पंजाब की वीर प्रसविनी भूमि के सियालकोट शहर में ओ वाल वंश भूषण सुखसा की धर्म ी बकोरबाई की पवित्र   त्ति से वि. सं. १८८६ में आ था। आपने वि. सं. १९०२ में स्वामी बूँटेरायजी के पा साधुमार्गी दीक्षा ी। शा ो का अध्ययन करने के बाद वि. सं. १९१२ में महात्मा बूँटेरायजी के साथ दादा मणिविजयजी गणि के पास संवेगी दीक्षा स्वीकार कर जैन-धर्म की खूब   ति ी।

आपकी सन्त परम्परा में आज भी ४ आचार्य और ५२ साधु एवं सैकड़ों साध्वियाँ विद्यमान हैं।

पं० साधुमार्गी साधु मूलचन्दजी सं० १९०३ में मुँहपती का डोरा तोड़ वि० १९१२ में संवेगी दीक्षा ली



पूज्यपाद गणिवर

श्रीमान् मुक्तिविजयजी महाराज

पंजाबी साधमार्गी साधु वृद्धिचंदजी सं० १९०३ में

मुँहपत्ती का डोरा तोड़ वि० सं० १९१२ में संवेगदीक्षाली



पूज्यपाद शान्तमूर्त्ति मुनि श्री वृद्धि विजयजी महाराज

पूज्यपाद शान्तमूर्त्ति ।ीवृद्धिविजयजी हारा

[पं० स्था० साधु बृद्धिचंदजी]

।प पञ्जाब प्रदेश के एक चमकते सि रे थे, आप । जन्म पंजाब प्रान्त के राम नगर में ओसवाल कुल के धर्मज की धर्मपत्नी श्री कृष्णदेवी के उदर से वि० ं० १८९० में हु । था, आपने वि० सं० १९०८ में महात्मा बूँटेरायजी के पा साधुमार्गी दीक्षा ली थी, ौर अन्त में आप ने सत्य की गवेषणा कर ँहपत्ती का डोरा तोड़ श्रीमान् बूँटेरायजी महा ज के साथ इमदाबाद में दादा श्रीमाणविजयजी गणि के समीप पुनः जैन दीक्षा को धारण की, आप का प्रभाव जैन जनता पर खूब पड़ा, जगत्प्रसिद्ध ।चार्य विजयधर्मसूरिजी एवं विज `मिसूरीश्वरजी जै` प्रखर विद्वान् एवं धर्म प्रचारक आप के शिष्य ए, इतना ही ीं, पर आप की परम्परा में आज १० आचार्य ौर १३५ साधु विद्यमान हैं और साध्वियाँ भी ।प ी परम्परा में काफी संख में हैं।

चार्य श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी
(स्था० ाधु- त्मारामजी)

आप श्री का जीवन प्रसिद्ध है। आपने निम्न लिखित १८ साधुओंके मुँहपत्ती का डोरा तोड़ कर गणि श्रीमान् बुद्धिविजयजी महाराज के चरण कमलों में पुनः जैन धर्म की दीक्षा ली।

साधुओं के नाम

साधुमार्गियों के नाम	जैन दीक्षा लेने के बाद उनके नाम
१ आत्मारामजी।	१ आनन्दविजयजी।
२ विश्नुचंदजी।	२ लक्ष्मीविजयजी।
३ चंपालालजी।	३ कुमुदविजयजी।
४ हुकमचंदजी।	४ रंगविजयजी।
५ सल रायजी।	५ चारित्रविजयजी।
६ हाक यजी।	६ रत्नविजयजी।
७ खूबचंदजी।	७ संतोषविजयजी।
८ कन्हैयालालजी।	८ कुशलविजयजी।
९ तु ि जी।	९ प्रमोदविजयजी।
१० कल्याणचंदजी।	१० कल्याणविजयजी।
११ निहालचंदजी।	११ हर्षविजयजी।
१२ निधानमलजी।	१२ हीरविजयजी।
१३ रामलालजी।	१३ कमलविजयजी।
१४ ं दजी।	१४ अमृतविजयजी।
१५ प्रभुदयालजी।	१५ चंद्रविजयजी।
१६ रामजीलालजी।	१६ रामविजयजी।
१७ खैरातील जी।	१७ खांतिविजयजी तपस्वी।
१८ चन्दनलालजी।	१८ चन्दन विजयजी।

की परम्परा में ८ आचार्य २१६ साधु और सैकड़ों साध्वियां विद्यमान हैं

पंजाबी साधुमार्गी मुनि आत्मारामजी वि० १९३२ में
१८ साधुओं के साथ संवेगी दीक्षा ली



पंजाब केशरी
जैनाचार्य श्रीविजयानन्दसूरीश्वरजी महाराज

श्री सिद्धक्षेत्र में

श्रीयशोविजय जैन गुरुकुल संस्थापक



श्रीमान् चारित्रविजयजी महाराज (कच्छी)

मुनि श्रीचारित्रविजय ी महाराज

[था० साधु धर्मसिंहजी]

कच्छ देश के पत्री नाम ग्राम में घेलाशाह की शुभगादेवी ी कुक्षीसे वि० सं० १९४० घार ो ई ा जन्म हुआ। वि० ं० १९५६ में स्थानकमार्गी कानजी मि े पास दीक्षा ली ाप का नाम ैसिंह ा। पने ा ों का भ्या वि ा तो मूर्ति नहीं मानने वालों के मत को कल्पित कर सर्पकंचूक की भाँति शीघ्र ही ोड़ कर सं० १९५९ में आचार्य श्री विजयकमल सूरीश्वरजी महाराज के चर कमलों में जैन दी ग्रहण कर सत्योपदे द्वारा जैन शा को पूर्व सेवा की।

उ ाध्या ीसोहनविजयजी

(पंजाबी ० ाधु वसन्तामलजी)

ाप श्री का जन्म वि० सं० १९३८ की साल में श्मीर की प्रसिद्ध राजधानी जम्मूमें निहालचंद सेठ की उत्तमा देवी की क्षी से आ। आपका नाम वसन्तामल था। पंजाब के स्थानकवासी साधु गेंडेरायजी के पास आप २२ वर्ष की युवक वय में अर्थात् वि० सं० १९६० के भाद्रपद शुक्ल १३ को (चातुर्मास में) स्थानकवासी दीक्षा ग्रहण की आप जिस शान्ति और ात्मोद्धार को चाहते थे वह आपको वहां नहीं मिला। इस हालत में आपकी आचार्य श्रीविजयवल्लभसूरिजी (उस समय के मुनिश्री वल्लभ विजयजी म०) से भेंट हुई और आप की आज्ञानुसार निश्री ललितविजयजी म० के पास संवेगी दीक्षा स्वीकार की और आपका नाम मुनि सोहनविजयजी रखा। क्रमशः आपने अच्छ ी वि ा हासिल कर उपाध्याय पद को सुशोभित कर धर्म का अच्छा प्रचार किया। आपका जीवन धर्म वीरता से ओतप्रोत था।

उपाध्याय श्री सोहनविजयजी ०

(पं० स्था० वसंतामलजी)



आपश्री ने अपने उदार एवं न्तिकारी विचारों से
धर्म एवं समाज मे खूब ही जागृति की थी

काठियावाड़ी स्थानक मार्गी साधु अमीर्षि ने मुँहपत्ती का डोरा तोड़
आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरि के पास संवेगी दीक्षा ली



आचार्य श्री अजितसागरसूरि ।

. I ि ो जितसागर सूरिजी

(था० धु मीर्षिजी)

ाप श्री ाठियावाड़ स्थान मार्गी समुदाय के ए ाधु थे पर जब जैनागमों ा बारीकी ` ध्य- किया तो आप जान गये कि ह स्थान मार्गी त एवं साधुमार्गी त कल्पित खड़े किए हुए हैं और जैनधर्म वि ाचरण और उपदेश ` ये लोग जैन-समाज ो धोगति में लेजा रहे हैं, फिरतो देरी ही क्या थी ापने शिष्यों के साथ अध्यात्मयोगी ौर शान्तमूर्ति आचार्य श्री बुद्धि ागर सूरि के चरण कमलों आ र भगवती जैनदीक्षा को स्वीकार कर जैन-धर्म का प्रचार करने में खूब प्रयत्न कि । ापके परम्परा में ाज एक आचार्य बहुत से साधु ौर कई एक साध्वियाँ भूम ल पर विहार कर रहे हैं।



इस ग्रंथ के लेखक के गुरुवर्य

परम योगीराज मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज

आप कच्छ भूमि मांडवी में ओसवाल वंशी शाह कर्मचन्द की भार्या कमला देवीकी कुक्षि से जन्मे थे। आपका नाम पहिले रत्नचन्द था। आपनी दश वर्ष की किशोर वय में ही स्थानक सी समुदाय में अपने पिता के साथ दीक्षित हुए थे। बाद में १८ वर्ष तक निरन्तर प्राकृत और संस्कृत का गहरा अभ्यास कर जैन शास्त्रों का अध्ययन किया तो आपको मूर्ति अपूजकों का मत कृत्रिम मालूम हुआ। फिरतो । देरी थी। शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी के पास पुनः जैन दीक्षा ीकार करली। आपश्री ने गिरनार और आबू के पहाड़ों में रह कर योग साधना की थी। आपके ही कर कमलों से इस ग्रंथ के ले क की दीक्षा हुई है। अतएव इन योगीराज के चरण कमलों में कोटि वन्दन हो।

शान्तमूर्ति

पर ो िराज



मुनिश्री रत्नविजयजी महाराज

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज। मुनिश्री गुणसुन्दरजी महाराज।



पूज्य द नि श्रीज्ञानसुन्दर ी हाराज
(ाधुमार्गी नि रचन्द ी)

प श्रो का संक्षिप्त परिचय इसी ग्रन्थ के आदि में दे दिया है। आपने, साधु र्गी पूज्यश्रीलालजी महाराज के उपदेश से दीक्षा लेकर सतत ९ वर्षों तक शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् ओसियाँ तीर्थ पर वि० सं० १९७२ में परमयोगीराज मुनिश्री रत्नविजयजी महाराज साहिब के कर क ों से पुनः जैनधर्म की दीक्षा स्वीकार की है।

स्थानकमार्गी समाज का हमें उपकार मानना चाहिए कि ऐसे-ऐसे अमूल्य रत्न पैदा कर जैन समाज की सेवा में भेट किये हैं और भविष्य में भी करता रहे ऐसा उम्मेद है।

निश्री गु सुन्दरजी महाराज
(स्था० साधु गंभीरम ी)

आप श्री जन्म मारवाड़ के हरिमा नामक गाँव में ओसवाल जातीय (राँका गोत्रीय) श्रीमान् सेठ ओमराजजी मेहता के यहाँ वि० सं० १९२६ में । वि० सं० १९६१ मे स्था० पूज्य जयमलजी महाराज का समुदाय के साधु नथमलजी के पास दीक्षा ली। पर जब आप सत्य की शोध में निकले तो वि० सं० १९८२ में बिलाड़ा नगर में निश्री ज्ञान न्दर महाराज का सहयोग मि और आपने क की शोध बड़ी धूम से पुनः जैन दीक्षा स्वीकार करली। इ प्रंथ लिखने में आ । भी सहयोग य है।

स्थान   र्गी   माज का एक माननीय विद्वान्

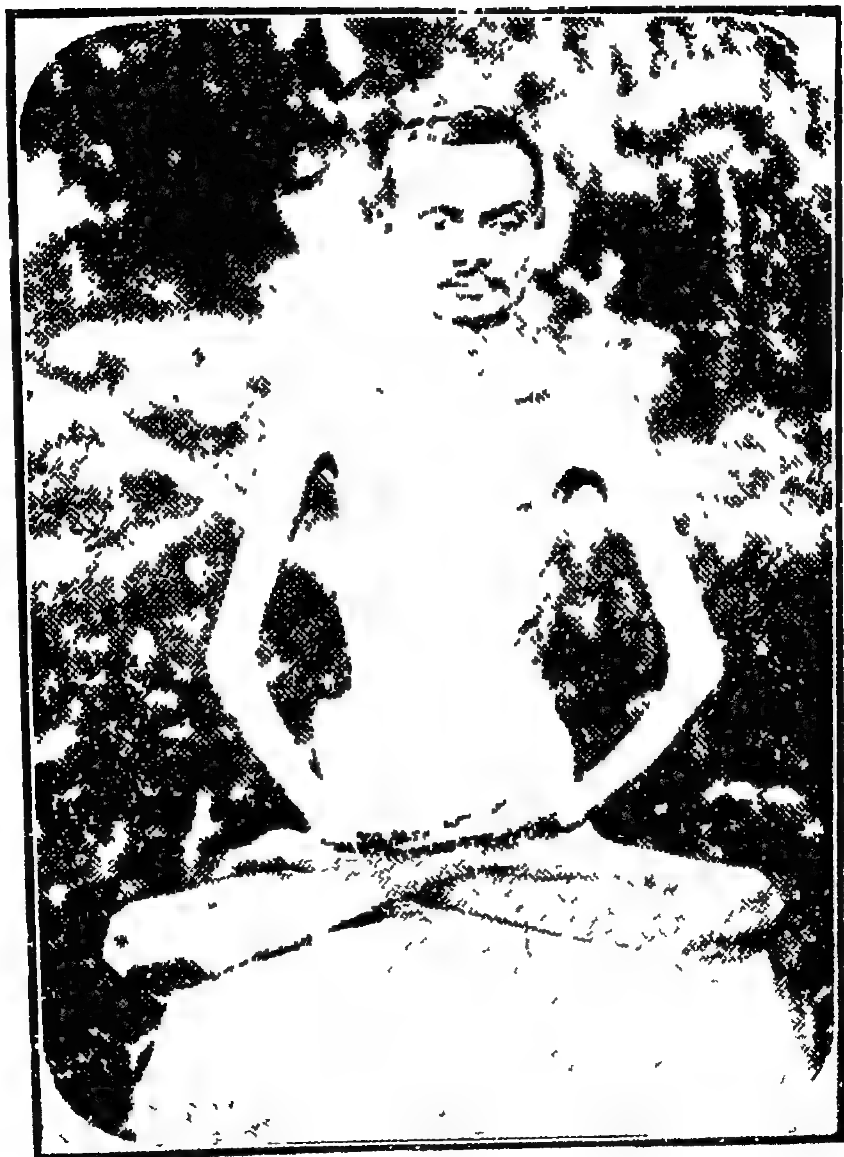
श्रीमद् रायचन्द्र

आप राजकोट के जवेरी और बम्बई में जवेरात का व्यापार करते थे तथा स्थानकमार्गी समाज में आप प्रसिद्ध विद्वान भी थे, आपने शास्त्रों का गहरा अभ्यास करके पना यह निश्चय प्रगट किया कि मूर्तिपूजा शास्त्र सम्मत धर्म का एक अंग है। साधारण जन के लिये तो उपकारी है ही पर योग्यावस्था एवं अध्यात्म श्रेणि के मुमुक्षुओं के लिये भी परमोपकारी है क्योंकि जब हम अन्यान्य साधनों को भी उपयोगी समझते हैं तब वीतराग की शान्तमुद्रा एवं ध्यान स्थित मूर्ति हमारे लिये उपादेय क्यों नहीं हो सकती है? अर्थात् मूर्ति की उपासना, जिस देव को लक्ष में र मूर्ति स्थापि की जाती है। उसी देवकी आराधना करना उपासक का खास लक्षबिन्दु है। अतएव अध्यवसायों की निर्मलता और श्रेणि चढ़ने में मूर्ति खास निमित कारण है। श्रीमद् रायचन्द्र ने पने नि लस हृदय से स्थानकमार्गी मत कल्पित सम उसको त्यागकर मूर्तिपूजा स्वीकार करली, इत ही नहीं पर पने हजारों भूले भटके हुए को मूर्तिपूजक बनाया।

स्थान मार्गी समाज ए विद्वान श्राव

पू ेध गेज े प तु

मूर्ति-पूजा स्वीकार की है



श्रीमद्रायचन्द्र—

ा पंजाबी ौर प्रदेशी ाधमार्गी समुदाय तथा मार ी एवं ाठियावा स दायके सैक ों ाधु असत्यको त्याग मार्ग का अवलम्बन किया र्थात् मुँहपत्ती के डोरा ो तो मूर्त्तिपूजा ो ी इसका ही प्रचार किया ौर कर रहे हैं जिनमें महान् पण्डित र मुनि श्रीचतुरविजयजी महाराज, पं० रंगविमलजी पं० रूप निजी गुलाबमुनिजी ठा० ४ नि न चंदजी जिनचंदजी प्रतिचंद्रजी ध्यानचंदजी, प विमलजी मलविजयजी म० शिवराजजी, रत्नचंदजी, रूपविजयजी मग्न- ागरजी, र ागरजी, विवेकविजयजी, समताविजयजी, इत्यादि इतना ही ो पर यह प्रथा तो आज भी विद्यमान हैं लहों में विद्वान एवं स्थ कवासी मुदाय में प्रतिष्ठित र मि ानजी, ाणचन्द्रजी गुलाबचंदजी वगैरह मुँहपती का डोरा तोड़ मूर्त्ति पूजा ी र हैं स्वामी कर्मचंदजी शोभाचंदजी मूलचंदजी व र वि ानों ने भी पनी दोषित मान्यता का त्याग कर मूर्ति पूजा पी द्ध ौर सनातन मार्ग का ही अबलम्बन किया हैं इ ा ी क्यों पर स्थानकवासी समाज के सेकड़ों विद्वान् सा पनी कायरतासे वाड़ा बाहर नहीं निकल सकते हैं पर वे समय मय परम पवित्र एवं ागम विहित तीर्थ श्रीश जय श्रीगिरनार श्रीशिक र रा क र ाबू ोसियाँ और कापरड़ाजी जैसे तीर्थों ी यात्रा र खूब ानंद टते हैं और कई तेरहपन्थी सा ी भि जी का मत ो दयादान हीन निकृष्ट म कर वे भी ह ी का ोरा तोड़ जैन दीक्षा को ीकार की है तेर - पन्थि नि ले ए सा ओं के करीबन ३०—३१ नम्बर मेरे ये हैं ।केवल । ों ने ी ।छाश्य कर स्थ क सी

या तेरहपन्थी मत का सदैव के लिए त्याग किया हो ऐसा नहीं है पर स्थानकवासी आरजियों (आर्याओं) ने भी सत्यधर्म की शोध ोज कर े इन कल्पित मत का परित्याग किया है जिस में श्रीमती ध्वी श्रीजी कल्याणश्रीजी गुणश्रीजी सुमतिश्रीजी रमणिकश्रीजो आदि कई साध्वियों ने भी संवेगी जैन दीक्षा को स्वीकार किया और वे आज भी विद्यमान हैं और स्थानकवासी श्रावक श्रावि एँ में तो ऐसा शायद ही कोई वचा हो कि जिन्हों ने अपनी जिन्दगी में एक अनेक वार तीर्थ यात्रा नहीं की हो ? और यात्रा करने लों के भाव भो इतने शुभ रहते हैं कि उस समय आयुष्य का वन्ध भी हो तो ुभ गति का ही होता है।

अब े स्थानकवासी समाज भी समझ ने लग गया है कि जैन मन्दिर न जाने से ही हम लोग सरागीदेव कि जहाँ मांस मदिरा चढ़ते हैं वहाँ जाने लग गये और हमारी संतान के भी यही सस्कार प जाते हैं जब ऐसे देव देवियों के पास भी हम जाकर ि र झुका देते हैं तो जैन मन्दिरों में तो हमारा पूज्याराध्य चौवीस तीर्थ रों की मूर्त्तिएँ स्थापित हैं उनके दर्शन मात्र से हमारे दिल में उन्हीं ीर्थङ्करों ी भावना पैदा होती है और वहाँ कहने योग्य नवकार या नमोत्थुणं या चैत्यवन्दन स्तवन स्तुति बोल मे हम उन्हीं तीर्थङ्करों के गुण गाते हैं जो समवसरण स्थित तीर्थ रों े गुण गाया करते थे अतः मन्दिर मूर्त्तियो का इ ि मारा महोदय का कार है इसलिए हमें तीर्थ यात्रा और मन्दिर मूर्त्तियों ेन सदैव करना ही चाहिए।

॥ इति प्र ॥



इति

श्री ान् लौंकाशाह के

जीवन पर ऐतिहासिक प्रकाश






ऐतिहा नोंध ऐतिहासि ा




भूमिका

संसार भर के ाहित्य में इतिहास का आ न सर्वोत्तम एवं सर्वोच्च है। ोंकि इतिहास में पक्षपात । भ ौर प्रमाणों की प्रबलता रहती है। सभ्य समाज का ;ति स पर पूर्ण प्रेम और स । विश्वास रहता है तथा वे इति- -ले क और इतिहास-पुस्तकों को बड़े आदर द ते हैं।

परन्‍ जब " विष मप्यमृतं क्वचित् भवेत् अमृतं वा विषं भवेत् " इस सिद्धान्तऽनुसार संसार की त्य का प्रदर्शक ;तिहा ो, अपने प पाती ले कों की बदौलत स ता का गला घोंट असत्यता के समर्थन में उतारू हो जाता है तब महान् दुः होता है। यद्यपि य बी ीं सदी का मय सत्य ा ऽन्वेषण का कहा जाता है, तदपि ऐसे ले कों का अब भी था अभाव नहीं है जो, अपने कलेजे कलुषित उद्गार नेका , निराधार मनः कल्पित बातें बना इतिहास के ऐतिहासि- की हत्या करने में ही अपने जीवन का साफल्य सम ते हैं। है वे इसमें पनी कपट- शलता एवं वा शूरता भी मते होंगे, परन्तु सत्यता की शोध करने वाला सभ्य समाज ो उन्हें निरा ज्ञ ही समझता है और उन्हें ऐसे २ निन्द्य लेखकों की लिपत कथाएँ पढ़ कर हठात् कहना पड़ता है कि "उपन्यास ों मों और तिथियों के अतिरि और सब बातें सच्ची होती हैं और इतिहास में नामों तथा तिथियों के तिरिक्त और कोई बात

सच्ची नहीं होती" इनका यह लक्ष्य समग्र इतिहासों की ओर नहीं किन्तु मिथ्यात्व सेवियों के लिखे कल्पित इतिहासों पर ही है। और ऐसे इतिहास तथा इतिहास लेखकों में हमारे जैन समाज के चिर परिचित वाड़ीलाल मोतीलाल शाह तथा तल्लिखित ऐतिहासिक नोंध का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने वि० सं० १९६५ में यह ऐतिहासिक नोंध गुजराती भाषा में लिख प्रकाशित करवाई थी। इसके बाह्य आकार प्रकार (टाईटिल पेज) को दे लोगों को यह आशा हुई थी कि इसमें जरूर ज्ञातव्य ऐतिहासि घटनाओं का उल्लेख होगा, परन्तु जब उसे उठाकर उन्होंने ाद्योपान्त पढ़ा और विचार किया तो सारी आशाओं पर पानी फिर गया और चित्त में अतिशय दुःख हुआ, क्योंकि शाह ने ऐतिहासिक नोंध के नाम पर जैन तीर्थङ्करों की मूर्त्तियों की, जैनाचार्यों और ब्रा णों की केवल भर पेट निन्दा नहीं, पर साथ में ही जैनाऽऽगम, जैनसाधु, जैनमंदिर-मूर्त्तियों और सामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान एवं देवपूजा का विरोध कर वालों की तिशय प्रशंसा की है। विशेषता यह है कि ऐतिहासिक नोध लि ते समय शाह के हृदय में ही नहीं पि उनकी नस नस में साम्प्रदायिकता के विष की व्यापकता थी, यह त इस पुस्तक के पढ़ने से स्वयमेव परिस्फूट हो जाती है। ह के लि े प्रत्येक वाक्य से विष वमन करती हुई यह स्तक अपने पृष्ठ १३५ पर से बताती है कि "लवजी ऋषि के एक साधु को अपने मन्दिर मे ले जाकर यतियों ने उसे तलवार े काट वहीं मन्दिर में गाड़ दिया। × × × यतियों की पट से सोमजी को एक रंगरेज ने विष देकर उनका जीव ले

लिया इत्यादि।" यदि इन गर्हित झूंठी बातों का प्रचार करने वा इस पुस्तक का नाम ऐतिहासिक नोंध न होकर "गप्प नोंध" अथवा "विष वमन नोंध" होता तो इसकी अभ्यान्तर आकृति के अनुरूप होता ? क्योंकि ऐसी घृणित बातों से तो उभय समाज में पारस्परिक वैमनस्य की ही वृद्धि होती है अतएव उपर्युक्त हमारा लिपत नाम ही इस पुस्तक के "यथा नाम तथा गुणः" के अनुसार ही युक्तियुक्त है।

यह एक न्यायसंगत बात है कि जब एक पक्ष की ओर से ऐसा कोई अनुचित आक्षेप दूसरे पक्ष वालों पर पुस्तकों में प्रकाशित किया जाय तब वह पक्ष "*मौन स्वीकृति लक्षणम्*" के अनुसार चुपचाप नहीं बैठ सकता ? । क्योंकि मिथ्या आक्षेपों का प्रत्युत्तर न देने से अपरिचित जन उन्हें उसी तरह सत्य समझ लेते हैं। बस, इसी को लक्ष्य में रख श्रीमान् ऋषभचंद उजमचंद कोठारी पट्टणपुरवालों ने वि० सं० १९६६ में "*साधु मार्गियों की सत्यता पर कुठार*" नाम की पुस्तक लिख शाह के मिथ्या आक्षेपों का बड़ी सभ्यता और युक्तियुक्त प्रमाणों से प्रत्युत्तर दिया था कि शाह अपना निःसार जीवन में इस विषय का एक शब्द तक भी उच्चारण नहीं कर सका। किन्तु स्थानकवासियों को यह कब अच्छा लगा कि जैन जगत् शान्त भाव और समाधि पूर्वक अपनी आत्मोन्नति में दत्तचित्त रहे। जब 'कुठार' के प्रकाशन से इनकी मिथ्या सत्यता पर पूर्ण प्रकाश पड़ने लगा तब इन्हें फिर विरोध की सूझी और वर्षों से दबी कलहाग्नि को पाखंड प्रकाशन से पुनः प्रज्वलित कर अन्त

ाज में फिर से विरोध पैदा किया और गुजराती ऐ० नों० का हिन्दी भाषान्तर छपवाकर, पूज्य जवाहिरलालजी म० के व्याख्यानों में वितीर्ण ।रू किया। न्यायतः उनका यह कर्त्तव्य था कि वे इ त को ठीक समझते कि व्यर्थ के खण्डन मण्डन से उ : जैन जगत् का ही ना करने वाली इस गुजराती पुस्तक की चर्चा जब २५ वर्षों से शान्ति होगई थी तो फिर इसका हिन्दी भाषान्तर क्या मतलब र सकता है? यही न कि जैनों में कोई हिन्दी का जानकार लेखक तो है ही नहीं जो इसको प्रत्युत्तर देगा, और ऐसा होने से अपना मतलब निकल जायगा परन्तु यह मझना केवल उनका भ्रम ही है। जहाँ जहरीले कीड़े मलेरिया फैलाने ो उड़ते हैं वहाँ जगत रक्षणार्थ कोई न कोई ऐसी हवा प्रवाहित हो ही जाती है जिससे उन कीड़ो का स्वयं इलाज हो जाता है।

अस्तु! उस पुस्तक के हिन्दी भाषान्तर के पढ़ने से भी यही विदित होता है कि इसके प्रकाशकों में शास्त्रीय और ऐतिहासिक ान के साथ सामयिक ज्ञान का भी पूरा अभाव है। उन्होंने ऐसा सोचा ही नहीं कि एक्य बढ़ाने के इस जमाने में क्लेशवर्धक हित्य वितरण करने से हमारी हँसी होगी या प्रशंसा? इससे लाभ होगा या हानि?। यद्यपि यह सबकुछ है किन्तु फिर भी निःसार पुस्तकों का प्रत्युत्तर देने में न तो मेरी रुचि है और न मेरे पास इतना समय ही है। पर कई एक भद्रिक सज्जनों ने मुझे हद से ज्यादा कहा सुना तो मैंने उन भद्रिक जीवों के भ्रम निवारणार्थ सच्ची बातें जाहिर करने को कुछ समय निकाल नोंध का प्रत्युत्तर लिखने में हाथ डाला है।

हालांकि मैंने नोंध को पूरी की पूरी समालोचना इ पुस्तक में नहीं की है, और क्षीण कलेवर पुस्तक में ऐसा होना भी असंभव है किन्तु फिर भी जो ास २ बातें थी उनका सप्रमाण सविस्तर निराकरण किया है। यदि स्थानकवासी भाई भी इसे निष्पक्षपात बुद्धि विचारेंगे और आद्योपान्त पढ़ेंगे तो वास्तविक का निर्णय स्वयमेव हो जायगा। तथा यह भी जाहिर हो जायगा कि वा० मो० शाह ने जैनों पर या लौंकागच्छीय यति श्रीपूज्यों पर जो मिथ्याऽऽक्षेप किये हैं वे प्रकृत में जैन धर्म को हो ानि पहुँचानेवाले हैं। शाह लिखित पुस्तक से जैन समाज में पारस्परिक वैमनस्य और राग द्वेष की वृद्धि के अलावा और कोई लाभ नहीं है।

मैंने शाह के आक्षेपों का निराकरण, शाह की भाँति वल कपोल कल्पित बातों पर ही नहीं किया है किन्तु इतिहा प्रमाणों और खास कर लौंकागच्छीय यतियों के प्रमाणों किया है। आशा है पाठक गण! इ लघु पुस्त को आद्योपान्त पढ़ कर अवश्यमेव सारासार का विचार कर लाभ उठावेंगे, यही शुभ भावना है।

“ न्दर”

० २१-८-३६
पाली (मारवाड़)

श्री मद् र प्रभ सूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

ऐतिहासिक नोंध की ऐतिहासिकता

श्रीमान् वाड़ीलाल मोतीलाल ाह, ऐतिहासि क नोंध लि ते समय जनता ो विश्वास दिलाने को वें प्रथम निम्न लिखि प्रतिज्ञा करते हैं कि ।

"यह लेख लिखते वक्त मने यह निश्चय किया है कि "किसी का पक्षपात या विरोध नहीं करूँगा, और अपने निश्चय को प्रभु की साक्षी से पालन करूँगा × × ।"

'ऐति. नों. पृष्ठ ३७'

 ाह यह प्रतिज्ञा करने के त् इस प्रति पालन किस ह से करते हैं जरा इसका भी ठ नमूना दे लें । ऐतिहासि नोंध लि ने में शाह का ास हेतु लोंकाशाह का जीवन लिखने का ही है ौर यह होना अनुचित भी नहीं है । न्तु सभ्य ले क का यह एकान्त कर्त्त है कि वह पने पुरुष की प्रशंसा के चाहे ल ही क्यों न बाँधें ? किंतु दूसरे तटस्थ पुरुषों की झूँठी और णित निंदा रना को योग्य नहीं । लेकिन शाह ने इ की कतई परवाह न र इ

नियम को किस तरह अपनी कुबुद्धि के पैरों तले कुचला है ? इसको हम आगे चल कर स्पष्ट करेंगे।

किसी भी व्यक्ति का इतिहास लिखने के पहिले उस व्यक्ति से संबन्धित इतिहास सामग्री की आवश्यकता रहती है किंतु लौंकाशाह का जीवन लिखते समय शाह के पास क्या सामग्री थी ? इसका खुलासा हम शाह के शब्दों से ही कर देते हैं:—

× × × इतना होने पर भी हम उनके खुद के चरित्र के लिए अबी अन्धेरे में हा हैं × × लौंकाशाह कौन थे ? कब ? कहाँ २ फिरे, इत्यादि बातें आज हम पक्की तरह से नहीं कह सकते हैं। जो कुछ बातें उनके बारे में सुनने में आती है उनमें से मेरे ध्यान में मानने योग्य ये जान पड़ती हैं × ×

ऐ. नो. पृष्ठ ५६

× × × पर इस तरह का उल्लेख उनके निगुणे भक्तों ने कहीं नहीं किया कि लौंकाशाह किस स्थान में जन्मे ? कब उनका देहान्त हुआ ? उनका घर संसार कैसे चलता था वे थे किस सूरत के, उनके पास कौन २ शास्त्र थे ? इत्यादि २ हम कुछ नहीं जानते हैं।

ऐ. नो. पृष्ठ ८७

मैं इस बात को अङ्गीकार करता हूँ कि मुझे मिली हुई हकीकतों पर मुझे विश्वास नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ इति-

हास लिखने की प्रथा नहीं होने से जुदी जदी याददास्ती में जुदा जुदा हाल लिखा है × × ×

ऐ. नो. पृष्ठ ८७

इस प्रकार श्रीमान् शाह, प्रभु की साक्षी पूर्वक उपरोक्त ले लिखते हैं इससे इनकी लि ी बातों में किसी प्रकार की असत्य एवं शंका को स्थान तक नहीं मिलता है पर शाह को यदि पूछा जाय कि जब आप लौंकाशाह के विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं कि यह कब जन्मे ? कब मरे ? तथा कैसे इनका घर संसार चलता था ? कहाँ २ इन्होंने भ्रमण किया, कौन शा इनको प्राप्त थे इत्यादि तो फिर आपने अपनी ऐति० नोंध में लौंकाशाह को बड़ा भारी हूकार, धनाढ्य, राजकर्मचारी, विद्वान्, । मर्मज्ञ और एक ही वर्ष में अपने नव निर्मित मत को भारत पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक फैलाने में ला ों चै - वासियों ो दया धर्मी बनाने वाला किस आधार से लिखा है ? क्योंकि उपर्युक्तभवत् प्रमाण से न तो झूंठ ही लि सकते हैं और न लौंकाशाह विषयक आपके पास कुछ प्रमाण ही हैं तथा यह भी संभव नहीं कि आप पने अतिशय ज्ञान पूर्वक ये सब बातें लि देते ? फिर सम में नहीं आता है कि ये बातें आपको कैसे मालूम हुई । क्या लौंकाशाह यं तो जन्म ले के आपके अंदर नहीं आ घुसे हों कि जिन्होंने अपना सारा । ारा किस्सा तिशयोक्ति पूर्वक ब्यौरेवार ापसे लि वा दिया ? यदि आपने लौंकाशाह का जीवन लिपत उपन्यास लि । है तो प्रभुकी साक्षी से की ई ापकी प्रतिज्ञा का पालन ों र ।, ौर स । लि । है तो पूर्व में प्रमाणों भाव । रोना क्या

रह के तौर पर बतलाता है ? अतः स्वतः आपकी नोंध की सत्यता में देह होजाता है।

वस्तुतः लौंकाशाह का जीवन कैसा था, इसका तात्विक विवेचन हमने "लौंकाशाह के जीवन पर ऐतिहासिक प्रकाश" न क पुस्त में लौंकाशाह के समकालिक साहित्य के आधार पर ि र ि यों पर पच्चीस प्रकरण लिख कर, इसी पुस्तक के ाथ द्रित करवा दिया है जिन्हें इच्छा हो वहाँ देखलें।

उदाहरणार्थ, उस ले का सारांश यह है:—"लौंकाशाह का जन्म वि० सं० १४८२ में लींबडी नगर में दशा श्रीमाली डूंगरशाह की चूडा भार्या की क्षि से हुआ था। जब लौंकाशाह ठ वर्ष के ए तब आपके पिता का देहान्त होगया। लौंकाशाह की बाल्याऽवस्था में ापकी भुआ (फूफी) के बेटे लखमसी ने प जो थोड़ा बहुत द्र शेष बचा था उसे हड़प कर लिया बाद में लौंका की १६ वर्ष की ाय में उनकी माता भी काल-कवलित होगई। लौंका ाह एक दम से निराधार होगए और लीं ी छोड़ अहमदाबाद ाये। वहाँ कुछ काल तक नौकरी कर ी मिथ्याऽभिमानिता के रण उसे बीच में ही छोड़ कोड़ी टकों की थैली ले नाणा ी का धंधा करना शुरू किया। उस समय लौंकाशाह यं सदा देवपूजा व सामायिकादि क्रिया करते त यतियों के यहाँ उपासरों में व्याख्यानादि सुनने जाया करते थे। यतियों के आचारादि के विषय में लौंकाशाह और यतियों के ापस में तकरार होगई। लौंकाशाह की प्रकृति अति उग्र और अभि ान वाली थी। तः यतियों ने उनका अपमान कर उपासरा से हिर कर दिया। तब लौंकाशाह वहीं बाहिर आ के बैठ

यतियों ी निंदा ने लगा। म आपके मित्र ैयद (मुसलमान) लि रे का हयोग मिलग तो उस न के संसर्ग एवं उपदेश से लौंका ाह की द्धि में वि ार ो आया। यतियों का निमित्त ले, मन्दिर उपासरों से विरोध के कारण लौंकाशाह ने जैन ाधु, जैनागम, जैन मंदिर ामायिक, पौसह, प्रतिक्रमण, प्र ख्यान दान और देव पूजा का बहिष्कार करते हुए, पाप-पाप, हिंसा-हिंसा ादि की पुकार कर पना ए ा मत खड़ा र दिया, परन्तु हमदाबाद कोई छोटा गाँव तो था नहीं जो झट से लौंकाशाह की वहाँ तूती बोल जाती, प्रत्युत अहमदाबाद तो तत्समय में जैनों का प्रधान केन्द्र था, तः वहाँ लौं ा ाह की थोथी आवाज को कौन सुनता ?

वहाँ े खि और तिरस्कृत हो लौंकाशाह अपने न्म स्था लींबड़ी गए और वहाँ पने फूफी े बेटे भाई ल मसो जो व ाँ का प्रधान राज कर्मचारी था उसकी शरण जा ब हाल सुना कर पने मन के दूषित विचार प्रकट कर दिये, तब ल ी ने कहा कि तुम लींबडी के राज्य में बेधड़क हो अपने विचारों का प्रचार करो। परन्तु लौं शाह य तिवृद्ध और पङ्ग थे : इतने संकुचित मय में पने यं प्रचार नहीं कर े। फिर भी भवितव्यता वश उन्हें भाण आदि तीन म ष्य मिल गए, और लौंकाशाह को समझाया कि ाप जो सामायिकादि ि ाओं का विरोध करते हो यह ठीक नहीं; कारण, इनके बिना न तो श्रावकों काम चलता है ौर न आपका ही चल गा! उस समय कालाति म से लौं शाह का क्रोध भी हो ग था, : भा ादि हना

उन्होंने ीकार कर लिया। तथा पूर्व में अज्ञता वश जो सामायिकादि क्रियाओं का बहिष्कार कर पाप सञ्चय किया था उसके मार्जनार्थ पश्चाताप और प्रायश्चित कर गोशाला की भाँति अपनी ात्मा को सम ाया परन्तु पकड़ी हुई बात एकदम छूटनी शिकल हो जाती है फिर भी जैन यतियों और जैन मन्दिर के साथ उनकी जो मनोमालिन्यता थी वह समयाऽभाव के कारण दूर नहीं हो सकी क्योंकि वि० सं० १५३२ में तो लौंकाशाह का देहान्त ही हो गया पर जो लौंकाशाह की विद्यमानता में ही भाणादि तीनो म ष्यों ने बिना गुरु स्वयं साधु वेश पहिन लिया था, लौंकाशाह के पश्चात् लौंकाशाह के नाम से ही अपना लौंकामत फैलाना शुरु किया, इत्यादि—

संक्षेपमें लौंकाशाह का सच्चा और प्रमाणिक यही जीवन इतिहास है, और इस विषय में वि०सं० १५४३ के पं० लावण्यसमय के वि०सं० १५४४ के उपाध्याय कमलसंयम के १५२७ तथा मुनीविका के एवं वि० सं० १५७८ के लौंकागच्छीय यति भानुचन्द तथा बाद यति केशवजी और स्थान० साधु जेठमल जी के लिखे ग्रंथ, इससे सहमत है। किन्तु आधुनिक वा० मो० शाह के लिखा हुआ लौंकाशाह के जीवन चरित्र मे और पूर्वोक्त लेखकों के लेख मे बड़ा भारी अन्तर नजर आता है अतः यह स्वतः सिद्ध है कि शाह का लेख सारा का सारा उनकी खुद की कल्पना का ढाँचा है। शाह की लिखी समग्र दलीलों का हमने अपनी लौंकाशाह के जीवन पर ऐतिहासिक प्रकाश नाम की पुस्तक में सप्रमाण निराकरण किया है, तदर्थ अब उनका पुनः पिष्ट पेषण करना उचित नहीं, जिन किन्हीं को आव कता हो, उसे पढ़कर अपना निर्णय कर लें।

परमेश्वर की त्तो से प्रतिज्ञा करने वाले शाह ने लौं शाह ी ओट मात्र ले जैन तीर्थ रों ो प्रतिमाओं ी जिस प्रकार निन्दा की है उसे यहाँ बतलाने की अब कुछ ावश्यकता शेष नहीं रह जाती। क्योंकि शाह के मय में और ां के समय में निशादिन ा अन्तर है। जो लोग द्वादश वर्षीय दुष्काल में शिथिलाचारियों ारा मूर्त्तिपूजा का आरम्भ मानते थे वे ही ाज गवान् महावीर प्रभु के बाद केवल ८४ वर्षों में ही विहिताचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तिपूजा का अस्तित्व अङ्गीकार रते हैं। इस हालत में उस सामयिक चर्चा े यहाँ स्थान देना अ प युक्त है, परन्तु केवल ास स्थानकमार्गी मुनि श्री मणिलालजी ा ी एक उदाहरण दे के यह बत ा देना चाहते हैं ि अब मूर्त्तिपूजा विषयक एडन मण्डन करने की किंचित् भी जरुरत नहीं है। वे कहते हैं:—

"सुविहित आचार्यो ए श्री जिनेश्वर देव नी प्रतिमा नुं अवलम्बन बताव्यूं अने तेनुं जे परिणाम मेलवत्रा आचार्यो ए धार्युं हतुं ते परिणाम केटलेक अंशे आव्युं पण खरूं। अर्थात् जिनेश्वर देव नी प्रतिमानी स्थापना अने तेनी प्रवृति (पूजा) थी घणा जैनों जैनेतर थता अटक्या अने तेम करवामा ओ आचार्यों ए जैन समाज पर महान् उपकार कर्यो छे ओम कहवामां जरा ए अतिशयोक्ति नथी"

प्रभुवीर पटावली पृ० १३१

मूर्त्तिपूजा और शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों की पुष्टी के लिए ापने केवल जैन धार्मिक साहित्य का ही नहीं, पर कई

एक जैनेतर धर्मों के वेद और पुराणों का भी परिशीलन कर अनेक प्रमाण देकर हजारों लाखों वर्ष पूर्व के तीर्थ और मूर्त्तियों का होना सि कर दिया है, देखो! स्वामीजी कृत प्रभुवीर पटावली पृष्ठ ५ से १२ तक। स्वामीजी की इस निष्पक्ष न्याय प्रियता के लिए उन्हें धन्यवाद देना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।

अस्तु! आज जो मूर्त्ति विषयक ऐतिहासिक प्राचीन प्रमाण स्थानकवासियो को मिले है, वे यदि वा. मो. शाह के हाथ भी लग जाते तो उक्त महाशय ऐसी लोचर दलीलें देकर कर्म बन्धन के पात्र कदापि नहीं बनते। वे प्रमाण आज यत्र तत्र मुद्रित हो चुके हैं, इतने पर भी संतोष न हो, वे मेरी लिखी "मूर्त्तिपूजा का प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक देख मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता के पोषक प्रमाणों को पढ़लें, और अपना अन्तिम निर्णय कर जैन तीर्थङ्करों की मूर्त्तियों की द्रव्य भाव से पूजा कर अपने आत्म-कल्या संपादन में संलग्न रहें।

श्रीमान् शाह ने अ ी ऐतिहासिक नोंध को पूर्णतया लिख उसे समर्पण करने के समय जिस निष्पक्ष मनोवृत्ति का परिचय दिया है उसकी यहाँ पृथक आलोचना करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, कारण, शाह की यह दूषित कल्पना स्वयं स्थानकवासी समाज को भी अनुचित एवं असामयिक प्रतीत हुई है, जिससे उन्होंने नोंध का गुजराती से हिन्दी भाषान्तर करते वक्त उस विषय को पुस्तक में से कतई निकाल दिया है। यद्यपि न्यायतः यह ठीक था, परन्तु इससे शाह की निंद्य मनोवृत्ति की तो जरूर भर्त्सना ही हुई है; फिर भी इससे एक लाभ है कि इस कल्पना को लक्ष्य कर अन्यान्य ले क शाह के विषय में जो अपने

विचार प्रकट करते, उस े वचने का शाह को जरूर प्रश्रेय मिल गया है। इस बुद्धिमानी के कार्य से यह भी प्रकट होता है कि भा ऽन्तरकार समयज्ञ तथा व्यर्थ के हानिप्रद भ्र ों को दूर रना चाहते हैं।

इससे आगे चलकर पाठक शाह की निष्पक्ष पाल वृत्ति का नमूना फिर देखें कि उन्होंने अपनी नोध के पृष्ठ ४७ से भगवान् महावीर के बाद जो आचार्य हुए, उनका जीवन इतिहास लि े ी जो उदारता दिखाई है, पर वह शाह के माने हुए ३२ सूत्रों से सिद्ध नहीं होती, और यदि य मानें कि यह इतिहास इन्होंने ३२ सूत्रों से न ले कर अन्य जैनाचार्यों के निर्मित ग्रन्थों से लिया है तो, उनके अन्दर से कई एक प्रधान घटनाओं को निकाल देना यह कोई निष्पक्ष न्यायप्रियता । परिचय नहीं है। यह तो मात्र ति निंदनीय चोरी प्रक्रिया का उदाहर है। योग्यता तो यह थी कि शाह को यदि जैनाचार्यों की लि ी वे सत्य घटनाएँ नाप न्द थीं तो उन्हें ज्यों की त्यों लिख फिर उन पर पना तंत्र नोट लगाना था, परन्तु ग्रंथकर्त्ता की मूल रचना को ही हड़प । मानों एक सत्य हित्य का खून करना है और ऐसा करना र्व - रसा तथा विशेष कर प्रमु ी ाची े निष्पक्ष भाव े लिखने की प्रति । करने वाले शाह े लिए तो लज्जा । ही रण है। नीचे जरा नमूना देखलें: —

(१) ाचार्य शय्यम्भव सूरि के इतिहास में य स्तम्भ के ीचे श्री न्तीनाथ की प्रतिमा थी ौर उसके दर्शन े ही प प्रतिबोध पाकर य कार्य ोड़ जैन धर्म की दीक्षा ी

थी, परन्तु शाह ने प्रतिमा पूजन सिद्धि के भय से इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया।

(२) आचार्य भद्रबाहु ामी ने दस सूत्रों पर निर्युक्तिएँ ाई थीं, और उन निर्युक्तियों में शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करने से सम्यक्त्व निर्मल होना बतलाया है। जिसे भी शाह ने छोड़ दिया।

(३) आचार्य सुहस्ती सूरि के इतिहास में आपने सम्राट् सम्प्रति को प्रतिबोध कर जैन बनाया, और आचार्यश्री के उपदेश से स ाट संप्रति ने भारत के बाहिर पाश्चात्य प्रदेशों में भी जैन धर्म का प्रचार किया, तथा भारतमें सवा लाख नये मन्दिर बनाए। और ६०००० जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया, इत्यादि, जिसे भी लिखने से शाह ने आनाकानी करदी।

(४) आचार्य व ामी के इतिहास में बोधराजा जैन मन्दिरों के लिए पुष्प नहीं लाने देते थे। आचार्य वज्रस्वामी ने अपनी लब्धि के प्रयोग से पुष्प लाकर बोधराजा को प्रतिबोध कर जैन बनाया। इसका उल्लेख भी शाह ने छोड़ दिया।

(५) आचार्य सिद्धसेन सूरि के इतिहास में उन्होने राजा विक्रम को प्रतिबोध दे जैन बनाया और अवंति पार्श्वनाथ का तीर्थ प्रकट किया, इसका निर्देश भी शाह ने छोड़ दिया, तथोसाथ में ही सम्राट विक्रम ने श्री सिद्धाचलजी का विराट्संघ निकाला, उसे भी नहीं लिखा।

इत्यादि-जहाँ जहाँ मन्दिर मूर्त्तियों का उल्लेख आता है, वहाँ वहाँ शाह ने अपने पूर्वजों की तस्कार वृत्ति का अनुकरण कर उस विषय को ही निकाल दूर फेंक दिया। हम पूछते हैं कि शाह

ी इस अनुचित वृत्ति से उनकी पूर्व प्रतिज्ञा का क्या बलिदान नही हुआ है ?

इससे आगे शाह ने अपनी ऐ.नो. पृष्ट ३० में कई अर्वाचीन आचार्यों के रचित ग्रंथों के उदाहरण देकर अपनी अनभिज्ञता का दिगदर्शन करवाया है। क्योंकि शाह के मान्य मत की टूटी फूटी टटपूँजी दुकान से तो मिलता ही क्या है ? जिसका कि शाह पनो पुस्तक मे स्वतंत्र वर्णन करते। हाँ, जैनधर्म जरूर विशाल दुकान रूप है जिसमे अच्छा मे अच्छा सब तरह का माल मिलता है जैसे जैनागमों में बारहवाँ दृष्टिवाद नामक अङ्ग है जिसमें धार्मिक, राजनैतिक सांसारिक, व्यापारिक, वैद्यक, ज्योतिष, शकुन, स्वरोदय, सग्राम, मंत्र, यंत्र आदि सांसारिक छोटे से बड़ा सब प्रकार का उल्लेख है। ऐसा कोई भी विधान शेष नही है जो इस दृष्टिवादांऽग में नही हो ! इस दृष्टिवाद के रचयिता भी कोई साधारण व्यक्ति न हो कर स्वयं तीर्थङ्कर गणधर हैं और इनकी परम्परा मे अनेको धर्म धुरन्धर बड़े बड़े विद्वान आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अनेकों विषयो पर अनेकाऽनेक उत्तम ग्रंथ रचे हैं। पर शाह को इतना ज्ञान हो कहाँ है कि वस्तु-धर्म का प्रतिपादन करना ज्ञान का विकास है और आदेश उपदेश देना तथा नहीं देना यह चारित्र धर्म का रक्षण है। जब शाह कई एक साधारण ग्रंथों को देखते है तो उनका पेट फूल उठता है, और जैनाचार्यो की मिथ्या निंदा करने को उतारू हो जाता है, पर खास शाह के माने हुए ३२ सूत्रो में चन्द्रप्रज्ञाप्ति और सूर्य प्रज्ञाप्ति नामक सूत्र है उनको देखने पर यह मालुम होगा कि इन मूल सूत्रो में भी कैसे कैसे विधान है जो नक्षत्रो के अधिकार में आते हैं।

क्या वस्तु धर्म का प्रतिपादन करना, यह जनता को उपदेश देना है ? नहीं। यदि नहीं है तो फिर शाह को समझना चाहिये कि उन ग्रन्थकारों ने वस्तु धर्म का प्रतिपादन करने में क्या बुरा किया, उनकी ओट में जैनधर्म के स्थम्भ धुरंधर आचार्यों की निंदा की जाय फिर भी कोई व्यक्ति यदि जैनधर्म के विरुद्ध छ लि` तो उसकी जिम्मेवारी समस्त जैनसमाज पर कदापि नहीं हो सकती।

शाह, यं क्या यह मानने को तैयार हैं कि यदि कोई स्थानकवासी अपने समाज मान्यता के विरुद्ध कुछ लिखे तो उसका उत्तरदायित्व सर्व स्थानकवासी समाज पर होगा ? ।

शायद यह संभव हो सकता है कि यदि शाहकी एक आँख में पेचक का रोग होगया हो तो उनका लक्ष्य बिन्दु जैन-धर्म के उत्तमोत्तम ग्रन्थो की ओर नहीं जा सका हो। जैसे:—"अनेका तजयपताका, अनेकान्तवाद-प्रवेश, स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वाद मञ्जरी, सम्मतितर्क, प्रमाण नय तत्त्वाऽलंकार, न्यायाऽऽलोक, न्यायाऽवतार, न्यायाऽमृततरङ्गिणी, न्यायप्रवेश, नयचक्रवाल, नय द्रव्यप्रमाण, द्रव्याऽलङ्कार, कर्मग्रन्थ, कर्मप्रकृति, पंचासक, पंचप्रमाण, प्रमाणमीमांसा, तत्वप्रवेश, सर्वज्ञसिद्धिप्रकरण, अध्यात्म कमल मार्त्तण्ड, अध्यात्मसार, अध्यात्मदीपिका, अध्यात्म कल्पद्रुम, ध्यानसार, ध्यानदीपिका, योगप्रदीप, योगकल्पद्रुम, योगसार, तत्त्वार्थसूत्र, षड्दर्शनसमुचय आदि हजारो लाखों ग्रन्थ हैं जिनकी कि पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानो ने मुक्त कण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा की है। परन्तु वा० मो० शाह को इससे क्या मतलब, उन्हे तो "येन केन प्रकारेण" जैनाचार्यों को

हलका दि ाना तथा उन ी निंदा करना है ौर इ के लि ए वे अच्छे बुरे चाहे जिस कि सी मार्ग का अवलंबन करने ो तै र ो हैं। शास्त्रकारों ने ठीक ो कहा है कि "काग त्ता माणसों, सू र ौर साँडा ये अच्छे पदार्थों को छोड़ बुरी वस्तुओं पर ही अपनी जीभ लप लपाया करते हैं और बदला में विषय उगलते हैं।"

आगे जैनाचार्यों के ज्ञान के विषय शाह के ये उद्गार उन जैनाचार्यों के प्रति व्यक्त किये हैं जो मन्दिर मूर्त्तियों के मानने वाले ौर मुँह पर दिनभर मुँहपत्ती बाँधने का निषेध करने वाले हैं। ोंकि शाह स्वयं तो मन्दिर मूर्त्तियों की पूजा छोड़कर और दिनभर मुँ पर मुँहपत्ती बाँधने में ही जैनधर्म को उन्नति मानता है, और यह ान (वस्तुतः अज्ञान) उन पूर्ववर्त्ती जैनाचार्यों में नहीं था, और न उन्होंने ऐसा उपदेश ही दिया, इस े ये धुरन्धर जैनाचार्य शाह को फूटी आँख भी नहीं सुहाते हैं। आगे शाह ने जो आक्षेप आचार्यों के उन अलौकिक चमत्कारों पर किया है, यह भो शाह की मात्र अज्ञता ही है। शाह ने शायद इन चमत्कारों को बच्चों का े ल ही सम लिया है, पर यह ऐसा नहीं है। शाह यदि किन्हीं जैन विद्वान की कदम-पोषी र उनसे उत्पत्तिक-सूत्र सुनने का कष्ट करते तो उनका यह भ्रम भी दूर हो जाता, और यह पता चल जाता कि जैन धर्म में इन चमत्कारों का आसन कितना ऊँचा है और ये किन घोर तपों द्वारा प्राप्त होते हैं। जैनशा जिन्हें लब्धि नाम े पुकारते हैं वही चमत्कारों का पर्यायवाची शब्द है। जब एक समय शाह के पूर्वज तथा लौंकाशाह आदि के पूर्वज जो कि मांस, मदिरा, व्यभिचार ादि व्यसनों का

सेवन कर नरक के अधिकारी वन रहे थे तब भी तो इन्हीं ाचार्यों ने अपने आत्मिक चमत्कार बता कर उन नरकाभिमुख मनुष्यों को जैनधर्म मे दीक्षित कर उन्हे तथा उनकी सन्तान को मोक्ष या स्वर्ग के अधिकारी बनाया था, प्रत्युपकार में शाह आज उन्हीं आचार्यों का ऐसे निंद्य शब्दो से प्रत्युपकार कर रहा है, क्या शाह की यही कृतज्ञता दृष्टि है ? यदि हाँ ! तो ऐसे कृतज्ञो को एक बार नही अनेकों बार सभ्य संसार की ओर से धन्यवाद (!) है '

वस्तुतः जेनाचार्यों ने अपने ज्ञानोपदेश और आत्मिक चमत्कारों से केवल जैनसमाज का ही नहीं अपितु जैनेतर एवं सर्व संसार का हित साधन किया है, परन्तु कृतघ्न और दृष्टि राग रोगी वा० मो० शाह को उपकार अपकार के रूप में ही नजर आता है। अरे शाह ! उन आचार्यों में ज्ञानोपदेश की शक्ति थी या नहीं और उन्होने कोई उन्नति की, या नहीं ? इसकी वास्तविकता को तो जैन और जैनेतर सुज्ञ समाज भले प्रकार से जानता ही है, आपको उन्हे बताने की कोई जरूरत नहीं। पर हाँ ! आप के माने हुए उन आचार्य प्रवरों के ज्ञान और उपदेश का नमूना तो जरा आप को दिखाना था कि जिन्होंने सिवाय जैनों के पतन और जैनो पर कलङ्क कालिमा पोतने के और भी कोई संसार में आकर कार्य किया था ?

शाह ने ऐ० नो० पृष्ठ १८ पर एक दुष्काल का वर्णन करते वक्त जैन साधुओ के हाथ में दंड रखने की प्रथा को और श्रावक के वन्दना करने के अनन्तर आचार्यश्री की ओर से दिये जाने वाले 'धर्मलाभ' नामक आशीर्वचन को उपहास का रूप दे उसके

विषय मे नितान्त अ ता का परिचय दिया है। पर शाह को यह मालूम नहीं कि जैन साधुओं को गमन समय में दंडा र ना श्री दशवैकालिक सूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र, भगवतीसूत्र, व्यवहारसूत्र निशीथसूत्र आदि धार्मिक ग्रन्थों में परम आवश्यक बतलाया है, और ये सब सूत्र, ३२ सूत्रों ` न्तर्गत हैं तथा शाह यं इन्हे मानते हैं। इतना ही क्यों स्था० साधु अमोल विजी ने पूर्वोक्त सूत्रों के हिन्दी अ वाद में साधुओं के दंडा र ने का विधान अच ी तरह से किया है। पक्षपात का चश्मा दूर कर शाह जैनशा सुनता तो महापुरुषों की निन्दा कर कर्म बन्ध करने का समय नहीं आता। "धर्मलाभ" के विषय में तो ास भगवान् महावीर प्रभु ने भी सुलसा चरित्र मे सुलसा को धर्मलाभ कहलाया था। नन्दीसेन मुनि ने वेश्या के घर जाकर जब उसे 'धर्मलाभ' दिया, तब वेश्या ने कहा, यहाँ तो अर्थलाभ है, इस उपाख्यान का हमारे साधुमार्गी भी मानते हैं। तथा हरकेशी मुनि ने भी य मण्डप में जाकर सर्वप्रथम तत्रस्थ ब्रा णको धर्मलाभ ही कहा था। इसी प्रकार आगे चलकर भगवान् महावीर प्रभु के ३० वर्ष बाद आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर की रा भा में प्रवे करते व जब राजा ने सामने ाकर आचार्यश्री को वन्द की तो आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरी ने राजा को धर्मलाभ दिया। शिवपुराण नामक एक प्राचीन ग्रन्थ※में भी इस बात का उल्ल है कि जैनमुनियों को जब कोई आकर नमस्कार करता है तब वे प्रत्युत्तर में सर्व प्रथम उन्हें धर्मलाभ कहते हैं। पर शाह ा द्वेष

※ स्थानकवासी साधु मणिलालजी अपनी "प्रभुवीर पटावली" नामक पुस्तक के पृष्ठ ८ पर शिवपुराण अध्याय २१ श्लोक २६ को उद्धृत

तो सीमा को उलाँघ गया है अतः उन्हें वन्दना के आशीर्वाद रूप में दिया जानेवाला धर्मलाभ शब्दभी खटक रहाहै किन्तु यह शाह की मिथ्या भ्रान्ति है। शाह को पहिले यह तो विचारना था कि जब शाह के धर्माचार्य पहिले "हाँजी" और अब "दयापालो" हते हैं यह किस आधार से कहते हैं।

वार में धर्मलाभ आशीर्वादाऽऽत्मक है, जब दया उपदेश । जब भ जन आ के साधुको नमस्कार करते हैं तब साधु द्वारा उन्हें उपदेश के स्थान में आशीर्वाद देना ही युक्तियुक्त एवं न्याय सङ्गत है अतः वन्दनाऽनन्तर जैन श्रावक के पति "धर्मलाभ" र्थात् सम्यक् ज्ञान दर्शन व दानाऽऽदिक धर्म की वृद्धि हो ऐसा रण करते हैं ! परन्तु शाह एवं शाह के पूर्वजों को इतना ोकि ज्ञान भी नहीं कि वन्दना करने वालोंको आशीर्वाद देना चाहिए या उपदेश, इसका निर्णय कर सकें ?

ई लोग ऐसा भी कह उठते हैं कि साधुको गृहस्थो के घर में चुपचाप जाना चाहिये कि जैसा हो वैसा निर्वद्य आहार ी मिल जाय, क्योंकि धर्मलाभादि कोई संकेत करके जाने में थ दोष गा देने की शंका रहती है ? यह कहना नीतिशास्त्र भि ोका है। क्योंकि एक गृहस्थ दूसरों के नहीं पर अपने ज ा है उस भी कुछ संकेत करके जाता है क्योंकि घरमें स्त्रियें न करतीहो या असावधान लज्जातज के बैठी हो तो

कर लाभ शब्द को ५००० वर्ष का प्राचीन बतलाया है तद्यथा:—

"धर्मलाभ" परन्तत्त्वं, वदन्त स्ते तथा स्वयम्।

मार्जनीं धार्यमाणा स्ते, वस्त्र खण्ड विनिर्मिताम् ॥ २६॥

वे सावधान होजाय। तब साधु जैसे महाविवेकी पुरुष, चोर की तरह गुपचुप किसी के घरमे जाना कैसे पसन्द करसकें ? उनको तो धर्मलाभादि संकेत अवश्य करना ही चाहिये ! अब रही आहार पानी की बात,सो जो श्रावक ाधुओं का आचार व्यवहार जानता है वह तो कदापि सावद्य को निर्वद्य कहेगा नहीं कारण ऐसा करने से अल्पायुष्य का बन्ध होता है और जो साधु ों का रागी ही नहीं है उ े ऐसा करने को जरूरत ही क्या ! दूसरा, साधु बड़े ही विवेकी होते हैं। वे स्वयं अपनी प्रज्ञा से ब छ जान क्ते हैं और साधु जो दोष टालतेहैं वह भी व्यवहारसे क्योंकि निश्चय तो ातिशय ान वाले ही जानते हैं परन्तु लोकव्यव ार न जानने वाले सा ु कभी चोरों की तरह गुप चुप गृहस्थों के घर मे प्रवे करने से धो । खाकर लज्जित होते हैं इसके लिये एक शा र उदाहरण है कि ए विवेकहीन स्था० साधु ने ए गृहस्थ े घर में गुपचुप चोर की तरह प्रवेश किया। उस मय उस घर में स्त्री पुरुष ए ान्त मे काम क्रीड़ा कर रहे थे। सा ने न्दर जाकर कहा, बाई सूजति है ? उस ुरुष को इतना गुस्सा ाया कि साधु े एक लप्पड़ जमादी। उस समय उसको सहसा हना पड़ा कि जो संवेगी साधु संकेत पूर्वक गृहस्थों के घर में जाते हैं यह ब त अच्छ ा है समझे न।

आगे चल र ऐ० नों० पृष्ठ १९ पर शाहने दुष्काल में मूर्ति े सामने जैन ओं द्वारा अन्नादि द्रव्य भेंट रवाने की कल्पना डाली इत्यादि, पर शाहको सोच चाहिए कि जि का निषेध र चु ँ नः उ का उल्ले कैसे करूँ ? ए ह तो लिखते हैं कि—

"× × × इस भयङ्कर समय में दुनियाँ स्वयं ही दयाजनक स्थिति में आपड़ी और भूखों मरने लगी फिर बिचारी दान कहाँ से करती।" इत्यादि

और आगे चलकर फिर लिखते हैं "× × भगवान् की मूर्त्ति के सामने अन्नादि रखने से, द्रव्य आदि भेंट करने से, धर्म होता है, ऐसा उपदेश दिय" ऐ० नो० पृष्ठ १९

शाह ! एक कहावत प्रसिद्ध है कि पीलिये के रोगी को सारा संसार ही पीलापन लिए नजर आता है, तद्वत् विचार शून्य बुद्धि ले को भी, सारा संसार, विचार शून्य, नजर आता है परन्तु यह केवल नादानी है, पीलिये के लिए संसार भले ही पीला हो परन्तु निरोगों के लिए वह पीला न होकर अपने खास रूप में ही है, वैसे ही आप विचार शून्य हैं अतः परस्पर विरोधोक्ति पूर्ण बातें आपको भले ही रुचिकर जान पड़ें किंतु जिसने जरा भी विचार बुद्धि सी ` है उसके लिए आपकी ये भ्रान्ति पूर्ण बातें थोथी ही हैं। आप थोड़ी देर के लिये भी पक्षपात प्रवृति का चश्मा उतार कर यदि अपने खुद के शब्दों पर ही विचार करते तो यह स्पष्ट होजाता कि जब दुनियाँ दुष्काल के कारण भूखों मरती हुई साधुओं को भी दान देने मे लाचार थी तब, उस समय में मूर्त्ति के मने अन्नादि भेट करने की यह नई रीति निकालने का साधू उपदेश देते तो दुनियाँ उसे कैसे स्वीकार कर सकती थी यदि नहीं तो फिर शाह का कथन शाह के शब्दों से ही मिथ्या सिद्ध होजाता है। वस्तुतः भगवत् मूर्ति का अष्ट द्रव्य से पूजा करने का विधान कोई नया नही किंतु स्वयं तीर्थंकरों का कहा

हुआ है, अतः चाहे जैसा ही दुष्काल क्यों न पड़े पर भावुक भक्तजन तो जहाँ तक मिल सकता है वहाँ तक प्रभु पूजा करके ही भोजन करते हैं, और इसी का ही नाम इष्ट-धर्म है। क्यों समझे न ?

× × ×

शाह ने इसप्रकार सच्ची झूँठी. बर केवल जैनाचार्यों ही की ली हो सो नहीं किन्तु आप तो लौंकागच्छीय यति और श्री पूज्यों से भी नहीं चूके है, चलती राह दो छींटे कीचड़ के उधर भी उछाल दिये हैं। आप अपनी ऐ० नोंध० के पृ ८१ में लिखते हैं कि:—

इस समय चतुर्विध संघ की जगह पंच विध संघ हुआ, अर्थात् साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, ऐसे संघ के चार भागों में "यति" अर्धसाधु का एक अंग और भी शामिल हुआ × ×

तथा इसके अगाड़ी शाह पृष्ट ८४ पर लौंकागच्छीय यति और श्रीपूज्यों के लिए एक झंडेली ओर्डर निकालते हुए लिखते हैं कि:—

"श्वेताम्बरी. स्था० साधुओ से यतियों को अकड़ कर नहीं चलना चाहिये। किन्तु अपने से उन्हें उच्चास्थिति का मान कर विनय पूर्वक उनसे वर्तना चाहिऐ × ×"

ऐति' नो पृष्ठ ८४

लौंकागच्छीय श्रीपूज्यों एवं यतियों के प्रति शाह का छिपा हुआ यह कितना द्वेष-भाव है कि चतुर्विध संघ से उनका आसन तक निकाल दिया और उनके लिए एक पाँचवें आधे आसन की

नयी कल्पना कर डाली जो आज पर्यन्त भी सिवाय शाह के किसी तीर्थङ्कर, गणधर, या जैनाचार्य ने नहीं की थी। हम शाह से पूछते हैं कि क्या यह लौंकागच्छीय श्रीपूज्यों व यतियों और उनके उपासकों का अपमान नहीं है ?

जिन धर्मसिंह लवजी को लौंकागच्छीय आचार्यों ने अयोग्य और उत्सूत्रवादी जान कर संघ-गच्छ के बाहिर करदिया था, ोंकि धर्मसिंह ने तीर्थङ्करों और लौंकागच्छ की आज्ञा को भंग कर आठ कोटि का नया मत चलाया, और लवजी ने डोरा डाल दिन भर मुँह पर मुँहपत्ती बाँधने का नया पन्थ निकाला उनको तो शाह ने चतुर्विध संघ के अंदर आसन दिया। और जो खास कर लौंकाशाह के अनुयायी हैं उनको संघ के बाहिर भी आधा ासन देने की कल्पना की। इतना ही नहीं किन्तु उन गच्छ बहिष्कृत निन्हव उत्सूत्र वादियो को लौंकागच्छी श्रीपूज्य और यतियों से उच्च मान कर उल्टा उनसे विनय भाव से वर्त्तने का आदेश दिया, क्या यह शाह का सरासर अन्याय नहीं है ? पाठक वृन्द जैन धर्म में क्रिया की बजाय श्रद्धा की अधिक ीमत है। जमाली ने ब त कुछ क्रिया की पर श्रद्धा न होने से व निन्हव उत्सूत्र वादियो की पंक्ति में ही समझा गया। और र्श्वनाथ प्रभु की साधि ों में शिथिलाचारिता होने पर भी श्रद्धा के कार उन्हें एकावतारी बतलाई है। इसका अर्थ कोई यह नहीं कि मैं शिथिलाचार की पुष्टि करता हूँ किंतु श्रद्धा के सामने क्रिया की कोई कीमत नहीं इसे सिद्ध करता हूँ। बिना आज्ञा के तो क्रिया उल कर्म बंधन का हेतु होती है यह शास्त्रों से प्रत्यक्ष है। र! भी हो लौंकागच्छ के यति व श्रीपूज्य शाह के निर्देश

लौंकाशा की आ । का निरबाध पालन कर रहे थे पर स्थान वासियों में न तो जैनत्व है और न लौंकात्व है, यही नहीं किन उनमें तो कोई वंमान्य नियम भी नहीं हैं, जिनके दिल में गो या वे उसे ी मान अपना नया मत निकाल बैठते हैं। ाणार्थ यह बात खुद शाह ही ने अपनी नोंध के पृष्ठ १४१ में पने स्प शब्दों में लि दी है कि:—

× × इतना इतिहास लिखने के बाद व मैं पढ़ने वालों का ध्यान एक बात पर खींचता हूँ कि स्थानकवासी-साधुमार्गी जैनधर्म का जब से पुनर्जन्म हुआ और जब यह धर्म अस्तित्व में आया तब से आज तक यह जोर-शोर पर था ही नहीं । अरे ! इसके कुछ निमय भी नहीं थे यतियों से अलग हुए और मूर्ति पूजा छोड़ी कि बस ढूंढिया हुआ × × × × मेरी ल्प बुद्धि के अनुसार इस तरकीब जैनधर्म को बड़ा भारी नुकसान पहुँचा और इन तीनों के १३०० तेरह सौ भेद हुए ।

× × × ×

ऐ नों. पृष्ठ १४१

हालत में यह म में नहीं ाता है कि । फिर ऐसा र ों नि लते हैं। शायद इ का यह ारण तो नहीं ि लौं गच्छीय यति व श्रीपूज्य लोग मन्दिर मूर्ति मानते हुए, डोरा डा दिनभर मुँह पर हपत्ती नहीं बाँधते इसी तो यह ष पूर्ण दबाव ला जारहा है। पर ह ो रहे ि लौं गच ं श्रीपूज्य और य इतने

भोले नहीं है कि अपने पूर्वजों ने जिन व्यक्तियों को गच्छ से बहिष्कृत किया आज उन्हीं की सन्तान को वे अपने से उच्च-स्थिति का मान उनसे विनयता का बर्ताव करें तथा शास्त्र सम्मत मूर्तिपूजा को छोड़ शास्त्र विरुद्ध मुँहपत्ती को दिनभर मुँह पर बाँध एक नयी आपत्ति को मोल लें ?

जैसे शाह ने औरों की खबर ली है वैसे ही शाह की क्रूर दृष्टि से वे ब्रा ण भी नहीं बचे है जिन्होने जैनधर्म की दीक्षा ले आचार्यपद को सुशोभित किया था और साहित्य सेवा कर जैन साहित्य के भण्डार को भरा दियाथा। उनके विषय में शाह अपनी ऐ० नों० के पृष्ठ ३३ पर अपना रोष इस प्रकार प्रकट करते हैं कि:—

× × × *ब्राह्मणों में वैयाकरणी, नैयायिकादि हजारों मारे २ फिरते थे, उनको कोई नहीं पूछता था। जब उन्होंने देखा कि जैनियों मे खूब चलती है तो उन्होंने जैन-धर्म का पक्ष किया, और इस मत के लिए सैकड़ो पद्यमय विधिग्रन्थ बना डाले। जैन उनकी विद्वत्ता को पवित्रता समझने लगे, और कई एक जान बूझ कर भूल में पड़े। क्योंकि उन्होने जैसे हो तैसे मत बढाने का इरादा रक्खा था* × ××"

यह बात ठीक है। जैनधर्म में खास कर भगवान् महावीर के शासन समुदाय में ब्राह्मणों ने विशेष लाभ उठाया। जिसमें भगवान् इद्रभूति (गौतम ।मी) आदि ४४०० ब्राह्मण, शय्यम्भवभट्ट ब्राह्मण, यशोभद्र ब्राह्मण, भद्रबाहु ब्राह्मण, आर्य सुहस्ती ब्रा ण, सिद्धसेनदिवाकर ब्राह्मण, हरिभद्रब्राह्मण, शोभ न

धनपाल ब्राह्मण,आर्यरक्षितसूरि ब्राह्मण जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि ब्राह्मण इत्यादि बहुत से ब्राह्मण, जैनाचार्य हुए। जो बड़े २ दिग् विजयी विद्वान् थे, तथा जिन्होंने जैनधर्म की दीक्षा लेकर नाना विषयों के विविध ग्रन्थ गद्य-पद्य-मय बनाड़ाले। जिनमे दार्शनिक, तात्विक, अध्यात्मिक योग ध्यान न्याय, व्याकरण, काव्य अलंकार, छन्द और विधि-विधान के हजारों ग्रंथ बना के उन्होंने साहित्य की 'गठित सेवा की थी। और उनका सिद्धान्त भी यही था कि जैसे वने तैसे जैनधर्म का खूब जोरो से प्रचार करना चाहिये। अर्थात् जैन धर्म को विश्व व्यापी बनाने में उन्होंने अत्यन्त परिश्रम किया। तथा संस्कृत साहित्य की अभिनव सृष्टि रच कर 'सार में जैनधर्म को एक वारगी खूब चमका दिया जिसकी गर्जना आज भी समग्र संसार मे होरही है। पौर्वात्य और पाश्चात्य जैनेतर विद्वान् आज उस साहित्य की मुक्तकण्ठ से भूरि २ प्रशंसा कर रहे हैं ऐसी दशा में क्या यह उचित है कि उन महोपकारी जैनाचार्य ब्राह्मणों की उदारता और विद्वत्ता को हम भूल जायँ ?।

मझ मे नही आता कि शाहने क्या जान कर इन जैनाचार्य ब्राह्मण विद्वानों की यह निंदा की है ? तथा संस्कृत साहित्य के प्रति अपनी दूषित अभिरुचि दिखाई है ? संभव है शायद शाह और शाह के पूर्वजो को पूर्णतया गुजराती भाषा का भी ज्ञान नहीं था तथा साहित्य सेवा के नाम पर शाह के पूर्वजों ने एकाध टूटी फूटी तुक बन्दी भी नहीं बनाई, इसीसे रुष्ट हो यदि शाह ने यह धृष्टता की हो तो हो सकता है। क्योंकि नीति में कहा है कि "साधवः पर संपत्तौ लाः पर विपत्तिषुः" अर्थात् साधुपुरुष दूसरों को सम्पत्ति सम्पन्न देख, खुश होते हैं किन्तु खल (दुष्ट)

तो दूसरों को विपत्ति में देख कर ही खुश होते हैं अर्थात् दूसरों की सम्पन्नाऽवस्था दुष्टों से नहीं देखी जाती। जैसे हाथी की विशालता को देख श्वान केवल उसे नहीं सह सकने के कारण उसके पीछे भौंकता रह जाता है, तद्वत् संकुचित-विचार वृत्ति वाला शाह ने समृद्ध जैनधर्म को देख येन केन प्रकारेण उसके पुष्ट पोषकों को बुरा भला कहने ही में अपने जीवन की सार्थकता समझी है।

शाह के माने हुए ३२ सूत्रों में जब श्रावक के सामायिक, पोषह प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान और साधु दीक्षादिक धार्मिक क्रियाओं का विस्तृत विधि-विधान नहीं है तब जैनधर्म के लिए उन ब्राह्मणों ने प्राचीन शास्त्रों के आधार पर धार्मिक क्रियाएँ तो क्या पर गृहस्थों के सोलह संस्कारों तक के विधान रच डाले कि जैनियों को किसी भी विधान के लिये जैनेतरों का मुँह नहीं ताकना पड़े। बस ! इसी दर्द के कारण शाह के पेट में यह द्वेष का वायु गोला उठ खड़ा हुआ है और अपनी नोंध में ऊटपटाँग बातें लिख नाहक कागज काले किये हैं। परन्तु यदि विचार से देखा जाय, तब तो यह शाह की निरी अज्ञताही सिद्ध होती है। आज संसार भर में भी शायद ही कोई ऐसा मत या पंथ हो ? जो संस्कृत साहित्य का विरोध करता हो, परन्तु केवल शाह इस कल्पना के लिए अपवाद रूप खड़े हैं।

सच देखा जाय तो दुग्ध पाक और मिष्टान्न किस को रुचिकर और पथ्यकर नहीं होता है ? पर संग्रहणी वाले को तो अत्यन्त विष का काम देता है। यही हालत हमारे श्रीमान् शाह महाशय की है।

पुनः शाह अपनी ऐ० नों० के पृष्ट ९० पर लिखते

हैं कि मेघजी स्थविर ५०० साधुओं के साथ किसी कारण से लौंका-गच्छ को छोड़ आचार्य हीरविजयजी के गच्छ में मिल गए।

पर शाह से पूछा जाय, कि ए दो साधु तो एक साथ गच्छ से बाहिर यों ही (जबरदस्त कारण बिना) निकल सकते हैं पर मात्र ११०० साधुओं में से एक ही साथ ५०० साधुओं का पूर्व मत को त्याग कर दूसरे मत में जा मिलना बिना जबर्दस्त कारण के संभव हो नहीं सकता, अतः अपनी नोंध में यह लिखना जरूरी था कि अमुक कारण से ५०० साधु गच्छ से अलग हुए। हमारी समझ में उन्हें लौंकाशाह का मत कोई कृत्रिम या झूठा तो नहीं जानपड़ा था ? जिससे इन्होंने शीघ्रही इस मतसे अपना पिण्ड छुडा लिया। वस्तुतः देखा जाय तो यह बात ठीक भी है कि आचार्यश्री विजयहरिसूरी बड़े भारी विद्वान् और शास्त्रों के मर्म थे। जिन्होंने अपनी विद्वत्ता और उपदेश से बादशाह कबर जैसे यवन स ाट् के दिल को पिघला दिया, तो विचारा लुंपक तो किस गिनती में थे जो इनकी प्र र प्रतिभा के सामने टिक कते। आचार्यश्री और पूज्य मेघजी का जब वे प्रथम समागम आ तब मेघजी ने जिज्ञासु भाव से मूर्त्ति के विषय में आचार्यश्री को सूत्रों के पाठ पूछे। आचार्यश्री ने बड़ी योग्यता से उनका समाधान किया जब उनके दिलमें यह सत्य बात जम गई तब इन्होंने "सर्पकंचकीविमोक" की तरह मिथ्या मत का परित्याग कर पुनः प्राचीन सत्य मत को अपने दल बल सहित स्वीकार कर लिया, और स्वामी मणिलालजी

ने भी अपनी 'प्रभूवीर पटावली' पृष्ट १८१ में पूज्य मेघजी स्वामी का आचार्य विजयहीरसूरि के पास जाना लिखा है, पर ५०० साधुओं के साथ, लि नेमें आपकी कलम रुक गई थी। आपने केवल २७ साधुओ के साथ ही जाना लिखा है। संभव है कि उस समय पूज्य मेघजी के साथ २७ साधु ही हों ? शेष कहीं आस पास मे हों, जिन्हें मेघजी बाद में बुलाते गये और अपने शिष्य बनाते गये हो और फिर वे संख्या में ५०० हो गये हों तो आश्चर्य की बात नही हैं फिर श्री शाहने समग्र संख्या एक साथही लिख दी यह भी अच्छा ही किया। क्योंकि इससे सर्व साधारण स्वयमेव लौकामत की सत्यता एवं शिथिलता को समझ कते है।

संभव है शाह वाडीलाल ने कटुसत्य लिख दिया हो परन्तु स्वामि मणिलालजी साधु होने से अपने मन को हलका लगने के कारण संकुचितरख शाह वाडीलालके सत्यको दबाना चाहा हो परन्तु वास्तवमें दोनोका आश्रय एक ही है। श्रीमणिलालजी ने २७ साधु लिखा है तब आपको और और साधुओं को अलग अलग लिखने की आवश्यकता रही पर वाड़ीलाल ने अलगर का झगड़ा नहीं रख एक साथ में ५०० साधु लिख दिया फिर भी आपने संकीर्णता धारण करनी क्योकि आचार्यश्री आनन्दविमल सूरि के पास लौकामत के कुल ७८ साधु और आचार्य हेम-विमलसूरीके पास पूज्यश्री पालजी आदि ४७ साधुओ ने लौकामत का त्यागकर जैनदीक्षा ग्रहण की थी। इसलिये हो कहा जाता है कि यह भीषण समय लोंकाशाहके हवाई किल्ले को तोड़ने वाला था. अतः एक ओर तो बड़ेबड़े पूज्य लौंकामतका त्याग करनेलगे और दूसरी

ओर वरि ौंकागच्छाय पूज्यों ने मूर्त्तिपूजा को ही स्वीकार रलिया जोकि अद्याऽवधि भी ौंकागच्छ में वि मान है।

हाँ २ लौंकागच्छ के उ श्रय हैं वहाँ२ श्रीवीतराग की मूर्त्तियों की स्थापना श्य है। और ई ए ग्रामों में जहाँ लौं च्छ रि ों । भाव है वहाँ के उ श्रयों की मूर्त्तिएँ न्दिरों प्रतिष्ठित करदी गई हैं। परन हाँ जहाँ ौंकागच्छ यति हैं वहाँ तो । ी मूर्त्तिएँ हैं। जैसे उदा र ग्रामो एवं नगरों के नाम यहाँ दिये हैं:—

"बीकानेर, लोदी, जोध र, पाली, सादड़ी, देशनोक, , बड़ोदा, गर, लींब ी, पटियाला, फिरोज र, , झूझू, रीदकोट, धियाना, पुगवाड़ा, राहू, ड़ा, अही रा, जीरा पटी, गुरु दि ला, लंधर, मुर्शि बाद, बालुचर, लारकोटला, ा, सि र, आदि"

यु इन ग्रामों में तथा और भी ने ामों नगरों में लौं च्छीय ासरों जैनमूर्त्तियें जरूर वि मान हैं, और इन जैनमूर्त्तियों के ार ी ाज संसारमें लौं गच का स्तित्व टिका है। अन्यथा ढूंढिया लोग भी लौं ाशा के ोंनिशान को उठा देते ?

× × ×

९० पर ह लि ते हैं कि:—

"जीवाजी की दीक्षा में एक लाख रुपये खर्च हुआ"

शाह को ोई पूछनेवाला नहीं मिला कि दयाधर्म पालने वालों दीक्षा महोत्सव में एक ला रु० चें क म किया था ? कहो कि म बनाया, फूलों से सजावट

की और धाम धूम से महोत्सव किया; तो कहना होगा कि लौंकाशाह के दयाधर्म को उस समय लौंकाशाह के अनुयायी भूल गए थे? अथवा ाह ने केवल अपने मत की समृद्धि दि ाने को ही यह बेसिर पैर की अघटित घटना घसीट मारी है। यदि यह ब सच है तो फिर जैनियों में और लौंकागच्छ में विशेष भेद नहीं था, यह सिद्ध होता है ।

× × ×

आगे चल कर ऐ० नो० पृष्ठ ९५ पर शाह फिर एक बिल ल सफेद गप्प का प्रदर्शन कराते हैं ।

× × × *"स्वामी शिवजी अहमदाबाद आए, उस समय अहमदाबाद में, एक नवलखा उपाश्रय था, जिसमें ७००० घरों वाले बैठते थे और इनके अलावा १६ उपाश्रय और भी थे।* × × ×

ामी शिवजी का समय वि. सं. १६७० से १७२५ तक का है और तत्कालीन अहमदाबाद का इतिहास सर्वाङ्ग रूप से मिल सकता है। परन्तु शाह की लेखनी कच्ची और कमजोर थी, यदि शाह ७००० की जगह ९००००० घर ही लिख देता तो ठीक था, ों इससे उपाश्रय का नाम नवलखा सार्थक हो जाता! क्योंकि शाह को कलम चलाने में न तो ७००० घरों के लेख के वा प्रमाणों की जरूरत थी और न नवलाख के लिए ही रहती, फिर समझ में नहीं आता कि शाह ने यह संकोचवृत्ति नाहक क्यों की? नीति में तो लिखा है कि:—"वचने किं दरिद्रता" अर्थात् जहाँ प्रत्यक्ष में लेने देने को कुछ नहीं चाहिए

तो वाणी बोलने में दरि ता ों दि ावें वहाँ तो मुँह नी ल ों रोड़ों क्यों न कहदें ।

× × ×

इससे आगे पृष्ट १२७ में स्वामी प्रागजी की नोध में । लिखते हैं:—

× × × "स्वामी प्रागजी के समय इस धर्म साधु अहमदाबाद में कदाचित् ही आते थे क्योंकि चैत्य-वासियों का जोर ज्यादा था और इससे बहुत परिसह सहन करने पड़ते थे। यहाँ तक कि कोई श्रावक दयाधर्म को पालन करता हुआ जान पडता तो जाति बाहिर कर दिया जाता था। इस स्थिति का सुधार करने के लिए ही प्रागजी ऋषि अहमदाबाद आए, और सारंगपुर तलिया की पोल में गुलाबचंद हीराचंद के मकान में ठहरे।" × × ×

पा ों! स्वामी प्रागजी मय वि० ं० १८३० । है ौर ि वजी । वि० ं० १७२५ का इस प्र र इन दोनों । ओं के बीच में प्राय: एक शताब्दी का अन्तर है। त्तरहवीं श ब्दी में जैन टुम्ब की विशालता होने से प्रति घर ५ म ष्य हमेशा नहीं तो पयुषणों े दिनों में तो अवश्य उपासरे में आते होंगे, तब ७००० घरों के ३५००० मनुष्य बैठे उतना वि ाल तो एक नवल । उपाश्रय, तथा दूसरे उन्नी से कुछ छोटे जिनमें सात हजार प्रत्येक में नहीं तो कम से कम सात सौ घर वाले तो बैठ सकें, इतने तो अवश्य होंगे, इस प्रकार कुल मिला कर, २० तो उपाश्रय ौर उनमें बैठने वाले ७००० श्रावकों के घर नवल ।

उपाश्रय के, और सात सौ सात सौ,प्रत्येक छोटे उन्नीस उपाश्रय के मिलाकर १३००० घर ये कुल २० हजार घरोंके एकलाख मनुष्य अहमदाबाद में लौंको के नहीं पर केवल ढूँढिया मत के शिवजी के समय में होना शाह के अनुमान से सिद्ध होता है, तब संभव है इतने विशाल शहर में उस समय कुछ न कुछ घर तो लौंकामत के और जैन मूर्त्तिपूजकों के भी जरूर ही होंगे, क्योंकि उस समय का इतिहास डङ्के की चोट यह बता रहा है, कि वि० सं० १६९४ में वहाँके श्रीमान् नगरसेठ ने नौ लाख रु०व्यय कर वहाँ एक विशाल जैन मन्दिर बनाया था । खैर ! मूर्त्ति-पूजकों के घर हों वा न हो, इससे अपने को कोई प्रयोजन नहीं, अपने को तो मूर्त्ति नहीं मानने वालों का ही इतिहास अभी देखना है । इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में उसी का खुलासा करना है कि शिवजी के समय वि० सं० १७२५ तक एकनगर में जिस किसी समुदाय के ७००० या २०००० घर हों और २० उपा-श्रय हों और प्रागजी के समय वि० सं० १८३० में अर्थात् केवल १०० वर्षों बाद उस शहर में खास प्रागजी को रहने को न तो एक उपाश्रय ही मिले और न उनके मतावलंबी सौ पचास श्रावक ही मिले । और उन्हे एक साधारण गृहस्थ के यहाँ ठहरना पड़े, क्या यह कम आश्चर्य की बात है ? सुज्ञ पाठक, शाह की इस कल्पना की सत्यता पर स्वयं विचार कर सकते हैं कि इतने विशाल उपाश्रय का इतने क्षीण समय में ही नष्ट हो जाना तथा इतनी विशाल जन संख्या का उस समय अपने धर्म को मानने पर भी अल्प संख्यक मूर्त्तिपूजकों द्वारा जाति बहिष्कृत किया जाना, व एक शताब्दी में अलोप

हो जाना केवल शाह ही अपनी पुस्त में लि कते हैं। अच्छा होता, यदि ाह इ बीच के १०० वर्षों में एकाध भयंकर भूकम्प होने की भी कल्पना कर लेते, जै कि हा ा विहार और क्वेटा में घटित ा था। परन्तु दुः है कि इ विषय म शाह ी ल्पना ि ने कुछ देर के लिये आप रिहाई ले ी, न्यथा ाह की कोरी कल्पना यमेव सत्य हो जाती, और कहने को यह स्थान मि जाता ि शि वजी के समय के २० उपाश्रय और हजारों श्रावकों के घर भू म्प में भूमिसात् होगए। नहीं तो दूसरा तो ा हो सकता है? यदि यह कहा जाय कि वे सब लोग और उपाश्रय मूर्त्ति-पू कों ा शरण लिया तो आप का बचाव हो सकता है।

ऐसी ही एक घटित घटना ऐ० नों० पृ० १३७ पर ा ने बुरान र के नाम पर फिर गढ़ली है। ाह वहां लि खते हैं कि —

"स्वामी लवजी के समय बुरानपुर में १०००० घर जैनों के थे जिनमें केवल २५ घर लवजी के अनुयायी थे। उन्हें भी जाति से बहिष्कृत कर दिया था। इतना ही नहीं पर उन्हें कुओं पर पानी भी नहीं भरने दिया जाता था, और नाई धोबी आदि कोई भी लोग उन २५ घरवालों के यहाँ जाकर ाम नहीं कर सकते थे।"

१—क्या ह ने ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध इस नवलाख त के मंदिर लक्ष्य करके ही तो नवलखे उपाश्रय की कल्प नहीं ?।

शाह ए ; ओर तो लिखता है कि "दयाधर्म भारत के पूर्व से प॰ म और उत्तर से दक्षिण तक फैला दिया गया था" और दूसरी ओर वीरानपुर के नामधारी दयाधर्मियों का यह हाल है कि दसहजार घरों में मात्र उनके २५ घर हैं और वे भी जाति बहिष्कृत तथा कुँओं पर पानी नहीं भर सकने वाले इत्यादि।

शाह की इन कल्पित कथाओं में सत्यता का कुछ भी अंश था नहीं इनका निर्णय हम निष्पक्षपाती शाह मताऽवलंबियों पर ही छोड़ देते हैं। शाह के पूर्व ४५० वर्षों में तो ऐसी अघटित बातें किसी ने नहीं लिखी फिर शाह को ही क्या ज्ञान हुआ कि बि । किसी प्रमाण के ऐसी भूंठी गप्पें मार शान्त समाज में शान्ति फैलाने का उद्योग किया। संभव है शाह का यह विचार हो कि स्थानकवासी समाज को इस प्रकार उत्तेजित कर उन्हें शान्त माज में ेश करने के लिए कमर कस के तैयार किया जाय कि तुम्हारे पूर्वजों को मूर्त्तिपूजक यतियों ने इस प्रकार नाना कष्ट दिये, अब उन का बदला तुम्हें लेना चाहिये। पर अब जमाना बदल गया है और स्थानकवासी समाज आज इतना भोला और ानी नहीं है कि शाह की लिखी भूंठी गप्पों पर विश्वास कर पना हित करने को तैयार हो जायँ।

वास्तव में न तो अहमदाबाद में ढूँढियों का नवलखा उपासरा ही था और न किसी जमाने में अहमदाबाद में ७००० घर ढूँढियो के थे। तथा न, अहमदाबाद और बुरानपुर के नामधारी दयाधर्मियों को कभी जाति बहिष्कृत किया था। परन्तु सच पूछा जाय तो उस समय के जैनियों ने यह बड़ी भारी भूल की, यदि उसी समय उत्सूत्र प्ररूपक इन निन्हवों को जाति से अलग

दिया हो तो आज जैनशासन को जो बुरा अनुभव करना पड़ा है, उसका प्र भी नहीं आता। जै कि दिगम्बरी समाज े लग होते ही उनका जाति व्यवहार अलग कर दिया तो इतना ेश कदाग्रह नहीं रहा। दोनों समुदाय अपनी २ ाति में तन्त्र हैं। पर मारी ही यह कमनसीबी है कि धर्म में भेद होते ए भी हमने इनके ाथ जाति सम्बन्ध शामिल रक , जिससे आज हमको इतनी बड़ी भारी हानि उठानी पड़ी तथा भी उठा रहे हैं।

ापसी फूट और कुसम्प बढ़ने े साथ आज आचार पति ा और अन्य देवी देवता ों की पूजा की प्रचुरता बढ़ी ै। यदि हम इन नास्तिकों को प्रथम ही से जाति बहिष्कृत या अपने े अलग कर देते तो जैन समाज में ये झूंठे बखेड़े पैदा नहीं होते। ये निएँ केवल मूर्त्तिपूजकों के ही पल्ले पड़ी हों ो नहीं, किन्तु लौंकागच्छीयों को भी इस विरोध से पर्याप्त हानिएँ ई हैं। लवजी धर्मसिंहजी ने अपनी अलग दुकान जमा कर लौंकों की सत्ता मजोर कर दी, इसी प्रकार स्थानकवासियों भीखमजी आदि ने पना पाखण्ड तन्त्र फैलाकर लवजी की लाईन को भी लथेड़ दिया। परन्तु इन सब मतधारियों का यदि मूल देखा जाय तो सब ने जैनाचार्यों के ंगठित श्रावि मुदाय को पनो विषो मत वादिनी री से टुकड़े टुकड़े ा पना उपास बनाया है। किसी भी मतधारी ने ए भी जैनेतर को ना श्रावक बनाया हो यह किसी भी प्रमाण से पु नहीं होता।

इन नये नये मतधारियों ने जैनों का संगठन छि भिन्न

करके जैनधर्म में कुसम्प और विरोध फैलाकर जैनों से अपना
ास इष्ट छुड़ाकर जैनों का आचार व्यवहार दूषित बना कर
जैनधर्म को जनता की दृष्टि से गिराने के सिवाय और कुछ भी
जैन जगत् का हित नहीं किया है, शाह यदि इस पर भी फूला
नहीं माता है तो इस बढ़कर शाह की अज्ञानता ही क्या हो
सकती है !

प्रिय पाठक वृन्द ! जरा आगे चल कर अब आप शाह के
तीन धारकों की ओर भी एक निगाह डालिए । शाह के
ऽनुसार पूज्य शिवजी बड़े ही प्रभाविक और लौंकाशाह की
कीर्त्ति तथा धर्म को चारों ओर फैलाने वाले हुए, तो फिर समझ
में नहीं आता कि शिवजी के सुदृढ़ शासन समय में सुधारकों
ी ों आवश्यकता हुई कि इन्हें अपना सुधार करने को डेढ़
चांव ी खिचड़ी लग पकानी पड़ी । और वह भी तीनों
धारक एक ही समय में तीनों के नाम से अलग २ तीन मत
निकाले । जैसे—

(१) धर्मसिंह का मत—जिसमें श्रावक के सामायिक आठकोटि
का मानना जो किन्हीं तीर्थङ्कर गणधर जैनाचार्यों ने या
लौंकाशाह और लौंकाशाह के अनुयायियों ने अब तक
नहीं माना है ।

(२) लवजी का मत—जिन्होंने मुँहपत्ती में डोराडाल दिन भर
मुँह पर बाँधने की रीति चलाई, यह भी तीर्थङ्कर गणधर
जैनाचार्य और लौंकाशाह की मान्यता से विरुद्ध थी ।

(३) धर्मद जी मत—ये जैन या लौंकागच्छ के तो क्या

पर अपने गुरु धर्मसिंह लवजी ादि ाधुओं को भी ाधु न सम कर स्वयं विना गुरु ाधु का बाना पहिन कर साधु बनगए।

व इन तीनों सुधारकों की पारस्परिक ऐक्यता भी रा दे लीजिये कि शाह ` मताऽनुसार तो धर्मसिंह ौर लवजी, मदावाद में इकट्ठे हुए, तथा स्वामी मणिलालजी के मन्तव्याऽ - र सूरत में इकट्ठे हुए, दोनों के मताऽनुसार वे अलग २ मकानों में ठहरे, उन दोनों के आपस में छः कोटि और आठ कोटी संबन्धी वाद विवाद आ। अब विचारना यह है कि जहाँ इस प्रकार एक दूसरा अपने आपको श्रेष्ठ समझ विपक्षी को उत्सूत्र वादी मझे वहां विचारी एकता ।निर्वाह किस कदर हो स ता है ? क्योंकि छः कोटि वाला आठ कोटि वाले को मिथ्यात्वो सम ता है तो आठ कोटि व । छः कोटी वाले को उत्सूत्रवादी जान है, और शाह इस भीषण संघर्ष को एकता का चोगा पहिनाते हैं। कहिये इसका क्या रहस्य है ? प्रकृत में शाह के ये तीनों नाय जैन समाज ` लिए सुधारक नहीं किन्तु पक्के बिगाड़ ही थे। धर्मसिंहजी के लिए तो यह प्रसिद्ध है कि धर्मसिंहजी को शि वजी ने गच्छ बाहिर कर दिया था। : कोटि वाले इस रण कुछ ौर ही बताते हैं। वे कहते हैं कि जब आचार्यों द्वारा न्य धु ों को अनेकाऽनेक पदविएँ मिली, तब पदवी के । ` धर्मसिंहजी को पनी एकान्त अयोग्यता के कारण पद ` से कोरा रहना पड़ा और इससे िन्न हो जब उन्होंने ासन में विरोध डाल उत्पात मचाना शुरू किया तब शिवजी ने गच्छ से बाहिर फेंक दिया, इस विषय । एक प्राचीन पटावलि

में उल्लेख भी मिलता है जो पाठकों के पठनार्थ नीचे दिया ।है।

"संवत् सोल पचासिए, अहमदाबाद मंझार ।
शिवजी गुरु को छोड़ के, धर्मसिंह हुआ गच्छ बहार ॥"

यह हाल तो शाह के मान्य सर्वप्रथम सुधारक धर्मसिंहजी । है । ब ज़ारा लवजी का हाल भी सुन लीजियेः—

"लवजी—सूरत के वीरजी बोहरा की विधवा पुत्री फूलां-बाई के दत्तक पुत्र थे । लौंकागच्छीय यति बजरंगजी के पास लवजी ने यति दीक्षा ली । बाद में लवजी की अयोग्यता से (आठ कोटि वाले तो कुछ और ही आक्षेप करते हैं) इन्हें गच्छ के बाहिर कर दिया । लवजी ने स्वयं मानसिक कल्पना रा ँहपत्तीमें डोराडाल दिनभर मुहपर मुँहपत्ती बाँधने की एक नयी रीति सोच निकाली, कई ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि शुरू में तो लवजी व्याख्यानादि विशेष समय ही मुँहपत्तो बाँधते थे जैसे कई यति लोग व्याख्यान समय बाँधते थे पर इतना विशेष कि यति लोग मुँहपत्ती को तीखुणी कर दोनों कानों के छेदों में ँहपत्ती के कोने अटका देते तब लवजी ने इनको एक प्रकार का क सम ँहपती में डोराडाल मुँहपर बान्धनी शरु की द तो इस प्रथा ने इतना जोर पकड़ा कि चाहे बोलो चाहे मौन र ो पर मुँहपत्ती तो दिन भर खेंच के मुँहपर बाँधनी ही चाहिये । इस लिग अर्थात् भयंकर रूप को देख के ही लोग इनको ढूंढिये शब्दसे पु रने लगे खैर लवजी अपने गुरुकी विशेष रूप में निन्दा करने लगे, क्योंकि गुरु निन्दा करने की पद्धति तो लवजी की पूर्व परम्परा से ही चली आती थी ।

खैर ! लवजी ए वार ंभात गए और वहाँ अपने गु ी निन्दा करने लगे। यह बात लवजीके नाना वीरजी बोहरा को सूरत ँ मालूम हुई, उन्होंने ंभात के न ब पर ए पत्र लि ा, जि की नकल मी मणिलालजी ने अपनी प्रभुवीर पटावली के पृष्ट २०५ में दी है उसमें से छ वाक्य यहाँ भी उद्धृत किये जाते हैं।

"शुं यतिवर्य नो अपमान ? शुं गुरुऐ आपेला ज्ञान नो अजीरण ? जे गुरुऐ तेने ज्ञान आपी भणाव्यो तेनो उपकार न मानतां तेना थीविरुद्ध वर्त्ती नवो मत कहाड़वा लवजी तैयार थया × × × गुरु ने उतारी पड़वा खोटो उपदेश आपेछे माटे त्यां आवे तो लवजी यति ने ग्राम थी कहाड़ी मूंकजो × × ×

प्रभुवीर पटावली पृ० २०५

शाह और स मीजी ने अपनी अपनी पुस्तकों में लवजी धर्मसिंहजी को गुरु की आ ा से ि ा उद्धार करने की एक मनगढन्त कल्पना की है। पर ऊपर के वा ों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि इन दोनों व्यक्तियों को योग्य स झ कर ही इनके गुरुओं इन्हें गच्छ हिर किया था, तभी तो प पूज्य गुरु ों की ये निन्दा करते थे, और इसीसे लवजी के नाना ने नवाब के नाम पत्र लि ा था। और यहाँ त लि ा दिया कि यदि लवजी ग्राम में आवे तो भी उन्हें बाहिर निकाल देना, अव ` प्रचार की तो बात ही क्या रही ? और इससे धिक यति रूपधारी ी के विरुद्ध वे ा लि कते थे।

अब रही तीसरे सुधारक धर्मदासजी—पाठक जरा इनका विवेचन भी पढ़लें-"ये र व्रज के छींपा (भावसार) थे। ये पहिले एक पातरिये श्रा ❀ से मिले। बाद में धर्मसिंह लवजी से मुलाकात की, पर आपको इन दोनों यतियों से भी सन्तोष नहीं आ। सन्तोष नहीं होने के कारण आज तक भी किसी ने नहीं बताया कि इन दोनों पूर्व धर्म गुरुओं में ऐसी क्या त्रुटियें थी जिनसे धर्मदासजी को संतोष नहीं हुआ। हां, श्रीमान शाह ने इस विषय में इतना जरूर लिखा है कि:—

"पहिले दोनों मुनियों में या तो पूर्ण शुद्धता मालूम नहीं हुई होगी. या अपना अलग ही समुदाय कायम कर ज्यादा नाम हासिल करने की इच्छा हुई होगी। इन दोनों में से कोई भी कारण क्यों न हो पर इससे हमें शर्म आती है।"

ऐ० नो० पृ० १४१

वाके ही यह शर्म की बात है 'कि सुधारको की यह मनोदशा, यह अभिमान वृत्ति ऐसी महत्त्वाकाँक्षा, इससे अधिक फिर शर्म की बात ही क्या हो सकती है कि जिन दोनों सुधारकों को अपनी अलग दुकान जमाए कुछ अर्सा भी नहीं हुआ, और वे धर्मदासजी को अयोग्य लगने लग गए, अर्थात् उनकी मान्यता से धर्मदासजी को सतोष नहीं हुआ यही तो दुर्भाग्य की बात है। शायद, धर्मसिहजी की आठ कोटि की मान्यता और लवजी की उच्छृंखलता आदि कारणों से इन दोनों को

❀ यह कडुआ मत के सं री श्रावक थे।

गच्छ बाहिर कर देना ही धर्मदा जी । असंतोष हो तो बात कती है । धर्मदा जी के य जैन- माज वि । ख्या में था । । गच्छ के यति श्रीपूज्यजी ी ब थे। सिंहजी वजी दि नये धार ी विद्यमान थे। इतने पर भी फिर ध दा जी ने बिना गुरु के धु वेश पहिन लिया तो का कारण क्या हो कता है, य म नहीं । इन लोगों के ति ए धुवेश पहिन कर धु जा तो ब ों । हो गया है । इ ी लिए तो श्रीमान् ाह लते हृदय ार नि ी है देखि ये:—

"स्थान वासी, साधुमार्गी जैन धर्म जब से पुनर्जन्म हुआ, ज से यह धर्म आस्तित्व में आया, तब से आजतक भी यह जोर-शोर में था ही नहीं । अरे ! इसके कुछ निय भी नहीं थे । यतियों से अलग हुए और मूर्ति पूजा छोड़ी कि

---

१ धर्मदासजी की मृ के लिए स्वामी मणि । ी अ ी "प्रभुवीर पटावली" क पुस्. के पृष्ट २१९ पर लिखते हैं कि एक साधुने रतल में सथारा वि था बादमें वह ध । सहन नहीं सका, अर्थ उसने ष्ट शब्दों में कह दिया कि हम को रोटी ओ अन्य मैं रात्रि में भाग , यह ख धर्मदास जी को मिली । द जी ने साधु के बदले अपना अकाल बलिदान किया । यह संथ करने ले ाने वाले और बीच में . कर आप ब न होने वालों की बड़ी भारी अज्ञानता है । जैन धर्म में बिना अतिशय ज्ञान के संथारा करने करवाने की सख्त मनाई है । परन्तु जैन हैं कौन ? जैनाज्ञा विरुद्ध आचरण करने व ों की तो यही द होती है ।

ढूंढिये हुए × × × मेरे अल्प बुद्धि अनुसार इस तरकीब से जैन धर्म को बड़ा भारी नुकसान हुआ। इन तीनों (धर्मसिंह लवजी धर्मदासजी) के तेरह सौ (१३००) भेद हुए (इसका उल्लेख इसमें पहिले भी हुआ है)।"

ऐ० नों० पृष्ट १४१

पाठक वर्ग! शाह के इन शब्दों को ध्यान में लेकर विचार करें कि इन धारकों ने जैन धर्म को कैसा नुकसान पहुँचाया और अभी भी पहुँचा रहे हैं। लौंकाशाह ने जैनयतियों की निंदा कर, नयी प्ररूप [illegible] कर, नया मत निकाल जैनों के संगठन के टुकड़े २ किये, और जैनधर्म को [illegible]घातिक चोट पहुँचाई, वैसे ही धर्मसिंहजी लवजी और धर्मदा[illegible] जी ने [illegible] लौंकागच्छ के यति व श्रीपूज्यों की निंदा [illegible] र [illegible]ी २ कल्पनाएँ गढ़, लौंकागच्छ को नुकसान पहुँचाया है। यदि ऐसों को सुधारक कहा जाय तब तो भीखमजी को भी सुधारक क्यों न कहा जाय? क्योंकि उन्होंने भी स्थानकवासियों की निंदा कर अपनी नयी कल्पनाएँ गढ़ दया दान में भी पाप ब[illegible] या है। भीखमजी के अनुयायी तो यहाँ तक कहते हैं कि:—

"नहीं हुता भीखम स्वामए,
पाखण्डि बैठता घर मांडए।"

यदि तेरह पन्थियों का यह कथन सत्य है तो उस समय यदि भीखमजी नहीं होते तो ढूँढिया, साधुमार्गी, बावीस टोला, एवं स्थानकवासी [illegible]ादि पाखण्डी घर मांड २ के बैठ जाते!

सुधार कहे जाने वालों ी यह भिन्न २ निम्न दशा दे वि सहृदय को आघात नहीं पहुँचता है तथा इन धार प्रचलित मत से घृणा नहीं होती है !

पाठकों ! क्रिया उद्धार करना कुछ और ही बात है। शाह आदि क्रिया उद्धार करने का जो अनर्गल आलाप रते हैं वर तः य क्रियोद्धार नहीं है। यह तो ि योद्धार की ोट में संगठित जैन समाज की मात्र शिकार खेली गई है। वास्तवि क्रियोद्धार तो पन्यास श्रीस विजयजी गणी ने तथा लौंकागच्छीय यति जी जी ने वि ा था। इन दोनों महापुरुषों ने पने अपने गुरु की परंपरा का पालन कर, शा न में किसी भी प्रकार न्यूनाऽधि प्ररूपणा न कर केवल शिथिलाचार ो ही दूर कर उग्र विहार द्वारा जैन जगत् पर अ ाम प्रभाव डाला । : इन ली क्रियोद्धारकों के बारे में आज पर्यंत ि सी ने कि ी प्र र का भी आक्षेप नहीं किया है वलिक शिथलाचारी भी इनका उपकार नकर प्रशंसा की हैं।

प्रिय पाठ वर्ग ! ि योद्धार कर उसका नाम है जिससे जैनधर्म, जैनजगत्, ौर जैनशास्त्रों को लाभ प चने की संभ ना हो।

अव इस विषय को ज्यादा न बढ़ा, पुनः शाह का निजी जाने की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। शाह ने ऐ० नोंध के पृष्ठ १३५ पर अपने पास की ए पटाव ी ह ला देते ए यह लि ा है कि:—

" × × ये चारों मुनि लवजी, भाणाजी, सुखाजी सोमजी आदि जब स्थंडिल भूमि से पीछे लौट रहे थे, तब

इनमें से एक मुनि पीछे रह गए, उन्हें कुछ यति मिले, वे यति रास्ता बताने के बहाने मुनि को अपने मन्दिर में ले गए और तलवार से मारकर मुनि के शव को वहीं गाड दिया × × ।"

\+ × × +

ाह की निजी पटावली का तो यह उल्लेख है जो ऊपर लिख चुके हैं ौर ब शा ` प्रतिपक्षी इसके विषय में क्या लिखते हैं इ का उल्लेख नीचे करते हैं, पाठक जरा ध्यान से पढ़ें—

"जब लवजी ा वह एक साधु एक मुसलमान के घर में गया और उस मुसलमान की औरत के साथ प्रेम में फंस गया भवितव्यता ऐसी बनी कि उसी समय मुसलमान घर पर आया ौर अपनी औरत की बेइज्जती देखते ही उसको गुस्सा आया और वह क्रोध से लाल बबुला हो गया तथा म्यान से तलवार निकाल र उस व्यभिचारी साधू के टुकड़े २ कर दिये ।"

एक हस्त लिखित प्रति का उतारा

इन दोनों घटनाओं में कौन सत्य है ? यह तो सर्वज्ञ भगवान् ` ज सकते हैं। परन्तु इतना अनुमान अवश्य किया जा ता है कि उस मय के जैन यति, या लौंकागच्छ के यति, न तो कोई पास में तलवारें र वते थे, और न कोई जैन मन्दिरों में या लौंकागच्छ के दे र रों में ही तलवारों के ढेर रहते थे कि जिससे वे लवजी ` साधु को अन्दर बुलाकर मार डालते। वि ` आ र्य तो यह है कि पृथ्वी, पानी और वनस्पति का स्पर्श के

प े डरने वाले, एवं रजोहरण से कीड़ी मकोड़ी ी " "
करने वाले लोग अकारण एक ढूँढिये ाधु ो मन्दिर में ले
ा र तलवार से काट, उ े वहीं माधिस्थ करदें और
उसकी बू तक बाहिर न फैले यह नितान्त असंभव प्रतीत होती
है। किन्तु दूसरी घटना जिसमे मुसलमान ने अपनी औरत की
इज्जती ोतो दे ी हो, और उसने अपनो जन्मज अ रता के
कारण साधु को मार डाला हो ? तो संभव हो सकती है। क्योंकि
एक तो मुस्मिल कौम निर्दय, दूसरा उसके खुद के घर में उसी की
औरत ी ढूँढिये साधु द्वारा बेइज्जती, तीसरा तत्कालीन मुसल-
मानों ी सार्वभौम पैशाचिक प्रभुता, चौथा ढूँढिये सा ओं े
ाभाविक घृणा इत्यादि कारणों के एकत्रित हो जाने से इस
घटना ा उक्त रूप में घटित होना विशेष असम्भव नहीं जँचता।
ारण कर्मगति विचित्र है। जीव को कृताऽकृत भोगने ही
पड़ते हैं यह प्रकृति का ास नियम है और बाद में इसी कारण
से शायद लवजी ने दया पाली हो तथा शान्ति रख ी हो तो
आश्चर्य नहीं।

ामी मणिलालजी ने अपनी "प्रभुवीर पटावली" नामक
पुस्तक मे ामी लवजी का जीवन लिखा है, परन्तु साधु के मारे
जाने की घटना का कहीं संकेत तक भी नहीं किया है। ऐसी
दशा में वा० मो० शाह का पूर्वोक्त लेख हम कैसे सत्य मान
सकते हैं। हाँ, यदि स्वामीजी को दोनों पटावलीकारों के उद्धरण
का पता पड़ गया हो, और ढूँढिये साधु समाज की बदनामी के
भय से इस प्रसंग को कतई उड़ा दिया हो तो बात दूसरी है।
अथवा शाह ी उक्त निजी पटावलो ामीजी को कल्पित जँची

हो ?–हो न हो किसी कटु कारण से ही स्वामीजी ने इस घटना के लिखने से कन्नी काटी है।

समझ में नहीं आता कि वा० मो० शाह अपने साधुओं का कलंक यतिवर्ग पर डाल कर ढूँढिये साधुओं की क्या उन्नति करना चाहते हैं ?। अब जरा संक्षेप में यह भी देखलें कि शाहने यतियों पर यह व्यर्थ ही आक्षेप किया और यह तनिक भी विचार नहीं किया कि वे यति किस समुदाय के थे ? क्योंकि उस समय जैनयतियों के और ढूँढिया साधुओं के तो आपस में इतना बढा हुआ वैमनस्य था ही नहीं; जो वे अकारण किसी साधु के प्राण हरण कर लेते। जरूर लोंकागच्छीय यति, और उनकी निंदा कर नया मत चलाने वाले ढूंढियों में उस समय भीषण संघर्ष चल रहा था; और इसी कारण से लवजी के नाना ने खंभात के नवाब के नाम पत्र लिखा था कि "लवजी अपने गुरु की निंदा कर रहा है उसको गॉव से निकाल देना" अतएव साधु को मार डालने का यह मिथ्या कलंक यदि लौंकागच्छ के यतियों पर लगाया हो तो संभव हो सकता है। क्योकि खुद शाह का द्वेष भी विशेष रूपेण लौंकागच्छ के साथ ही प्रगट होता है जो उनको चतुर्विध श्रीसंघ से अलग निकाल कर उनके लिए स्वतंत्र आधे आसन की निन्दामयी कल्पना की है। परन्तु झूठ मूठ ऐसा करना भी सरासर अन्याय ही है। क्योंकि यदि साधु के मारने का यह कलंक प्रधान जैनयतियों से हटा कर लौंकागच्छ के यतियों पर ड़ाला जाता है तो भी जैनधर्म का तो इस में बुरा ही है कारण वे भी जैन और ढूंढियो के गुरु (बाप) ही हैं। यदि कोई अन्यधर्मी आकर पूछे कि आपने नोंध में जो जैनों

द्वारा तलवार रखने । तथा कत्ले आम रने का लि । है, । यही ापका हिंसाधर्म है ? तो ाह को शर्म के मारे शि र नीचा करना पड़ेगा जैसा कि आज ऐसी रद्दी पुस्तकों की आवृत्तिएँ छपवाने वालों को करना पड़ता है । मैंने भी इस पुस्तक को समालोचना के लिए हाथ में लिया है किन्तु इस स्तक स्पर्श रूपी दोष के निवारण के लिए प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ । × ×

खैर ! इससे आगे चलकर शाह अपनी ऐ० नों० के पृ १३९ पर लि वे हैं × × ×

"कि लवजी के पाट सोमजी बैठे । वे एक वार बुरानपुर के पास गए । वहां एक रङ्गरेज ने किसी यति की खटपट से उन्हें जहर मिले हुए लड्डू वेहरा दिए और उनके प्राण हरण किए ।"

रंगरेज तो प्रायः मुसलमान ही होते हैं, और लवजी के साधु शायद मुसलमानों के यहाँ का आहार पानी भी लेते होगे तभी तो रंगरेज ने सोमजी ऋषि को लड्डू वेहराया, और उन्हों ने वे लड्डू खाकर अकाल ही में कराल काल की शरण ली । परन्तु प्रश्न तो यह होता है कि ढूंढियों के तो मुसलमानों के साथ और भी अनेक प्रकार के सम्बन्ध है, फिर उनको जहर ों दिया यह इतना द्वेष किस कारण था ? कुछ समझ नहीं पड़ता । शायद मुसलमान की औरत के साथ लवजी के साधु का अनाचार करने का किस्सा बहुत नजदीक का था इसी से रंगरेज ने जातिगत अपमान के कारण सोमजी को जहर मिले लड्डू दे दिये हों तो कोई आश्चर्य नहीं । पर हमारे शाहको तो यथा तथा लौंकागच्छीय

यति ों की निन्दा कर उनको हलका दिखाना ही है, पर समझ में ीं आ कि ढूँढिये साधु इस प्रकार का षड्यंत्र रच कर अपनी इज्जत को कहाँ तक बढ़ाना चाहते हैं। और ऐसे निंद्य कृत्यों से ी कैसी उन्नति करना चाहते हैं। स्वामी मणिलालजी ने तो पनी "प्रभुवीर पटावाली" में श्रीमान् लौंकाशाह की मृत्यु भी जहर के प्रयोग से होनी लिखी है।

ऐ० नों० पृष्ट १२८ पर शाह ने अहमदाबाद में मूर्त्तिपूजक और स्थानकमार्गी साधुओं के बीच हुए शास्त्रार्थ का उल्लेख करते ए लि । है कि:—

"आखिर संवत् १८७८ में दोनों ओर का मुकद्दमा कोर्ट में पहुंचा। सरकार ने दोनों में कौन सच्चा और कौन झूठा? इसका इन्साफ करने के लिए दोनों ओर के साधुओं को बुलाया स्था० ओर से पूज्य रूपचन्दजी के शिष्य जेठमलजी आदि २८ साधू उस सभा में रहने को चुने गये और सामनेवाले पक्ष की ओर से वीरविजय आदि मुनि और शास्त्री हाजिर हुये। मुझे जो याद मिली है उससे मालूम होता है कि मूर्तिपूजकों का पराजय हुआ और मूर्ति विरोधियों का जय हुआ। शास्त्रार्थ से वाकिब होने के लिए जेठमलजी कृत समकितसार पढ़ना चाहिये × × × फैसला १८७८ पौष सुदि १३ के दिन मुकद्दमा का जजमेन्ट (फैसला) मिला।"

ऐ० नों० पृ० १२६।

× × ×

थ तो ई को मिली की त ी बात, ।

इस विषय में क्या हता है रा उ ी न लीजि :—

"दोनों पक्ष अपनी जीत और दूसरे की हार प्रकट करते हैं न्तु किसी प्रकार लिखित प्रमाण के भाव में मैं वि सी तरह की टी । करने ो प्रस नहीं हूं।"

ऐ० नों० पृ० १३० ।

इस प्रकार पूर्वो ास्त्रार्थ के बारे में श्रीयुत । "फैसला" ए जब ढंग ही दि ाता है। ोंकि शाह खुद लिखते हैं ि "इस विषय में लिखि त प्रमाण । नि न्त अभाव है" तो फिर ऊपर लि ी हकीकत क्या शाह "ग पुरा " का ही ए ध्याय है ? आगे उस फैसले पूर्णतया परिचित होने को शाह फिर जेठमलजी के " मकि सार नाम " ग्रन्थ को प की सलाह देते हैं पर आश्चर्य और दुः इस बात का है कि मकित सार तो जेठमलजी ने वि० सं० १८६५ में बनायाथा और ास्त्रार्थ का फैसला । है वि० १८७८ की पौष सुदि १३ को। कहिये क्या खूब रही ! १३ वर्ष भविष्य की बात जेठमलजी * अपने ग्रन्थ में क्यों कर लि गए, । जेठमलजी को भी ाह के सदृश भवि विभंग ान था ? अथवा आपकी लेखन शैली की सत्यता, प्रमु ची से की हुई प्रतिज्ञा की प्रामाणिकता और नोंध सरी ऐतिहासिक ग्रन्थ की ऐतिहासिकता क्या यहीं तो समाप्त नहीं हो जा है ? वाह रे ? सत्य-दयापालकों ! इसी बूते पर, ऐसी निरर्गल झूठी बातें लि

* सं० १८७८ पहिले े जे लजी देहान्त हो गया था।

म जगत् में सच्ची जैनजाति को कलंकित करने चल पड़े हो। मुख्य में तो पं० श्री वीरविजयजी और जेठमलजी के जो सं० १८७८ में नहीं पर सं १८६५ में शास्त्रार्थ हुआ इसी कारण जेठमलजी ने मकित सार ी रचना भी की" यह आपस ही में शास्त्रार्थ हुआ था। सरकार में जाने की बात शाह ने अपनी ओर से नयी गढी है। और इस ा ार्थ में जेठमलजी पराजित होकर पिछली त में उस नगर से भाग गए थे ऐसी दशा में शास्त्रार्थ का मुक-दमा सर र तक कैसे जा सकता था ? और इसीसे तो शाह के पास कोई स ।प्रमाण भी नहीं है जिसका कि वे यहाँ हवाला करते। किन्तु इस अंतिम और वास्तविक निर्णय करना हो तो आज भी ीसे हो कता है। ोंकि श्री० पं० वीरविजयजी तथा जेठमल जी खुद की विद्यमानता में भी उन स्वर्गीय आत्माओं के रचित ग्रन्थ हमारे मने हैं—केवल आवश्यकता है एक मात्र निष्पक्ष और निर्लेप वि न की जो कि इन दोनों महाशयों के स्वीयकृत हित्य को दे इस बात की घोषणा कर सकें कि अमुक जित और मुक पराजित हैं। किन्तु हमारा यह सच्चा और पूर्ण दृढ़ विश्वास है कि ऐसा नीर-क्षीर न्याय यदि हो तो श्रीमान् पं० वीरविजयजी की उस प्रतिम प्रतिभा के सामने बिचारे जेठमल जी की किंकर्त्तव्य विमूढ़ बुद्धि कभी नहीं टिक सकती। क्योंकि जेठमलजी मूर्त्तिके ंडन विषय में अपने समकितसार में जो लीचर और कमजोर दलीलें पेश की है उन्हें खुद स्थानकवासी भी ाज नगण्य एवं उपहास योग्य मानते हैं। जैसे स्वामी शंकराचार्य ने अपने ग्रंथों में जैनों की सप्तभंगी याने स्याद्वाद सिद्धान्त कि है और आज उन्हीं के अनुयायी कहते

हैं कि "भगवान् शंकराचार्य ने जैनो के स्याद्वाद का सर्वतो भावेन मीक्षण नहीं किया किन्तु एकाङ्ग का ही अवलोकन कर अपना निर्णय दे दिया" उसी प्रकार जेठमलजी ने भी मूर्त्ति के मार्मिक महत्त्व को न जान कर केवल अपनी कुयुक्ति प्रदर्शनी ही कायम की है। क्योंकि जेठमलजीने शाश्वती जिनप्रतिमाओं को कामदेव की प्रतिमा बतलाई है और स्थानकवासी त्रि न् उसी प्रतिमाओ को तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ मानते हैं। यह तो मात्र एक उदाहरण हैं। अन्यथा ऐसी २ अनेक बातें हैं जिनका जेठमलजी को तात्विक ान था ही नहीं। सच्चे सिद्धान्त के समर्थन में क्या पक्षा और क्या प्रतिपक्षी दोनो आखिर एकमत हो ही जाते हैं तभी तो किसी ने कहा है कि:—

"सचाई छिप नहीं सकती बनावट के उसूलों से।
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से॥"

× × × ×

ऐ० नों० १६५ में श्रीमान् शाह ने अपनी जुम्मेवारी का बचाव करते हुए एक पंजाब की पटावली का उल्लेख किया है। वह भी ास विचारणीय है क्योंि इस करतबी मत में कैसे २ करतबी जाल रचे जाते हैं? इसका पाठकों को सम्यग् ान हो जाय। पंजाब की पटावलीकारों ने ी पटावली ठेठ भगवान् महावीर प्रभु से मिलादी है। इसी प्रकार कोटा मु-दाय वालो ने भी अपनी पटावली प्रभुमहावीर जाकर मि ा दी है। यद्यपि इसका उल्ले शाह ने तो नहीं किया है किन्तु वह पटावली मेरे पास वर्त्तमान में मोजूद है।

। स्थानकवासियों जितने समुदाय, टोले ौर सिंघाड़े

हैं वे सब के सब अपने आदि पुरुष धर्मसिंहजी लवजी और धर्मदासजी को मानते हैं। और धर्मसिंहजी लवजी और धर्मदासजी अपना मूल उत्पादक श्रीमान् लौंकाशाह को बताते हैं। लौंकाशाह के पूर्व जैनश्वेताम्बरसमुदाय में मूर्त्ति नहीं मानने वालों का कहीं अस्तित्व भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। स्वामी मणिलालजी ने "प्रभुवीर पटावली" लिखी है उसमें भी लौंकामत व स्थानकवासी समुदाय का मूल उत्पादक श्रीमान् लौं ाशाह को ही लिखा है तथा इस विषय में श्रीमान् शाह और श्रीसन्तबालजी भी सहमत हैं।

किन्‍ व जरा पंजाब की पटावली की ओर दृष्टिपात कर देखि ये कि उन्होंने भगवान् महावीरप्रभु से २७ वें पाट पर ागम पुस्तिकारूढ करनेवाले नन्दीसूत्र के रचयिता श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी को माना है। स्थानकवासी समुदाय ३२ सूत्रों में नन्दीसूत्र को भी एक माननीयसूत्र मानते हैं और नन्दीसूत्र की स्थविरावली में भग न् महावीर से २७ वें पाट पर देवर्द्धिगणि क्षमा ण का नाम है। पंजाब की पटावली आधुनिक लोगों ने कल्पित यार की है पर वे पटावली की पृथक् कल्पना करते हुए अपने मान्य श्रीनन्दीसूत्र को सर्वांश में ही भूल गए। अतः श्रीनन्दीसूत्र के २७ पाट पञ्जाबकी पटावलि से नहीं मिलते हैं और पंजाब की ावलि में जो जैनपटावलि से लिये हुये मों को अलग रदें तो एक भी नाम श्रीनन्दीसूत्र की थेरावलि से नहीं मिलते हैं फिर भी तुर्रा यह कि पंजाबवाली पटावलि से कोटावाली पटावलि नहीं मिलती है पंजाब और कोटा ली ावलियों ` वामिश्री मणिलालजी की प्रभुवीर

पटावलि में मुद्रित ई प वलि नहीं मिलती हैं जिसका नमूना यहां बतला देना अ चित न होगा।

नि लिखि त कोष्टक में पहला नम्बर स्थानक० ाधू मोल-र्षिजी कृत श्रीनन्दीसूत्र का हिन्दीअनुवाद के २७ पाटों के ाचार्यों का नाम है। दूसरे नंबर में पंजाब पटावलि ˋ, ˆसरे नंबर मे कोटावालों की पटावलि के, चौथा नंबर में स्वामी मणि-लालजीवाली पटावली के २७ पट्टधरों की नामावली हैं।

स्था० सा० अमोल के नन्दी सूत्र के २७ पाट	पंजाब की प - वलि के २७ पाट	कोटावालि पटा-वली के २७ पाट	० म ˆ लजी २७ पाट
१—सौधर्माचार्य	सौधर्माचार्य	सौधर्माच	सौधर्माचार्य
२—जम्बुस्वामि	जम्बुस्वामि	जम्बुस्वामि	जम्बुर मि
३—प्रभवस्वामि	प्रभव ,,	प्र ,,	व ,,
४—श म्भव	शयम्भव ,,	शयम्भव ,,	शयम्भव ,,
५—यशोभद्र	यशोभद्र ,,	य ˋभद्र ,,	यशोभद्र ,,
६—संभुतिविजय	संभुतिविजय	संभुतिविजय	संभुति विजय
७—भद्रबाहुस्वामि	भद्रबाहुस्वामि	भद्रबाहु स्वा	भद्रबाहु
८—स्थुलीभद्र	स्थुलिभद्र	स्थुलिभद्र	स्थुलिभद्र
९—महागिरि	आर्य महागिरि	आर्य महागिरि	आर्य गिरि
१०— हुल स्वामि	ीसिंह	ब सिंह	आर्य हस्ती
११—साद्गण स्वा	भुवनस्वामि	सीवन स्वा	प्रति
१२— माचार्य	वीरस्वामि	वीर ,,	इन्द्र दिन
१३— चार्य	संछडील ,,	छंडिल ,,	र्य दिन
१४—समुद्रा र्य	जीतधर ,,	जी र ,,	वजू मि
१५— र्य मांगु	आर्य समुद्र	आर्य स द्र	वजूसेन
१६— ाचार्य	नन्दिल स्वामि	नन्दिजी ,,	भद्रगुप्त

१७—भद्रगुप्ताचार्य	नाग हस्ति ,,	नाग हस्ती ,,	वज्र (फल्गुनी)
१८—वज्रस्वामि	थंडिलाचार्य	रेवंत ,,	आर्य रक्षित
१९—आर्यरक्षित	हेमवंताचार्य	सिंह गणि ,,	नन्दिल
२०—आर्य नन्दिल	नागजीताचार्य	थंडिल ,,	नाग हस्ती
२१—आर्य्य नागहिस्त	गोविन्दस्वामि	हेमवंत ,,	रेवती
२२—रेवंताचार्य	नागजीत	हेमवंताचार्य	सिंहाचार्य
२३—सिंहाचार्य	गोविन्दाचार्य	नागजी स्वामि	खंदिलाचार्य
२४—खंदिलाचार्य	भूतदिनाचार्य	गोविन्दजी ,,	नागजीताचार्य
२५—नागार्जुन	छोहागणि	भूतादिन ,,	गोविन्दाचार्य
२६—हेमवताचार्य	दुसगणी	दासगण ,,	भूतादिनाचार्य
२७—गोविन्दाचार्य	देवर्द्धिगणि	देवढ्ढगणि	देवढुगिण

उपरोक्त तालिका से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इन कल्पित मत में किस प्रकार कल्पित पटावलियों की रचना कीगई इन २७ पाटधरों में ९ नाम जो जैनपटावलियों से लिये गये वे तो सबके लिए समान हैं और शेष नाम न तो श्रीनंदीसूत्र से मिलते हैं और न तीनो कल्पनायें करने वालों के आपस में ही मि ते हैं जब नंदीसूत्र 'जो स्थानकवासियों के माना हुआ,' के नामों से ही इन लोगों में किसी का भी नाम नहीं मिलता है तो २७ पाट से आगे ज्ञानजी यति (ज्ञानसागरसूरि) और लौंका- ह तक के ट नामावली के लिए तो कहना ही क्या है परन्तु जहां कर ा ही के किल्ले बाँधे जाते हैं वहां सत्यता का तो अंश ही क्यों हो, यदि इन कल्पित किल्ले बनाने वालों में थोड़ा भी बुद्धि ंश हो तो कम से कम २७ पाट तो नन्दीसूत्र

के अनुसार ही रखने कि इन २७ नामों में तो किसी को न तो बोलने को स्थान मिलता और न स्थानकवासियों को मुँह छिपा के लाजबाब ही होना पड़ता परंतु इतनी बुद्धि लावे कहाँ से जो जिसके दिल में आया वही घसीट मारा क्या किसी स्थानकवासी भाइयों में यह ताकत है कि पंजाब या कोटा की पट्टावलियों में लिखे हुए दश पाट के अलावा किसी आचार्यों के एक भी विश्वासनीय प्रमाण जनता के सामने रख सके ?

अब आगे चल कर यति ज्ञानजी की ओर जरा दृष्टि डाल कर देखिये। पजाब की पटावलीकार यति ज्ञानजी को अपने पूर्वज होने का उल्लेख किया है श्रीसंतबालजी और वा० मो० शाह ४५ दीक्षा के उम्मेदवारों को यतिज्ञानजी के पास दीक्षा दिखाई है और पंजाब की पटावली यतिज्ञानजी के पूर्व उनके गुरु परम्पराभी दी उनको हम आगे चलकर बतलावेंगे।

वास्तव में यतिज्ञानजो स्थानकवासियों ने ही लिखा है पर आपका नाम आचार्य ज्ञानसागरसूरि हैं और आप वृद्धपोसाल के आदि आचार्य विजयचन्द्र सूरि की परम्परा में हैं। विजयचन्द्र सूरि प्रसिद्ध तपागच्छ आचार्य जगचन्द्रसूरि 'कि जिन्हो को मेवाड़ के महाराणा ने तपाविरूद अर्पण किया था' गुरु भाई थे। अब हम यतिज्ञानजी के पूर्वजों की नामावली तथा स्वामि मणिलालजी द्वारा प्रभुवीर पटावलि की पटावलि, और पंजाब की पटावलि उद्धृत कर पाठकों का ध्यान निर्णयकी ओर आकर्षित करते हैं।

लघु पोसालिया विजय चन्द्रसूरि की पटावलि	पंजाब के स्थानकवासियों की पटावलि	स्था० साधु मणिलालजी की पटावलि
४५—विजयचन्द्रसूरि	४६—हरिसेन	३४—वर्द्धनाचार्य
४६—क्षमाकीर्तिसूरि ※	४७—कुशलदत्त	३५—भूराचार्य
७—हेमकलश सूरि	४८—जीवनर्षि	३६—सुदनाचार्य
४८—यशोभद्र सूरि	४९—जयसेन	३७—सुहस्ती
४९—रत्नाकर सूरि †	५०—विजयर्षि	३८—वरदनाचार्य
५०—रत्न प्रभसूरि	५१—देवर्षि	३९—सुबुद्धि
५१—मुनि शेखर सूरि	५२—सूरसेनजी	४०—शिवदत्ताचार्य
५२—धर्मदेवसूरि	५३—महासेनजी	४१—वरदत्ताचार्य
५३—ज्ञानचन्द्र सूरि	५४—जयराजजी	४२—जयदत्ताचार्य
५४—अभयसिंह सूरि	५५—गजसेनजी	४३—जयदेवाचार्य ४४—जयघोषाचार्य
५५—हेमचन्द्र सूरि	५६—मिश्रसेनजी	४५—वीरचक्रधर
५६—जयतिलकसूरि※	५७-विजयसिंहजी १४०१	४६—स्वातिसेनाचार्य
५७—रत्नसिंह सूरि	५८-शिवराजजी १४२७	४७—श्रीवंताचार्य
५८—उदयचल सूरि	५९-लालजीमल १४७१	४८—सुमतिआचार्य
५९—ज्ञानसागर सूरि	६०-ज्ञानजी यति १५०१	(लौंकाशाह के गुरु)
(ज्ञानजी यति)	ऐ० नों० पृष्ठ १६३	प्रभु वी० पृ० १५६

बुद्धिमान् ! यं समझ सकते हैं कि यतिज्ञानजी की परम्परा मिलाने के लिए पंजाब की पटावलि किस प्रकार की

※ आ० कल्प भाष्य टीका के कर्ता † वि० सं० १३७१ श्री समराशाह ने शत्रुन्जय का पन्द्रहवाँ उद्धार के समय आप वहाँ प्रतिष्ठा मे शामिल थे । और आपकी कृतियों में रत्नाकर पचीसी बहुत प्रसिद्ध है ※ जिन तिलक सूरि के पटधर माणक्य सूरि हुए आपके विषय मुनि सुन्दरसूरी रचित गुरावली के श्लोक १४० से १४४ मे वर्णन है ।

कल्पना का ढांचा तैयार किया है फिर भी मजे की बात तो यह है कि (५७) का पाट वि० सं १४०१ (५८) पाट १४२७ (५९) पाट १४७१ (६०) पाट १५०१ का समय बतलाया गया है कि अंध परम्परा वाला कोई शंका भी न कर पावे। पर साथ में हमारे स्थानकवासी भाई इतनी कृपा करते कि इन १०० वर्षों में चार आचार्योंने अमुक अमुक ग्रन्थों की रचना की या दूसरा कोई भी कार्य किया ताकि जनता को इस कथन पर कुछ विश्वास रहता जैसे कि आचार्यविजयचन्द्रसूरि से आचार्य ज्ञानसागरसूरि (यति ानजी) तक के समय में जो आचार्य हुए और उन्होंने ग्रन्थ रचना की के उल्लेख मिलते हैं, इतना ही क्यों इन तीन शताब्दी मे जैनाचार्यों के निर्माण किये हुए सैकड़ों ग्रंथ शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं पर पंजाबपटावली कराके चार आचार्यों के समय (वि. सं १४०१ से १५०१) तक के भी जैनाचार्यों के अनेक ग्रन्थ व शिलालेख मिल सकते हों तो फिर इन स्थानकवासियों के माने हुए १००० वर्षों के आचार्यों (देवर्द्धि से ज्ञानजी का इतिहास क्षेत्र में पता तक भी नहीं मिले यह कितने दुःख और आश्चर्य की बात है !

आगे चलकर हम पंजाब की पटावलि और ामी मणिलालजी की पटावलि े नामों को तुलनात्मक दृष्टि से दे ते हैं तो उसमें भी एक दो नाम तक भी नहीं मिलते हैं अतएव यह बिना संकोच और निशंकतया कहना चाहिये कि लौंकाशाह पूर्व की जो पटावलि पंजाब व कोटा समुदाय तथा ामी मणिलालजी ने छपवाई है वह बिल ल कल्पित और बिचारे भोले भाले स्थानकमार्गियों को धो ा देने के लिये ही बनाई है इससे न तो

स्थानकवासियों के सिर पर गृहस्थ गुरु होने का कलंक धुप सकता है और न अर्वाचीन के प्राचीन ही सिद्ध होता है पर इसके खिलाफ जो थोड़ा बहुत लोगो को विश्वास था वह भी अब शायद ही रहेगा ।

आगे चलकर पंजाब की पटावलीकार ने देवर्द्धिगणि क्षमा श्रणजी के ३४ वें पाट अर्थात् भगवान् महावीर के ६१ वें पाट पर यतिज्ञानजी को कायम किया है जिनका असली नाम ज्ञान सागर सूरि था और श्रीदेवर्द्धिगणि तथा यतिज्ञानजी के बीच में जितने आचार्यों के नाम लिखे हैं वे सब के सब कल्पित हैं । किसी एक के अस्तित्व का जरा भी प्रमाण नहीं मिलता है । क्योंकि मिले भी कैसे ? जब ज्ञानजी यति के पूर्व कोई भी मनुष्य मूर्त्ति विरोधी था ही नहीं तो ऐसा होना सर्वथा उचित भी है। फिर आगे चल कर ज्ञानजीयति से क्रमशः पूज्यसोहनलालजी का नाम लिखा है, किन्तु इस विषय में हम यहाँ कुछ भी कहना नहीं चाहते हैं । कारण ! ज्ञानजीयति के समय लौंकाशाह हुए हैं और लौंकाशाह के बाद से आज तक इनका अस्तित्व जिस किसी रूप में विद्यमान ही है ।

स्थानकवासी समाज के साहित्य में अनेक समुदाय हुए और आज भी विद्यमान हैं किन्तु सिवाय पंजाब व कोटा समुदाय के सब अपनी २ पटावलिये लौंकाशाह से मिला कर खतम कर लेते हैं, किन्तु पंजाब की पटावली ने लौंकाशाह का तो उल्लेख तक भी नहीं किया और उन्होंने अपने को सीधा महावीर प्रभु से मिला दिया है । ऐसा करने मे शायद दो कारण हो सकते हैं ।

(१) लौंकाशाह को वे गृहस्थ मानते हैं और गृहस्थ को अपना धर्म संस्थापक गुरु मानना वे पसन्द नहीं करते हों।

(२) यदि लौंकाशाह को दूसरों की तरह ये भी अपना गुरु मान लें तो एक जबर्दस्त आपत्ति आ ड़ी होती है। क्योंकि या तो लौंकाशाह के पूर्व जो आचार्य हुए हैं उन सब को अपना धर्माचार्य मानना पड़े कि जिन्होंने नेकों मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ कराई। या २००० वर्षों तक भगवान् के शासन का विच्छेद मानना पड़े इन आपदाओं को अपने पर से टालने के लिये ही इन लोगों ने यह कल्पित नामावली तैयार कर पनी पटावली सीधी महावीर से मिलादी है। विद्वान् इसे मानें या न मानें परन्तु पञ्जाबी स्थानकवासियों का तो इस पटावली से लौंकाशाह गृहस्थ को धर्म गुरु मानने का अपयश टल गया और न लौंकाशाह के पूर्ववर्त्ती मूर्त्ति पूजक आचार्यों को अपना उपदेष्टा मानना पड़ा, तथा शेष मे २००० वर्षों तक शासन विच्छेद का भय भी जाता रहा।

किन्तु स्थानकवासी साधु मणिलालजी तो इसमें भी अने झंझटें देखते हैं, क्योंकि पञ्जाब की पटावली के २७ पाट और श्रीनन्दीसूत्र के २७ पाट मिलते नहीं हैं। नन्दीसूत्र के २७ पाटों में जो नाम हैं उनमें से कई नाम पंजाब की पटावली में नहीं हैं और जो पञ्जाब की पटावली में २७ पाट हैं वे कई नन्दीसूत्र में नहीं हैं। दूसरा देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण और ज्ञानजीयति के बीचमें जितने आचार्य पंजाब वालो ने बताये हैं उनके अस्तित्व का प्रमाण भी इनसे उपलब्ध नहीं होता। ऐसी दशा में यह

भव है कि इनका सफेदझूठ अब सत्य मान लिया ? । क्योंकि ।जकल वह जमाना नहीं है कि भोली भाली गौरतों या भद्रिक लोगों के सामने कह दिया जाय कि हमारे ।चार्य स्वल्प संख्या में थे, और वे दूर २ प्रदेशों में रहते थे। और इसे आज कल के लोग प्रमाणाऽभाव से ही सत्य मान लें ? यह एक वारगी ही संभव है। आजकल तो इतिहास की इतनी शोध ेज हो रही है कि प्रत्येक प्रान्त के कोने २ का इति स प्रकाश में आ रहा है। परन्तु कहीं भी इस बात का पता नहीं चला कि लौंकाशाह के पूर्व भी किसी प्रान्त, जंगल पहाड़, नगर, गाँव, गुफा या चूहे के बिल में भी ऐसा एक मनुष्य हो, जो जैन कहला करके भी जैन मन्दिर मूर्त्तियों का विरोधी हो और जैनाऽऽगम तथा जैनाचार्यों को मानने से इन्कार करता हो ? । हजार वर्षों का अर्सा में एक धर्म अखिल भारतीय जैनों का विरोध करने वाला एक प्रकार गुप्त रह सकता है ? कदापि नहीं।

तथा मूर्त्ति पूजक समुदाय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता है कि इन २००० वर्षों मे किसी ने ऐसे मत के लिए दो शब्द भी लिखे हों "जैनों में एक ऐसा समुदाय है जो मूर्त्तिपूजा नहीं मानता है" एवं जैनधर्म मे भगवान् महावीर के बाद २००० वर्षों में पूर्वधर श्रुतकेवली और बड़े ही धर्म धुरन्धर विद्वान् हुए जिन्होने विविध विषयो पर नाना निबन्ध लिख जेनो का साहित्य कोश सहस्र सहस्र रश्मियों के सदृश चमका दिया, परन्तु वह सारा का सारा साहित्य मूर्त्तिपूजक समुदाय की ओर से ही लिखा मालूम होता है। यदि उस समय मूर्त्ति विरोधी समुदाय

का जन्म मात्र भी हुआ होता तो उस समय का एकाध पुस्तक
ाज मूर्त्ति विरोध में लिखी हुई भी जरूर मिलती, परन्तु इसका
र्वथा अभाव ही है। मान लें कि मूर्त्तिपूज समुदाय के अधिक
आचार्य पूर्वधर थे इसमें उन्होंने साहित्य सार में पनी प्रति ा
ो पूर्णतया चमत्कृत र दिया, किन्तु यदि मूर्त्ति विरोधी वर्ग
उ मय हो तो उसके सबके व आचार्य तो मूर्ख होंगे ही
नही जो उस समय चोर सी चुपकी लगा बैठ गए।

वस्तुतः उपर्यु इन ारणों ही निष्कर्ष निकलता है कि
लौं ाशाह के पूर्व जैन जगत् में ऐसी एक भी व्यि नहीं थी
जो मूर्त्तिपूजा मानने से विरोध करती हो, क्योंकि यह प्रम ा-
व स्वतः परिस्फुट हो जाती है, ऐसी हालत में पंजाब की
पटावली जैसी कल्पित पटावलिये बनाने वे सिवाय सभ्य
मुदाय को हं ने के दूसरा क्या स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं, छ
समझ में नहीं आता। यदि छ काल के लिए अन्तःसार विहीन
हृदय वाले मनु और ौरतें ऐसी निःसार बातों को मान भी
लें तो क्या हुआ पर अन्त गत्वा प्रमाणाऽभाव से ये बात चिर
मय के लिए तो नही टिक सकती।

यद्यपि इन सब प्रश्नों को हल करने के लिए स्था० स्वामी
मणिलालजी ने अपनी प्रभुवीर पटावलि में लौंकाशाह को यति
सुमति विजय के पास दीक्षा दिलवादी है और इससे गृहस्थ गुरु
को नने के आक्षेप का निरा रण कर दिया। अब न लौंकाशाह
के पूर्व किन्हीं भी ाचार्यों के ऐतिहासिक प्रमाणों की आवश्यकता
रही और न धर्म स्थापक गृहस्थ रु का ाक्षेप ही रहा
किन्तु श्री संतबालजी इ व को कतई ीकार नहीं रते

हैं यह आपत्ति जरूर शेष रह जाती है। देखें स्वामीजी इसका क्या प्रतिवाद करते हैं ?

श्रीमान् संतबालजी का यह दृढ़ निश्चय है कि लौंकाशाह ने अपनी जिन्दगी में कभी किसी प्रकार की दीक्षा नहीं ली, अपितु गृहस्थ दशा में ही काल किया, और यह मत केवल मुनि श्री संतबालजी का ही नहीं किन्तु अनेक ऐतिहासिक प्रमाण, लौंकागच्छ के श्रीपूज्यों और यतियों को पटावलिएँ आदि इस मान्यता से पूर्ण सहमत हैं। और हाल ही में स्थानकवासियों की जो कान्फ्रेन्स अहमदाबाद में हुई थी उसमें भी स्वामी मणिलालजी की उक्त पुस्तक "प्रभुवीरपटावली" को अवलोकन कर उसे सर्व सम्मति से अप्रामाणिक घोषित किया है। वामी मणिलालजी वि० सं० १६३६ में तपागच्छीय यति कान्ति विजय द्वारा लिखित दो पत्रों पर पूर्ण विश्वास रखते हैं चाहे वे पत्र कल्पित ही क्यों न हो और स्वयं श्रीमान् सन्तबालजी भी उन्हें बनावटी ों न माने, परन्तु मुनिश्री मणिलालजी की श्रद्धा उन पर से तनिक भी नहीं टलती है।

अब हम निम्न लिखित पैरेग्राफों में पंजाब और कोटा की कल्पित प वलियों पर थोड़ा बहुत विचार विमर्श करते हैं पाठक इसे ध्यान से पढ़ें कि इन पटावलियों में सत्यता का सहारा कहाँ तक लिया गया है।

(१) र्त्तिपूजा की दृष्टि से देखा जाय तो स्थानक- सियों की मान्य ऽनुसार भी प्रभु महावीर की दूसरी शताब्दी में विहित र्यों । मूर्त्तिपूजा प्रचलित हुई और इस प्रवृत्ति

से जैनाचार्यों ने जैनसमाज पर महान उपकार किया[1], और यह प्रवृत्ति लोंकाशाह मय तक तो अविच्छिन्न धारा ाह च ी आई थी। इन २००० वर्षों में किसी ने भी इस प्रवृत्ति । विरोध नहीं किया। इ हालत में इस उपर्यु मान्यता से विरुद्ध विचार रखेने वाली ये दोनों कल्पित पटावलियें भी महत्व शेष नहीं र सकती हैं? ❀

(२) ऐतिहासि ि से ये पटावलियें बिलकुल कल्पित सि द्ध होती हैं। कारण इन पटावलियों में जो नाम हैं उनमें से यदि जैन लियों से लिए गए नामों को लग र शेष नामों के लिए इतिहास ोलाजाय, तो उनके लिए इतिहा में कहीं गंध तक भी नहीं मिलती। और न स्वयं ावली कार आज त इन नामों लिए कोई प्रमाण दे के हैं। इस दशा में इन की सत्यता पर यं सन्देह हो जा है।

(३) खण्डन मण्डन की दृि से यदि इन पर विचार किया जाय तो प्रभु महावीर बाद २००० वर्षों के ाहित्य में मूर्त्तिमानने और न मानने का वादाविवाद कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हो है। केवल जैन श्वेताम्बर और दिगम्बरों के, जैन और वेदान्तियों के, जैन और बौद्धों के तथा अनेक गच्छ गच्छान्तर एवं मत मतान्तरों आपसी वादविवाद का ही वर्णन यत्र तत्र नजर ाता है। किन इन पंजाब ादि की प वलियों में य

१ देखो प्रभुर्वार पटा ा १३१।

❀ सन्तबालजी तो ात् ८४ में मूर्त्तिपूजा के अस्तित्व डिण्डिम हैं फिर ये पटाव दवा है? ती ।

सब न हो कर इन से विरुद्ध अर्वाचीन समय में मूर्त्ति विरुद्ध आन्दोलन की चर्चा ही विशेष है। तथा २००० वर्षों के साहित्य में, इन कल्पित पटावलियों में लिखे कल्पित आचार्यों के नाम का कहीं निर्देश भी नहीं है। फिर हम क्यों न मानें कि ये बिलकुल बनावटी वागजाल मात्र हैं।

(४) ाहित्य ी दृष्टि से यदि इन को देखा जाय तो २००० वर्षों में जिन पूर्ववृत्ति जैनाचार्यों ने हजारों ग्रन्थों का निर्माण किया था, उनके नामों के विरुद्ध इन पटावलियों में दिये गए कल्पित नामों के आचार्यों ने कोई भी ग्रंथ निर्माण किया हो ऐसा ाज तक भी कहीं से सुनने में नहीं आया, इस दशा में लाचार हो मानना प. ा है कि ये पटावलियें सोलहो आनें कल्पित एवं झूठी है।

(५) वास्तु निर्माण विधि से इन पर विचार विनिमय करें तो श्वेताम्बर और दिगम्बर समुदाय के मन्दिर, मूर्त्तिएँ, गुफाएँ, उपाश्रय और धर्मशालाएँ जहाँ आज भारत के कोने २ में मिलती हैं सो ही नहीं किन्तु सुदूर यूरोप आदि विदेशों म भी उनका अस्तित्व अक्षुण तया उपलब्ध होता है। वहाँ इन पंजाब ादि की पटावलियों में प्राचीन समय का किसी झोंपड़े का भी प्रमाण नहीं प्राप्त है। तब बाध्य हो मानना पड़ता है कि ये केवल मिथ्यावादियों का ही क्षणिक वाग् विमोह है।

(६) ाधु ाध्वियों के लिहाज से यदि इनकी समीक्षा की जाय तो भगवान् महावीर के बाद २००० वर्षों में जैन श्वे० दिगंबरों के हजारों साधु सध्वियों का होना इतिहास से सिद्ध है, पर पंजाब की पटावली के आचार्यों की नामावली में का

तथा उनके कोई भी साधु किसी भी इतिहास में ाज तक नजर नहीं आया ।

(७) **श्रावकों की हैसियत से** यदि इनकी पर्यालोचना की जाय तब, भी जैन श्वे० दि० समुदाय के उपासकों, तथा श्रावकों की ंख्या रोड़ों तक थी, ौर बहुत से श्रावकों ने जैन शासन की सेवाएँ की, उनका इतिहास आज विस्तृत रूप े हमें प्राप्त है, पर पंजाब की पटावली में जो नूतन आचार्यों की नामावली है, उसमें के आचार्यों का न तो कहीं ि त्व पाया जाता है और न, उनके उपासक-श्रावकों ा होना कहीं ।ि होता है, तब निःसंकोचतया यह त क्यो न मानली जाय ि ये पटावलिएँ स्थानकवासी दोनों समुदायों ने बिलकुल कल्पित अर्थात् जाली तैयार की है । इतने पर भी यदि पञ्जाब ौर ोटा की मुदाय वाले इन पटावलियों पर विश्वास र ते हों तो उनको चाहिए कि इनकी प्रामाणिकता बता को जनता के सामने कुछ विश्वसनीय प्रमाण पेश रे ।

अस्तु ! उ प्रकार से इन सब पटावलियों की प्रसंगोपात्त , समालोचना कर ब हम पाठकों को यह बतला देना चाहते हैं कि श्रीमान् शाह ने पनी नोंध में, मेरे इस निबन्ध े बताई गई अनेक टि ों े अलावा भी छोटी बड़ी कई ऐसी गप्पें मारी हैं, जिन पर सभ्य संसार को बजाय तसल्ली आने े यकायक हँसी आजाती है और नोंध की सत्यता मे स्वतःसन्देह हो जाता है । पर हम निबन्ध बढ़ जाने े भय से हें योंही व्यर्थ समझ छोड़े देते हैं । रण, जब नमूने के तौर पर हमने अ ति निबंध में कई एक बातों की समालोचना कर भली

यह बता दिया है कि श्रीमान् वा० मो० शाह को न तो कोई इतिहास । ज्ञ था और न सामाजिक ज्ञान भी था । वल पनी हठधर्मी तथा मिथ्यामतवादिता के मोह में फँस, कोटि के उपासक होने से आठ कोटि समुदाय का जरूर पक्ष किया है, और मन्दिर मूर्त्तियों तथा जैनाचार्यों के प्रति पने जन्म जन्मान्तरों की चिर सञ्चित पक्षपात पूर्ण मनोवृत्ति का परिचय देने को काले कलेजे से भयंकर जहरीला विष वमन कर अपने दहजते दिल को इस नोंध द्वारा चिरशांति कराई है। किन्तु दुः है कि सांप्रत का जमाना केवल मिथ्या ह दिता का न हो कर सत्याऽन्वेषण का है अतःऐसी निकम्मी और अकिंचन पु कों की सभ्य समाज मे तो कोई कीमत ही नहीं हो सकती। हाँ! जो शाह के सदृश क्षुद्र विचार वाले जीव हैं वे इसे जरूर कलेजे से लगा सकते हैं।

शेष में मैं मेरे इतिहास लेखक सज्जनों की सेवा में यह निवेदन करता आ कि "आप लेख लिखने के पूर्व उस लेख की सहायक सामग्री को पूर्णतया अपने पास जुटा कर कोई लेख लि तो वि स है विद्वद्वर्ग में वह विशेष आदरणीय हो सकता है" बस मैं मेरे इस लेख को यहाँ ही समाप्त करता हूँ।

ॐ शान्तिः ३

परिशिष्ट

जैसे डुआशाह, बीजाशाह, और गुलाबशाहादि के मत गृहस्थों के चलाए हुए हैं वैसे ही लौंकामत भी लौंकाशाह नामक गृहस्थ का च ाया हुआ । लौंकाशाह के मत में नामधारी साधु हुए परन्तु उनका गुरु कोई नहीं था और न उन्होंने किसी सद् गुरु के पास जाकर कभी दीक्षा ली थी । शास्त्रकारों का स्पष्ट आदेश है कि छदोपस्थापनीय चारित्र, बिना गुरु के हो ही नहीं सकता है । पर लौंकाशाह के मत में जितने पंथ चले वे ब के सब बिना गुरु वेश धारण करके ही गृहस्थों के चलाये हुए हैं । बतौर नमूना के कुछ देखि ये !:—

(१) लौंकाशाह की मोजूदगी में लौंकाशाह वृद्ध और पंग होने के कारण स्वयं तो दीक्षा ले नहीं सका, किन्‍ भाणादि तीन मनुष्यों को बिना गुरु साधु वेश पहिना कर साधु बना दिया, जिनकी प्रवृत्ति आज तक चालू है ।

(२) वि० सं० १५६६ में रूपजीऋषि, उस समय लौंकामत ` यति होते हुए भी बिना गुरु साधु का वेश पहिन कर ाधु बन गए । देखो ! प्र० प० पृ० १८१

(३) जीवराजजी स्वामी वि० सं० १६०८ में लौं गच्छोय यतियों ` निकल र बिना किसी गुरु के पास, दीक्षा लिए ही प स्वयं ही साधु बन गए थे । प्रभु० ^० प० पृ० १८१

(४) धर्मसिंहजी ने वि० सं० १६८५ में पने गुरु शिवजी

को छोड़कर, बिना गुरु स्वयं साधु बन, अनन्ततीर्थङ्करों और खास लौंकामत की प्ररूपणा को परित्याग, अपनी मनोकल्पना से ही श्रावक के लिए आठकोटि के सामायिक की बिलकुल नयी शा विरुद्ध प्ररूपणा की।

(५) स्वामी लवजी ने वि० सं० १७०८ मे अपने गुरु बजरंगजी को शिथिलाचारी भ्रष्टाचारी आदि कह कर आप बिना गुरु के ही साधु बन तीर्थङ्कर, गणधर और, खास लौंकामत की आज्ञा का उल्लंघन कर डोराडाल दिन भर मुँहपर मुँहपत्ती बाँधने वाला एक नया मत प्रचलित किया।

(६) धर्मदासजी वि० सं० १७३६ में गृहस्थ होते हुए भी उस समय जैनयति, लौंकायति, धर्मसिंह यति, और लवजीयति आदि सब को धता बताकर स्वयं बिना गुरु स्वतन्त्र साधु बन गए।

(७) स्वामी हरदासजी भी अपने गुरु को छोड़ स्वयं साधु बन गए।

(८) यति गिरधरजी भी इसी भांति बिना गुरु के साधु बन गये थे।

(९) तथा यह प्रवृति आज पर्यन्त भी इन लोगों में विद्यमान है। जैसे अन्याऽन्य यतियों में जिस किसी गृहस्थ का कुछ अपमान हुआ यह पुजाने की भावना के वशीभूत होने पर बिना गुरु ही साधु वेश के वस्त्र धारण कर साधु बन जाता है, इस प्रकार खास जैनधर्म में साधु नहीं हो पाता है, प्रधान जैनधर्म में तो गुरु से विधि विधान होने पर ही दीक्षा दी जाती है किंतु लौंकामत और स्थान ासियों मे तो पूर्वोक्त प्रकार से जिसके मन आई वह स्वयं वेश पहिन साधू बन जाता है। उदाहरणार्थः—ऊपर

कई प्रमाण दे आये हैं और अधुना हमारे पूज्य हुकमीचंदजी महाराज पूज्य श्रीलालजी महाराज जावदवाले शोभालालजी तथा अन्य भी ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि वे बिना गुरु दीक्षित बन जाते हैं किंतु प्रधान जैनियों में तो बड़े से बड़ा गृहस्थ विद्वान या उच्च उच्च ब्राह्मण और साधु वेशधारी स्थानकवासी तेरहपन्थी भी क्यों न हो पर वह गुरु महाराज की अनुमति से ही दीक्षा ले कता है स्वतंत्र रूप से नहीं और ऐसा होने पर ही वह साधू माना जाता है। देखिये शास्त्रों में:—

"शिवराज ऋषि, पोगल संन्यासी, खंदकसंन्यासी, अं - परिव्राजक आदि यद्यपि अन्यान्य मतों के महान् नेता थे त महात्मागौतम आदि ब्राह्मण थे किंतु इन्हें भी यथाविधि गुरु से ही दीक्षा लेनी पड़ी थी"।

(१) लौंकागच्छ ` पूज्यमेघजी ५०० साधूओं ` साथ लौंकामत को त्याग, जैनाचार्य विजयहीरसूरिजी के पास ।ए, किन्तु इन्हें भी पुनः जैन दीक्षा लेकर ही जैन साधुओं में शामिल होना पड़ा।

(२) लौंकागच्छ के पूज्य श्रीपालजी ४७ शिष्यों ` थ जैनाचार्य हेमविमलसूरिजी के प आए तो उनको पुनः दीक्षा दीगई थी।

(३) लौंकागच्छीय पूज्यआनंदजी ।दि ७८ साधू आचार्य आनन्दविमलसूरि के पास आकर पुनः दीक्षित ए थे।

(४) ।मी बुटेरायजी स्थ ।सी समुदाय को त्याग कर संवेगपक्षी समुदाय में आये तो गणि श्रीमणिविजयजी महाराज ने उन्हें पुनः दीक्षा दी।

(५) ामी मूलचन्द्रजी स्था० मत त्याग कर आए तो को भी गणि श्रीमणि विजयजी ने पुनः दीक्षित किया। इसी प्रकार मी वृद्धिचंद्रजी और नीतिविजयजी आदि को भी पुनः दीक्षा दीगई थी।

(६) स्वामी आत्मारामजी अपने २० शिष्यों के साथ स्थानकवासी मत का परित्याग कर संवेगीपक्ष में आए तो पूज्य गणिवर बुद्धिविजयजी महाराज ने उन सबको पुनः दीक्षा दी।

(७) स्वामी रत्नचंदजी स्था० समुदाय को त्याग कर सनातन जैन धर्म में आये तो उन्हें जैनाचार्य विजयधर्म सूरिजी ने पुनः दीक्षा दी थी।

(८) ामी अजीत० आदि ६ साधू जब स्था० मत को तिलाञ्जलि दे पुनः स० जैनधर्म में आए तब उन्हें आचार्य बुद्धि-सागरसूरि ने सबके साथ दीक्षित किया।

(९) यदि स्थानकवासी मत का परित्याग कर पुनः जैनधर्म की दीक्षा लेने वाले साधुओं की नामावली मात्र भी लिखी जाय तब तो ए ासा ग्रन्थ बन सकता है। स्थानकवासी मत से पिस संवेगपक्ष में दीक्षित हुए साधु परिवार की संख्या इस मय भी प्रभु कृपा से ५०० के करीब है।

(१०) इस ग्रन्थ का लेखक भी पूर्व में स्थानकवासी मत का साधु ही था, पर जब उस मत का त्याग कर आया और परमयोगिराज पूज्य मुनिश्री रत्नविजयजी महाराज के पास पुनः दीक्षित आ। क्योंकि यह खास भगवान् महावीर प्रभु का शासन है और महावीर शा की मर्यादा का पालन करना महावीरकी सं का परम कर्त्तव्य है। जो भगवान् महावीर के शासन की

दा का यथेष्ट पालन करते हैं वे ही महावीर गे 'तान कहलाने ` योग्य हैं।

× × × ×

यों तो इस मत के लोग मुँह से दया दया की पुकार किया ही करते हैं। परन्तु वास्तव में इन लोगों के हृदय बड़े ही कठोर होते हैं। इनका मुख्य कारण इस मत पर अनार्य मुस्लिम संस्कृति का ांशिक प्रभाव पड़ना है। जरा बतौर नमूना के देखिये :

(१) श्रीमान् लौंकाशाह ने एक जैनकुलमें जन्म लिया और त्रिकाल सामायिक तथा परमेश्वर की पूजा करने वाले थे इनके पूर्वजों को जैनाचार्यों ने मांस मदिरा और दुराचार व्यभिचार आदि दुर्व्य ों से छुड़वा कर जैन बनाया था। क्या इस प्रकार जैनों ` ाभार से लदा हुआ निर्मलाऽन्त: () करण लौंकाशाह इसा बिना किसी अनार्य 'स्कृति के प्रभाव के पड़े क्या जैनाऽऽगम, जैन साधु, सामायिक, पौसह प्रति मण प्रत्याख्यान, दान और देवपूजा के विरुद्ध होसकता है? कदापि नहीं। वीर वंशावलीसे पाया जाता है कि ए ओर ` यतियों द्वारा लौंकाशाह का अपमान और दूसरी ओर ापके मित्र ले क सैयद का संयोग मिलना, इत्यादि र ों से आवेश में ाया हुआ मनुष्य क्या नहीं कर सकता है ोंकि उस समय उसे कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का कुछ भी ज्ञान शेष नहीं रहता। जैसे कि स्वामी भी मजी ने अपमान के कारण कितना नर्थ र डाला। यह बात तो साधारण है कि बिना किसी नार्य संस्कृति । प्रभाव पड़े ऐसा कृतघ्नी और कठोर दय कैसे हो क है? जिस प्र र लौंकाशाह और आपके अ यायियों को यवनों 'सर्ग । उसकी संक्षिप्त तालिका ि लिि त है।

(२) धर्मसिंह पर दरियाखान पीर का प्रभाव पड़ा था। तभी तो वे शिवजी जैसे प्रभाविक गुरु की निंदा कर उनसे अलग ए थे।

(३) लवजी का जीवन चरित्र पढ़ने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मुस्लिम रङ्गरेज के यहाँ से लड्डू ले खाया करते थे, और इसी कारण सोमजीऋषि की अकाल मृत्यु हुई थी, बिना अनार्य संस्कृति के प्रभाव के क्या कोई यवन के घर का लड्डू ले सकता है ? नहीं।

(४) लवजी के अनुयायी बुरानपुर के श्रावक जब, दिल्ली गए; और उन्हें दिल्ली में से बाहिर निकाल दिया, तो वे अपनी अधमता के कारण जैन या हिन्दू घरों में स्थान नहीं पासके, तब वे स्वेच्छ जा कर मुसलमानों के कब्रिस्तान में ठहरे। यह भी उनका प्रच्छन्न यवन संसर्ग का ही द्योतक है।

(५) आज कल भी इस मत के अनुयायी लोग मुसलमानों के 'ताजिया' के नीचे से अपने बाल बच्चों को निकालते हैं और ऐसा कर उनकी दीर्घायु कामना करते हैं तथा यवनों के बनाए ताबीज आदि भी अपने पास रखते या गलों में बाँधते हैं।

× × × ×

उपरो वर्णन के बाद अब हम शाह ने जिन जैनाचार्यों के चमत्कारों की हँसी उड़ाई है, उन्हीं चमत्कारों को अपने माने हुए महात्माओ के साथ जोड़ उनकी विशेषता बताई है। उसे बताते हैं उदाहर ार्थ देखिये:—

(१) जैनाचार्य जिनचन्द्रसूरि को मणिधर जिनचंद्रसूरि का उल्ले देख शाह ने अपनी ऐतिहासिक नोंध पृ० ९७ में

सिंघराजजी को भी लिख दिया कि आपके मस्त में मणि थी। कृ
देहान्त होने पर उनका दाह कर्म हुआ तब मस्तक से उछल कर
मणि जमुना में गिर गई। परन्तु यह बात स्वामी मणिलालजी को
शायद नुचित जान पड़ी हो। इससे उन्होंने अपनी प्रभुवीर
पटावली में इसे स्थान नहीं दिया है। साथ ही मणिलालजी को
पटावली पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि हमारी तरह ामीजी
को भी इस ो प्रमाणिकता में सन्देह है क्योंकि का भी विश्वा
है कि शाह की नोंध ऐसी व ों में सिवाय "गप्प" के विशेष तथ्य
हो ही क्या सकता है। शाह प्रमाणों े तो उतने ही दूर गे हैं
जै े कोड़ा देख घोड़ा भागा करता है।

(२) शाह ने नोध के ९३ पृष्टपर लि ा है कि "एक तीजांबाई
श्राविका के कोई पुत्र नही होता था अतः वह एक बार लुंपका-
चार्य रत्नसिहजी की वन्दना करने को आई, और उन आचार्य
े कहने मात्र से तीजांबाई के पाँच पुत्र हुए। परन्तु तेरह
पंथियों से यदि पूछा जाय कि वे पांच पुत्र भविष्य में आरम्भ
सारंभ करेंगे और विषय वासना भोगेंगे उसका पाप किसे लगेगा ?"
ायद इस निमित्त भाषण समय मुँह बन्धा आ होगा।

(३) बुरानपुर के लवजी के श्रावक दिल्ली गए, वहाँ काजी
के पुत्र को सर्प काटा, उसे कब्रिस्तान में लाऐ। वहाँ बुरानपुर के
श्रावक ठहरे हुए थे, उन्होंने 'नवकार मन्त्र' से काजी के पुत्र
का जहर उतार दिया, और काजी ने उन श्रावकों को भोजन
खिलाया तथा उनका सब दुःख दूर कर दिया। फिर भी वे
श्राव सोमजीर्षि का जहर क्यों नहीं उतारा यह समझ मे नहीं
ा है।

(४) सिरोही की राज सभा में शिव धर्मियों और यतियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ उनमें जैन यति हार गए, तब लुंपक कुँवर जी आए और उन्होंने शैवों को परास्त किया, पर कृतघ्नी लोगों ने उस समय के इतिहास में इस विषय के दो शब्द भी कहीं नहीं लिखे।

(५) शाह ने जिन व्याकरण, काव्य, न्याय छन्द और अलंकारादि शास्त्रों की निन्दा की है उन्हीं शास्त्रों के विशेषणों के साथ धर्मसिंहजी आदि अपने नेताओं की विद्वता जाहिर की है। पर धर्मसिंहजी आदि की विद्वत्ता पर सच्चा प्रकाश डालने वाला कोई भी साधन शाह को प्राप्त नहीं है। हाँ, धर्मसिंहजी ने श्रीपार्श्वचंद्रसूरिकृत टब्बा में मूर्त्ति विषयक अर्थ का फेर फार कर अपने नाम से टब्बा जरूर बनाया है। और वह दरियापुरी टब्बा के नाम से पहिचाना जाता है। पर यह चोरी का काम तो अपठित आरजियाँ (साध्वियों) भी कर सकती हैं। इस में धर्मसिंहजी की क्या विद्वता हुई। दूसरा कार्य धर्मसिंहजी ने कई सूत्रों के टब्बों की सूची (हुन्डी) और कई कोष्ठक (यन्त्र) भी बनाए हैं जो कि आजकल का एक साधारण छात्र भी बना सकता है। किन्तु शाह इस पर भी फूले नहीं समाते हैं। शाह यदि ऐसों ही को विद्वान् समझते हैं तो ये विद्वान् शाह को ही बारिक हों।

(६) जैसे बादशाह के पास जैन श्रावक थानमल और कर्मचन्द बच्छावत आदि रहते थे, इसी प्रकार शाह ने एक सरवा नामक श्रावक की घटना घड़डाली है, किन्तु इतिहास में सरवा की गंध त भी नहीं मिलती है।

(७) जैसे जैनाचार्यों को बादशाह की ओर ` पट्टे, पर वाने, पाल ी, छत्र चामर आदि मिले हैं उसकी तो शाह ने निन्दा की है किन्तु अपनी ओर स्वामी शिवजी के लिए पूर्वो बहुमान मिलने का बड़े आदर से उल्लेख किया है।

इत्यादि कई एक ऐसी बाते हैं जिन्हे शाह ने एक पक्षवालों ` लिए तो निन्दाऽऽत्मक और अपने पक्ष के लिये प्रशंसाऽऽत्म लिखा है। परन्तु ऐसे पक्षपाती, दृष्टि रागि, और मन गढन्त घटनाएँ घड़ने वाले शाह पर सुज्ञ समाज की कैसी श्रद्धा र सकती है इसे विद्वद्वर्ग यं सोच सकते हैं। हाँ, यह जरूर है जिन्होने अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य विवे शून्य द्धि का आदर किया है, वे क्षण भर के लिए (ऐ० नो० जैसी पुस्तकों) भले ही आदर देद किन्तु जब सलियत का । हो जायगा तब तो उनको स्वयं ही छोड़ना पड़ेगा। वा० मो० । ने यह पुस्तक लि अपने समय, शक्ति, बुद्धि ौर धन का हमारी समझ में तो दुरुपयोग ही किया है। परस्पर में लड़ाने भिड़ाने वाली मिथ्या बातों के प्रकाशन से आज तक भी जगत् में कोई यश का पात्र न तो हुआ है और न होने की भावना है खैर ! इस ले को अब हम विशेष न वढ़ा सब की कल्याण कामना करते हुए शासनदेव से यही प्रार्थना करते हैं कि सबको सद्बुद्धि प्रदान करे।

ओं ान्तिः! न्तिः !! ान्तिः !!!

॥ इति ॥

ऐतिहासिक `` की ऐतिहासि




इति

ऐति सि नोंध की ऐतिहासिकता








डु त की पट्टाव ार






प्रस्तावना

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी ' ार और वि` :
जैन समाज के लिए भीषण उत्पाद का दुः द
म था। क्योंकि जि महान् दुः का अनुभव बारह वर्षीय
दुष्काल एवं चैत्यवासियों के साम्राज्य में नहीं करना पड़ा, उसी
अनुभव सोलहवीं शताब्दी में करना पड़ा। इसका ख्य ार
यह था कि—जैसे दीपक बुझते मय अपने प्रकाश को च गुण
फै कर तत्क्षण ही सदा के लिए बुझ जाता है वैसे ही भगवान
की राशि पर बैठे ए भस्मग्रह ने अपनी स्थिति के न्तिम मय
" जैन माज को अपनी क्रूरता की एक कार दि ई,
उसी समय महाविकराल एवं कलहकारी धूम्रके नाम ा
अपर ग्रह श्रीसंघ की राशि पर सवार आ जिसका कि व
उत्पात मचाने का ही है। इधर "असंयति पूजा नाम अच्छेरा"
भी श्रीसंघ पर ा। बस, इन तीनों अ भ कारणों
के एकत्र मिल जाने ` जैन माज में भेद डाल ंयमी
गृहस्थों ने पने स्वयं ो ाने की कार उठाई। इसमें ए
ओर तो लौंक ाह गृहस्थ था; और दूसरी ओर था कडुआशाह।
इन दोनों ं ों ने जैनधर्म ऐसा उत्पात मचा कि तब
ि रा जैन माज आज त भी ` पेण एक-
त्रि हीं हो स । जैन धर्म को जो हानि इन दोनों गृ थों `
पहुँचाई है पूर्व में वि ाी ने नहीं पहुँचाई थी। तः इन दोनों
ाों पूर्व ` संक्षिप्त परिचय ा देना ति

है कि कलि का के काले प्रभाव से जैनशासन को उन्मूलन करनेवाले कैसे २ अज्ञ लोग हो गुजरे हैं—यह सर्व साधारण जान जायँ।

लौंकाशाह दशाश्रीमाली बनिया था; आपका जन्म वि० सं० १४८२ से लीवड़ी (काठियावाड़) शहर में हुआ था। इधर कडुआशाह ओसवाल था। इनका जन्म नाडोलाई (मारवाड़) गाँव में वि० सं० १४९५ को हुआथा। ये दोनों महापुरुष (!) जब किसी कारणवश अहमदाबाद को गये, और वहाँ जैन यतियों द्वारा इनका कुछ अपमान हुआ तो इन्होंने अपने नाम से नया मत निकाला। लौंकाशाह ने अपनी २७ वर्ष की वय अर्थात् सं० १५०८ में, तब कडुआशाह ने अपनी २९ वर्ष की वय अर्थात् सं० १५२४ में यह घोषणा की कि इस समय जैनों में कोई सच्चा साधु है ही नहीं, और न कोई ऐसा साधु शरीर ही है जो जैनागमों में प्रतिपादित साधु आचार को पाल सकें। इत्यादिः—

उस समय सात करोड़ जैन एवं हजारों साधु तथा सैकड़ों विद्वान् आचार्य विद्यमान थे। यदि ये दोनों व्यक्ति किसी जैन विद्वान् के पास जाकर श्री भगवतीसूत्र २० वाँ शतक सुनकर समझ लेते तो यह दुःसाहस कदापि नहीं करते। क्योंकि भगवान महावीर ने स्वयं श्री मुखसे यह फ़रमाया है कि चतुर्विध संघ रूपी मेरा शासन पंचम आरा में २१००० वर्षों तक अविच्छिन्नरुप से चलता रहेगा। फिर दो हजार २००० वर्षों में ही ह रों साधु एवं सैकड़ों ाचार्यों के होते हुए भी साधु संस्था की नास्ति ब ना ानता के सिवाय और क्या है ?

यदि कोई न य प्रश्न करें कि कडुवाशाह के समय

जैन-साधु ों ें ाचार शैथिल्य धिक ा गया होगा, इ े ों ा ह आदि को नये मत निकालने पड़े । इस े प्रत्युत्तर ें यही हना पर्याप्त होगा कि चैत्यवासियों के ा ाज्य में जो आचार शिथिलता जैनसाधुओं में व्याप्त थी, वह शिथिलता तो सोलहवीं ब्दी ें हाजिर नहीं थी। ौर चै रि ों के ा ज्य में ी शा रक्ष हरिभद्रसूरि जैसे धुरंधर वि न् विद्यमान् थे, उन्होंने चैत्य सियों े विरोध में ड़े होकर र्थात् धर्मरक्षा के निमित्त ार उठाई, ौर पने कार्य में सफलता भी प्राप्त की परन्त नया मत निकालने ी उस मय कि ीने भी धृष्टता नहीं ी जैसे ि ौंका ाह आदि ने अपने समय में की थी।

शा ौर इतिहा की दृष्टि से दे ा जाय तो यह पता पड़ता है कि सदा सर्वदा ाधुओं का ाचार व्यवहार एक ा नहीं रहता है। ा भगवान् महा ीर के विद्यमानत्व में भी, ए ाधु के ंयमपर्यव, दूसरे धु े संयमपर्यव में नन्त गुणा हानि वृद्धि थी। इसी े तो श्रीभगवती सूत्र २५ वें शतक में पांचप्रकार के संयति और छः प्र ार के निग्रन्थ बतलाए हैं, ौर इनके पर्यव में अनन्त गुण हानि वृद्धि बतलाई है। पर इन बातों ा सम्यग्ज्ञान उन गृहस्थों को कहाँ था? यदि थोड़ी देर के लिए यह भी म लें कि उस समय के जैनयति ों में आचार शैथिल्य धि होगा तो इस अर्थ यह तो नहीं होता है कि ऐसी द में गृहस्थ लोग कदाग्रहकर जैनागमों से विरुद्ध नया धर्म निकाल शासन में विरोध बढ़ावें। आवश्यकता तो यह थी कि यदि ाचार शिथिलता थी तो उसे ही र ठी करना था।

ब कडु शाह ने साधुसंस्था का नास्तित्व बता, चतुर्विध ंघ का द्विविध ंघ र डाला, तब लौंकाशाह को भाणादि तीन मनुष्य मिले। उन्होंने बिना गुरु साधु का वेश पहिन कर स्वयं को धु घोषि किया। पर लौंकाशाह ने जिस आचारशिथिलता कार नया मत निकाल शासन में भेद खड़ा किया था, उ शिथिलता ने उनके बाद ५०-६० वर्षों में उसके मत को भी घर दबाया ौर धर्मसिंह लवजी को जैनों का वेश बदल फिर नया निकालना पड़ा, और जब लवजी के साधुओं में भी शिथि ता का जोर बढ़ा, तब तेरह पन्थी भीखमजी को वेश बदल कर फिर े मत नि लना पड़ा। इस तरह असंयमी इन गृहस्थों े अनेक वार वेश बदलने और नये नये मत निकालने से जैन माज को अस हानि उठानी पड़ी है, तथापि वीर शासन में जैनसाधु ो का अस्तित्व अद्यावधि विद्यमान है और भविष्य में पाँचवें आरे के अन्ततक स्थायी रहेगा।

लौं शाह को तो बहुत लोग जानते हैं कि लौंकाशाह एक ाधारण लहीया था और इसका अपमान होने से इसने एक नया मत निकाला। परन्तु कडुआशाह कौन था? और इसने किस लिए नया मत निकाला, तथा इसके मत का मूल सिद्धान्त क्या था, यह बहुत कम लोग जानते है। विक्रम की १७ वीं ताब्दी श्रीधर्मसागरोपाध्याय नाम के प्रखर विद्वान् हुए हैं। उन्हो "उत्सूत्र कंद दाल" नामक एक ग्रन्थ लिखा है और उसमें जैसे लौंका ाह को उत्सूत्र प्ररूपक बतलाया है वैसे ही कडु शाह को भी उत्सूत्र वादी लिखा है। फिर भी कडुआशाह ने पंचांगी ंयुक्त जै गम एवं मन्दिर, मूर्त्ति तथा जैनों का

ाचार व्यवहार मान्य रक ा है अतः उ का उतना तिरस्कार नहीं ा जितना कि ौंका ह ा।

कडुआशाह स्वयं ौंकाशाह को घृणा ी दृष्टि से देखता था। यहाँ त वि कडुआशाह ने पने नये मत के लिये जो नियम बनाए, में एक यह भी नियम बनाया है कि ौंका वालों के वहाँ े -जल नहीं लेना चाहिए। इस निषेध ा रण शायद यह हो कता है कि लौंकाशाह जैनधर्म के मुख्य- ंभ रूप जैनश ौर जैनमन्दिर मूर्त्ति को नहीं मानता था। इतना ही नहीं पर वह तो सामयिक, पौषह, प्रति मण, प्र ाख्या , दान, ौर देवपूजा ो भी नहीं मा ा था, इसी रण ऐ े धममत का ज ग्रहण करना कडु ा ाह ने अच नहीं ा ोगा ?।

डुआशाह के की एक संक्षि प्त पटावली श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर कल त्ता ों के डार में वि मा है। की न "जैन साहित्य ंशोधि " त्रैमासि पत्रि ा े ३ ं ३ े ४९ में द्रित हो चुकी , उसीका ांश लिख न में ठ ों के ो र्थ ेवा में उपस्थित ता हूँ। है कि इसको द्योपान्त ध्यान से प र म ी परि थति और ऐसे ं मी गृहस्थों के मत निकालने के कार को ँ म कर इन उर दियों के मत े पाप े प ाप े बचावेंगे।

उपकेशगच्छीय मुनि ज्ञानसुन्दर

लो (.) १-५-३६ ईस्वी

श्री सिद्धसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः

कडुआ-मत पटावली का सार

कडुआशाह एक ओसवाल, आँचलगच्छ का श्रावक था। इनका जन्म नाडोलाई (मारवाड़) गाँव के शाह हनजी की भार्या कनकादे की कुक्ष से वि० सं० १४९५ में हुआ था। आँचलगच्छ के यतियों के पास अभ्यास करने पर कडुआशाह को बैराग्य उत्पन्न हुआ, पर जब माता पिता से आज्ञा न मिली तो एक दिन घर से चुपचाप निकल वि० सं० १५२४ को अहमदाबाद चला गया। वहाँ रूपपुरा में आगमगच्छीय पं० हीरकीर्त्तिजी से समागम हुआ, और कडुआशाह ने कुछ दिन तक उनके पा रह कर ज्ञानाऽभ्यास किया। तब लोंकाशाह की ॅति इनकी बुद्धि में भी छ विकार पैदा हुआ, और जनता के यह घोषणा की कि, इस समय कोई सच्चा साधु है ही नहीं, और न इस कलिकाल में शास्त्र प्रतिपादित कठिन साधु-ाचार-व्यवहारों का पालन ही हो सकता है, अतः दीक्षा की भा ार े हुए "संवरी श्रावकपना" पालना ही अच्छा है। तथा इसी बात पर स्वयं कडुआशाह ने भी बालब्रह्मचर्य, अकाञ्चनत्व एवं ममत्व को धारण कर गाँव गाँव में परिभ्रमण करना शुरू कि और निम्न लिखित बोलों की मर्यादा स्थिर की। जैसे:—

१—मन्दिर में पगड़ी उतार कर देव-वन्दन करना ❀।

❀ यह नि उसने 'संबरी श्रावक' के लिए बनाया होगा कि ण श्रा से संबरी श्रावक की इतनी विशेषताहो।

२—श्राव की प्रतिष्ठा[1]—वन्दनी ।।

३—पूर्णिमा की पक ी ोर चतुर्थी का पर्युषण रना[2]।

४—मुँहपत्ती चरवला हाथ में रखना[3]—

५ वहुधा (वहुत वार) सामायिक भी करना[4]।

६—पर्व सिवाय भी पौषध करना[5]।

७—विद्वल[6] लना (कच्चा दही, छास में चणा माठ, मूंगादि का बना पदार्थ चा या प । डालने असंख्य जीवोत्पत्ति होती है)।

८—माला अरोपण नहीं म ना।

---

१ कडुआशाह ने कई एक प्रति एँ भी कराई थी, इस ए यह नियम बनाना पड़ा हो श्रावक की ई प्रतिष्ठा भी वन्दनीय समझी जानी हिए !

२ खीय ि नाऽनुसार पूर्णिमा की पक्खी तव चार्यों न देने को चतुर्थी पर्युषण भी ीकार या। इससे ज्ञात होता है कि ाशाह को गच्छ ग्रह नहीं था।

३ कडुआशाह जो आँचलगच्छ का वक होने पर भी आँचलगच्छ की मान्य जो श्रा को चरवला मुंहपत्ति नहीं र ी चाहिये यह ठीक न मझ कर यह नियम बनाया मालूम होता है ।

४ शायद लौंका ह ने सामायिक को भी अस्वी किया था, इसी ए कडुआशाह को यह नियम बनाना पड़ा हो।

५ लौंकाशाह पौषध को भी नहीं मानता था, इसीलिए कडुआशाह ने पर्व वाय भी किसी दिन पौषध व्रत करने का यह ि म ा हो।

६ लौंकामत व विद्वल नहीं टालते थे, अतः कडुआशाह को यह नियम भी बनाना पड़ा हो।

९— पना प्रमाण (ामायिकादि क्रिया स्थापनाजी के मने होनी जरूर है)[१]।

१०—ती स्तुति कहना।

११— ी कटोल त्य रखना[२]।

१२—पौषह तिविहार चौ विहार हो सकता है।

१३—पंचांगी शा ऽनु मान्य रखना[3]।

१४—सामायिक ` इर्यावहि करना[४]।

१५—वीर प्रभु ` पंच णक मान्य रखना[५]।

१६—दूसरा वन्दन बैठा र क़र देना।

१७— ाधु विचार।

१८— धिक श्रावण हो तो दूसरे श्रावण पर्युषण और अधिक का˝ हो तो दूसरे ार्त्तिक में चौमासी।

१९—ि यें भी प्र ी पू: कर सकें[६]।

१—लौं के अनुयायी स ाना भी नहीं मानते थे; तदर्थं यह नियम बन हो।

२—लौंक ाह के मत व ` लोग वासी लेकर खा रहे थे, इसलिये यह नियम भी ब हो।

३—लौंका पंचांगी मानने से इन्कार था, वास्ते कडुआशाह ने ाया हो।

४—यह ि खरत से मिलती है।

५—यह ा तरगच्छ से विरुद्ध और शेष गच्छों से मिलती से प ज कि यद्यपि कडुआशाह को गच्छों का त न पर ानी क्रिया करता था।

६—यह ग से विरुद्ध है क्योंकि इस गच्छ के आदि पुरुष ˚ जि दत्तसूरि ने ्रीपूजा का निषेध किया था।

प्रति दशवाँ च्छेरा चलता[1] है।

इत्यादि बहुत से बोल निश्चित किये तथा स्वात्तर मुज सामायि प्रतिक्रमण करना ोर बरी गृहस्थ लिए भी १०१ बोलों की प्र पणा की और यह नियम निर्धारित किया वि यमार्थी संवरी गृहस्थ के वेश र र दीक्षा का परिणा रक्खें और निम्न लि खि त नियमों का न रते रहें।

१—चलते मय दृष्टि नीची र ना।

२—रात्रि में बिना पूंजे नहीं चलना।

३—स्थंडिल के सिवाय रात्रि को कहीं बाहिर नहीं जा ।

४—मार्ग में चलते मय बोलना नहीं।

५— च्चित भोजन नहीं रना।

६—शेष दो घड़ी दिन रहे तब चौविहार करना।

७— ति मात्रा में आहार न करे, झूँठा न ले, और भो करते न बो ।

८—विद्दल टालना।

९—हाथ कि ी वस्तु ो फें नहीं दे ।

१०—वि ी ची को ीं नहीं।

११—थंडिला द्धि करना।

---

१ इससे सब धुओं को असंयति सम , प लौंकाशाह जैसे असंयति पुजाए जाने वाले को 'अ ति पूजा' न अच्छेरा ?।

२ फिर दुबारा श राऽनुकूल प्रतिक्रमण का साफ २ हिर करता है कि उस स कोई ऐसा भी व्यक्ति क, मण भी निषेध ता हो। और वह

१२—लघुश । टाल के ढ्रि करना[1] ।
१३—मूत्र भाजन भर कर नहीं रखना ।
१४—पूंजी परमार्जि मात्रादी परठना ।
१५—ि सी को कठोर बचन न कहना ।
१६—पूंजियों के बिना ाज नहीं खिनना ।
१७—पांच स्थावर जीवों की जयणा करना ।
१८—निवाण तलाब आदि से स्वयं जल न लाना ।
१९—विना छाने हुए जल से वस्त्र नहीं धोना ।
२०— यं आरंभ न करना ।
२१—वींजणा (पंखे) हवा-वन न लेना ।
२२—वन तियों को अपने हाथ से न काटना ।
२३—त्र जीव को तकलीफ न देना ।
२४—त्रस जीव को जान बूझ के नहीं मारना ।
२५—सर्वथा मृषाबाद (झूठ बचन) न बोलना ।
२६—बिना दिये किसी की कोई भी चीज न लेना ।
२७—मनुष्यणी या तीर्यंचणी का संघट नहीं करना ।
२८— परिग्रह (पैसा) नहीं रखना ।

लौंकाशाह । इसके विषय में वि० सं० १५४३ में पण्डित लावण्य मय खते हैं कि लौंकाशाह सामायिक, पौषह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और दान तथा देवपूजा नहीं मानता था । इसलिए कडुआशाह को यह सख्त नियम बनाना ा हो ।

१ नंबर ११-१२ ये दोनों नियम भी लौंकाशाह की अशौचता के ही बनाए हों । इसके विषय में पं० लावण्य समयजी भी पुकारते हैं ।

२९—चार घड़ी रात्री शेष रहे तब जाना।
३०—उघाड़े मुँह न बोलना (जयणा करना)।
३१—रात्रि के प्रथम प्रहर में नहीं सोना।
३२—विना कारण दिन में भी नहीं सोना।
३३—नित्य एकाशना-व्रत करना।
३४—नित्य, गंठुसही, प्रत्याख्यान, करना।
३५—सायं प्रातः दोनों मय देववन्दन, प्रतिक्रमण, प्रतिले न, करना।
३६—नित्य पांच तथा सात वार चैत्यवन्दन करना।
३७—कम कम नित्य एक गाथा कंठस्थ करना।
३८—नित्य ५०० गाथा ों की ाध्याय करना।
३९—कुदर्शनी के परिचय ा त्याग करना।
४०—नित्य के तो ए ज्यादा सामायि रना।
४१ नित्य एक विगई से ज्यादा नहीं लेना।
४२—यदि भी घी ना हो तो पाव र से ज्यादा नहीं ।
४३—ए पक्ष (१५ दिन) में दो उपवा करना।
४४—दश तथा पन्द्रह लोगस्स काउसग्ग नित्य रना।
४५ एक वर्ष ज्यादा ए ही गांव में नहीं रहना
४६ अपने लिए ट घर नहीं बनाना।
४७—पांच ों से पने पा धिक वस्त्र न र ।
४८—गादी तकिया ओशीषा नहीं र ना।
९—पलंग, ाट या माचे पर नहीं सोना।
५०—दूसरों के चकले या गादी पर नहीं बैठना।
५१—ए लरि और एक कटोरा से ज्यादा तन नहीं र ना।

५२ दर्द हो जाय तो तीन दिन तक दवा नहीं करना बाद अच्छा न हो तो उचित उपाय करें ।

५३—रि ों ाथ एकान्त में बातें न करना ।

५४—नौवाड़ ब्र चर्यव्रत पा नन करना ।

५५—मास पर्यन्त ए दिशा रखना ।

५६— ा ए ान्त ठा वरजना ।

५७— क य ी उदीरणा न कराना ।

५८—कषाय उत्पन्न होवे तब विगई का त्याग करना ।

५९—कि ी पर ख्य न देना ।

६०—किसी की निन्दा न रना ।

६१— ादि सुगन्ध पदर्थों का विलेपन न करना ।

६२—नि तेरह द्रव्य ा ादा न लगाना ।

६३— न पारी न करना ।

६४—ब मूल्य न ना और न भोगवना ।

६५—रे मी व न लेना ौर न पहनना ।

६६—तैल आदि की लि ा कर स्नान न करना ।

६७— यं रसवती (रसोई) न पकाना ।

६८—हरिक (प) न खाना ।

६९—चौमासा में जूर ादि न लेना ।

७०—रि यों को सु ते ए राग ताल न करना ।

७१— रीर पर जेवर नहीं पहनना ।

७२—दो पुरुष ए शय्या में न सोना ।

७३— केली ि यों को न पढ़ाना ।

७४— हां स्त्री सोवे वहाँ नहीं सोना ।

७५—लौंका लों के घर । पानी प्र रना ।[१]

६—िसके यहां देव व्य बाकी हो उ के घर न ी ना ।[२]

७७ मंदिर की भूमि में न सोना ।

७८—सम्बन्धी े वि ी तर की च नहीं । ।

७९—दू रों व्य ी मंजूरी के बि धर्म यें में भी नहीं गा ।

८०—दो दि े ज्यादा घर में नहीं ी । ।

८१—मिथ्यात्वी जो ंबरी होवे े उस े घर तीन दिन से ज्यादा नहीं जीमना ।

८२—घेवर आदि उत्कट हार न करना ।

८३—सिंघोड़ा सूखे तथा हरे ी न ाना ।

८४—डगला कुर्त्ता पहिन की जयणा ।

८५—दू रों के लड़कों ो लाड़ न ड़ । ।

८६— ज्जन सिवाय (बड़ा आरम्भादि) वहां जाकर नहीं जीमना ।

८७—हलवाई की मिठाई की जय । ।

८८—रात्रि को रांधा हु ा भो नहीं ाना ।

८९—गृहस्थ के घर में ै बातें न ँ करना ।

९०—जूता नहीं पहिनना ।

९१— हन पर वारी नहीं ना ।

९२—मास . ए र न ारना ।

---

१ लौं जो शासन का उच्छेद करनेवा होने से उसके घर का जल लेने कडुआशाह म पाप समझता होगा ।

२ क आश देव द्रव्य भी बड़ा हिमायतीदार था ।

९३—कुलेर पक्वान्न आदि वासी न रखना ।

९४—मार्ग में स्त्री के साथ बातें न करना ।

९५—पांचरंगी वस्त्र न पहिनना ।

९६—स्त्रियों के झुण्ड में नहीं जाना ।

९७—गान तान गाना सुनाना नहीं ।

९८—लोकविरुद्ध आचरण नहीं करना ।

९९—किसी के घर जाना हो तो पहिले खूँखार आदि संकेत करके जाना ।

१००—इत्यादि दूसरे बोल भी बहुत जानना ।

१०१—तथा शील पालने संबन्धी पुरुषों के १०४ बोल तथा स्त्रियों के शील पालने के विषय में १०२ बोल हैं वे सब अन्यत्र ग्रन्थों से जानना ।

कडुआशाह ने बहुत लोगों को संवरी बनाया जैसे कि:— शाह ीमा, तेजा, करमसी, रांणा, करमण, संवसी, पुंजा, धींगा वीरा, देपाल, भीरपाल, धीरु, तींबा सिंधर, कव सबगण, लुणा, मांगा, जसवंत, डाह्या, वेला, जीवा, पटेल, हासां, पसाया, रामा, करणबधो इत्यादि, तथा पाटण, राजनगर, थराद, राधनपुर, भात, जूनागढ प्रमुख शहरों में बहुत से संवरी हुए । इसका तिशय विस्तार बड़ी पटावली से देखना । ❀

❀ स्था० साधु मणिलालजी ने अपनी प्रभुवीर पटावली नामक पुस्तक के पृष्ठ २१५ पर कडुआ मत का समय वि० सं० १५६२ का लिखा यह गलत है और इस मत की आदि में साधु होना लिखा यह भी भूल है कारण संवरी श्रावक कल्याणजी को आपने बड़े भारी विद्वान ना है धर्मसिंहजी ने इनके पास ज्ञानाभ्यास किया है उसी कल्याणजी की

. कडु ाशाह के त की निय ली पढ़ र ह तो कहा जा कता है वि लौंकाशाह की पेक्षा डु ाशा का वहुत उत्कृष्ट था, यदि कडु शाह धु संख्या । इन ार नहीं करता तो श्रावक धर्म के लिए डुआशाह के नि बड़ी उ कोटि ` हैं।

कडुआशाह ने वि० ं० १५२४ में । त स्थापि किया और ४० वर्ष तक भ्रमण कर पने मत को खूब बढ़ा उस मय कडुआ ाह के मत ने जनता पर जितना प्रभाव ला था उतना लौंका ाह के मत ने नहीं। कारण कडु ाशाह ` मत में एक साधुओं के सिवाय सब कुछ मान्य था परन्तु लौंकाशाह तो, देव गुरु धर्म मंदिर, मूर्ति, ामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दान और सूत्र सिद्धान्त छ भी नहीं नता था, `वल पाप पाप, हिंसा-हिं , दया-दया यही करता था। इसी ` तो कडुआशाह के बजाय लौंकाशाह का धिक तिरस्कार आ ौर जैन समाज उसे घृणा की दृष्टि ` दे ने गा।

कडुआशाह ने वि. ं. १५६४ में न्तिम चौमा पाटण हर में किया ौर पने पीछे पाट पर ाह `मा को

लिखी हुई यह कडुआमत की पटा ी है और इसमें स्पष्ट ` है कि कडुआशाह ने वि० सं० १५२४ में अ । मत स्थापन किया और वे सरूआत से ही ' ' री ' नाम का मत स्थापन किया है ह रे स्था० साधुओं ` अपने लेख की सत्यता के लिये प्र की तो परवाह ही नहीं है जिस दिक में आई वह ही कल्पना कर लिख मारता है । सभ्य समाज, की प्रशंसा करे या मज़ाक उड़ावे, यह विचार इन लोगों को ता ^ नहीं है।

पन ?र स्वयं समाधि पूर्वक काल किया। अंत में पटावली-
र यह लिखा है कि भस्मग्रह के उतरने पर कडुआशाह ने धर्म को दीपाया।

डुआशाह के पाट खेमाशाह हुआ। खेमाशाह के पाट वीरा ाह, वीराशाह के पाट शाहजीवराज, शाह जीवराज के पाट तेजपाल, तेजपाल के पाट शाहरत्नपाल, रत्नपाल के पाट जिनदा और जिनदास के पाट पुनः शाह तेजपाल (द्वितीय)
ए। इनका समय वि. सं. १६८४ का है।

"इति कडुआमत लघु पटावली शाह कल्याले न कृता। संवत् वेद[४] वसु[८] कला[१६] अर्थात् १६८४ वि० सं० में पटधर तेजपाल के विजय राज्य में लिखी गई है।"

वि० सं० १६८४ के बाद कडुआमत में कौन २ "संवरी श्रा " हुए इसका अभी तक पता नहीं है। पर राधनपुर, थराद, अहमदाबाद, पंचमहल प्रान्त आदि ग्रामों में इस समय भी कडुआमत के श्रावक विद्यमान हैं। यदि बड़ी पटावली प्रयत्न करने पर हस्तगत हुई तो, कडुआमत पर फिर विशेष प्रकाश ा जायगा।

ओं शान्तिः! ओं शान्तिः!! ओं शान्तिः!!!

पूज्यपाद मुनिश्री ज्ञान न्दर ी म राज हिब ` पूर्ण परिश्रम और सदुपदेश द्वारा श्रीरत्नप्रभा र ान ६ ।- फलोदी ( रवाड़ ) ` । पर्यन्त दि ई ों ।—

संक्षि सूचिपत्र

विभाग हिला त्विक विषय की

विभा दू -ऐ हारि क विषय की पुस्तकें ।

१ उपकेशगच्छ लघु पट्टावलि -)
२ दानवीर जगडूशाह -)
३ जैनजाति निर्णय प्रथमांक } ।)
४ जैन ति निर्णय तीयांक } ।)
५ जैनज यों का सचित्र इ० ।)
६ ओस जाति समय नि =)
७ उपकेशवंश का इ ० -)
८ ब । मन्दिर इति० भेट
९ कापरड़ातीर्थ का इति० ।)
१० धर्मवीर स इति० १।)
११ जैसलमेर विराट् भेट
१२ रत्न सूरि की जयन्ति „
१३ ओसवालोत्प शंका स ० „
१४ चीन जैन इ० ह १
१५ „ „ „ २
१६ „ „ „ ३
१७ „ „ „ ४
१८ „ „ „ ५
१९ „ „ „ ६
२० „ „ „ ७
२१ „ „ „ ८
२२ जैनजाति महोदय प्रकरण १ला
२३ „ „ २ रा
२४ „ „ ३ रा
२५ „ „ ४ था
२६ „ „ ५ वां
२७ „ „ ६ ट्टा
२८ मूर्त्तिपूजा का प्रा० इति० } ५)
२९ मूर्त्तिपूजा विषय प्रश्नोत्तर } ५)
३० क्या जै.ती. मुँ.मुँ. बाँधते थे } ५)
३१ श्रीमान् लौंकाशाह के इ० } ५)
३२ ऐतिहासिकनोंध की ऐति० } ५)
३३ कडुआमत की पट्टावलि } ५)
३४ गोडवाड़ के जैनों और सादड़ी के लौंका० इ० ।)

विभा ती भक्ति और औपदेशिक पुस्तकें ।

१ संग्रह भाग १ =)
२ „ „ „ २ =)
३ „ „ „ ३ =)
४ दादा हिब की पूजा भेट
५ देवगुरु वन्दन ला -)
६ जैन नियमावली)॥
७ जैनमंदिरकीचौरासी आशातना)॥
८ चैत्यवंदनादि -)
९ जैन स्तुति)॥
१० सुबोध नियमावली)॥
११ प्रभु पूजा विधि)॥
१२ व्याख्याविलास प्रथमभाग =)

१३ व्याख्याविलास दूसरा भ =)
१४ „ „ ती ाभाग =)
१५ „ „ चौ भाग =)
१६ ओशियाँ ज्ञानभंडार की लिष्ट भेट
१७ तीर्थ यात्रा वन भेट
१८ स्वाध्यायसंग्रह गहुंलीसंग्रह „
१९ राइदेवसी क्रमण =)
२० वर्णमाला)॥
२१ स्तवन संग्रह भाग ४
२२ म सती सुरसुंदरी कथा ≡)
२३ पंच प्रतिक्रमण सूत्र ।)
२४ मुनिनाम ला =)
२५ शुभ हूर्त श ा ≡)
२६ पंच प्र क विधि सहित भेट
२७ प्राचीन छंद गुणावली भा. १ =)
२८ „ „ „ „ २ „
२९ „ „ „ „ ३ „
३० „ „ „ „ ४ „
३१ „ „ „ „ ५ „
३२ „ „ „ „ ६ „
३३ धर्मवीर शेठ जिनदत्त =)
३४ दो थियों संवाद =)
३५ समा ीवर्त दशा ≡)
३६ स्तवन ंग्रह ५ ≡)
३७ जिनगुण भक्ति बहार .१ भेट
३८ „ „ „ „ २ „
३९ कायापुर पट्टन का पत्र)॥।
४० शान्तिधारा पाठ भेट
४१ काप तीर्थ स्तवनावली =)
४२ श्री नंदीश्वरद्वीप महो व भेट
४३ श्री वीरपार्श्व नि नी =)
४४ नित्यस्मरण ।)
४५ उगता राष्ट्र -)
४६ लघु ला -)
४७ षण ह भाग १ ≡)
४८ „ „ „ २ -)
४९ नवपदजी की अनुपूर्वी -)
५० नि ज्ञानसुंदर(जी) भेट
५१ अर्द्ध त की स क्षा ≡)
५२ पाली न धर्म का प्रभाव भेट
५३ गुणानुराग कू =)
५४ भगीत ग १)॥
५५ „ „ २)॥
५६ „ „ ३)॥
५७ राईदेवसी प्र स.
५८ आदर्श शिक्षा
५९ श्री संघ का सिलोका „
६० जिनेन्द्र पूजा संग्रह ≡)
६१ महादेव ोत्र -)

वि चौ । चर्चा विषयक पुस्तकें ।

